नमो नमो निम्मलदंसणस्स

बाल ब्रह्मचारी श्री नेमिनाथाय नम:

पूज्य आनन्द-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर-गुरूभ्यो नम:

आगम-३

# स्थान

## आगमसूत्र हिन्दी अनुवाद


अनुवादक एवं सम्पादक

आगम दीवाकर मुनि दीपरत्नसागरजी

[ M.Com. M.Ed. Ph.D. श्रुत महर्षि ]



आगम हिन्दी-अनुवाद-श्रेणी पुष्प- ३

# आगमसूत्र- ३- 'स्थान'

## अंगसूत्र- ३-हिन्दी अनुवाद

कहां क्या देखे ?


| क्रम | विषय | पृष्ठ | क्रम | विषय | पृष्ठ |
|---|---|---|---|---|---|
| ०१ | एक स्थान संबंधी वर्णन | ००५ | | चार स्थान संबंधी वर्णन उद्देश-२ | ०५५ |
| ०२ | दो स्थान संबंधी वर्णन | ०१० | | चार स्थान संबंधी वर्णन उद्देश-३ | ०६५ |
| २/१ | दो स्थान संबंधी वर्णन उद्देश-१ | ०१० | ०५ | चार स्थान संबंधी वर्णन उद्देश-४ | ०७५ |
| | दो स्थान संबंधी वर्णन उद्देश-२ | ०१४ | | पांच स्थान संबंधी वर्णन | ०८८ |
| | दो स्थान संबंधी वर्णन उद्देश-३ | ०१६ | | पांच स्थान संबंधी वर्णन उद्देश-१ | ०८८ |
| | दो स्थान संबंधी वर्णन उद्देश-४ | ०२३ | | पांच स्थान संबंधी वर्णन उद्देश-२ | ०९३ |
| ०३ | तीन स्थान संबंधी वर्णन | ०२७ | ०६ | पांच स्थान संबंधी वर्णन उद्देश-३ | ०९८ |
| | तीन स्थान संबंधी वर्णन उद्देश-१ | ०२७ | ०७ | छह स्थान संबंधी वर्णन | १०४ |
| | तीन स्थान संबंधी वर्णन उद्देश-२ | ०३३ | ०८ | सात स्थान संबंधी वर्णन | ११३ |
| | तीन स्थान संबंधी वर्णन उद्देश-३ | ०३७ | ०९ | आठ स्थान संबंधी वर्णन | १२५ |
| | तीन स्थान संबंधी वर्णन उद्देश-४ | ०४१ | १० | नव स्थान संबंधी वर्णन | १३४ |
| ०४ | चार स्थान संबंधी वर्णन | ०४८ | ०६ | दश स्थान संबंधी वर्णन | १४३ |
| | चार स्थान संबंधी वर्णन उद्देश-१ | ०४८ | | ------------------------------ | |

## ४५ आगम वर्गीकरण

| क्रम | आगम का नाम | सूत्र | क्रम | आगम का नाम | सूत्र |
|---|---|---|---|---|---|
| ०१ | आचार | अंगसूत्र-१ | २५ | आतुरप्रत्याख्यान | पयन्नासूत्र-२ |
| ०२ | सूत्रकृत् | अंगसूत्र-२ | २६ | महाप्रत्याख्यान | पयन्नासूत्र-३ |
| ०३ | स्थान | अंगसूत्र-३ | २७ | भक्तपरिज्ञा | पयन्नासूत्र-४ |
| ०४ | समवाय | अंगसूत्र-४ | २८ | तंदुलवैचारिक | पयन्नासूत्र-५ |
| ०५ | भगवती | अंगसूत्र-५ | २९ | संस्तारक | पयन्नासूत्र-६ |
| ०६ | ज्ञाताधर्मकथा | अंगसूत्र-६ | ३०.१ | गच्छाचार | पयन्नासूत्र-७ |
| ०७ | उपासकदशा | अंगसूत्र-७ | ३०.२ | चन्द्रवेध्यक | पयन्नासूत्र-७ |
| ०८ | अंतकृत् दशा | अंगसूत्र-८ | ३१ | गणिविद्या | पयन्नासूत्र-८ |
| ०९ | अनुत्तरोपपातिकदशा | अंगसूत्र-९ | ३२ | देवेन्द्रस्तव | पयन्नासूत्र-९ |
| १० | प्रश्नव्याकरणदशा | अंगसूत्र-१० | ३३ | वीरस्तव | पयन्नासूत्र-१० |
| ११ | विपाकश्रुत | अंगसूत्र-११ | ३४ | निशीथ | छेदसूत्र-१ |
| १२ | औपपातिक | उपांगसूत्र-१ | ३५ | बृहत्कल्प | छेदसूत्र-२ |
| १३ | राजप्रश्निय | उपांगसूत्र-२ | ३६ | व्यवहार | छेदसूत्र-३ |
| १४ | जीवाजीवाभिगम | उपांगसूत्र-३ | ३७ | दशाश्रुतस्कन्ध | छेदसूत्र-४ |
| १५ | प्रज्ञापना | उपांगसूत्र-४ | ३८ | जीतकल्प | छेदसूत्र-५ |
| १६ | सूर्यप्रज्ञप्ति | उपांगसूत्र-५ | ३९ | महानिशीथ | छेदसूत्र-६ |
| १७ | चन्द्रप्रज्ञप्ति | उपांगसूत्र-६ | ४० | आवश्यक | मूलसूत्र-१ |
| १८ | जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति | उपांगसूत्र-७ | ४१.१ | ओघनिर्युक्ति | मूलसूत्र-२ |
| १९ | निरयावलिका | उपांगसूत्र-८ | ४१.२ | पिंडनिर्युक्ति | मूलसूत्र-२ |
| २० | कल्पवतंसिका | उपांगसूत्र-९ | ४२ | दशवैकालिक | मूलसूत्र-३ |
| २१ | पुष्पिका | उपांगसूत्र-१० | ४३ | उत्तराध्ययन | मूलसूत्र-४ |
| २२ | पुष्पचूलिका | उपांगसूत्र-११ | ४४ | नन्दी | चूलिकासूत्र-१ |
| २३ | वृष्णिदशा | उपांगसूत्र-१२ | ४५ | अनुयोगद्वार | चूलिकासूत्र-२ |
| २४ | चतु:शरण | पयन्नासूत्र-१ | --- | --------------- | ----- |

## मुनि दीपरत्नसागरजी प्रकाशित साहित्य

| क्र | साहित्य नाम | बूक्स | क्रम | साहित्य नाम | बूक्स |
|---|---|---|---|---|---|
| | **आगम साहित्य** | | | **आगम साहित्य** | |
| 1 | मूल आगम साहित्य:- | 147 | 6 | आगम अन्य साहित्य:- | 10 |
| | -1- आगमसुत्ताणि-मूलं print | [49] | | -1- આગમ કથાનુયોગ | 06 |
| | -2- आगमसुत्ताणि-मूलं Net | [45] | | -2- आगम संबंधी साहित्य | 02 |
| | -3- आगममञ्जूषा (मूल प्रत) | [53] | | -3- ऋषिभाषित सूत्राणि | 01 |
| 2 | आगम अनुवाद साहित्य:- | 165 | | -4- आगमिय सूक्तावली | 01 |
| | -1- આગમસૂત્ર ગુજરાતી અનુવાદ | [47] | | आगम साहित्य- कुल पुस्तक | 516 |
| | -2- आगमसूत्र हिन्दी अनुवाद Net | [47] | | | |
| | -3- AagamSootra English Trans. | [11] | | | |
| | -4- આગમસૂત્ર સટીક ગુજરાતી અનુવાદ | [48] | | | |
| | -5- आगमसूत्र हिन्दी अनुवाद print | [12] | | अन्य साहित्य:- | |
| 3 | आगम विवेचन साहित्य:- | 171 | 1 | તત્ત્વાભ્યાસ સાહિત્ય- | 13 |
| | -1- आगमसूत्र सटीकं | [46] | 2 | સૂત્રાભ્યાસ સાહિત્ય- | 06 |
| | -2- आगमसूत्राणि सटीकं प्रताकार-1 | [51] | 3 | વ્યાકરણ સાહિત્ય- | 05 |
| | -3- आगमसूत्राणि सटीकं प्रताकार-2 | [09] | 4 | વ્યાખ્યાન સાહિત્ય- | 04 |
| | -4- आगम चूर्णि साहित्य | [09] | 5 | જિનભક્તિ સાહિત્ય- | 09 |
| | -5- सवृत्तिक आगमसूत्राणि-1 | [40] | 6 | વિધિ સાહિત્ય- | 04 |
| | -6- सवृत्तिक आगमसूत्राणि-2 | [08] | 7 | આરાધના સાહિત્ય | 03 |
| | -7- सचूर्णिक आगमसुत्ताणि | [08] | 8 | પરિચય સાહિત્ય- | 04 |
| 4 | आगम कोष साहित्य:- | 14 | 9 | પૂજન સાહિત્ય- | 02 |
| | -1- आगम सद्दकोसो | [04] | 10 | તીર્થંકર સંક્ષિપ્ત દર્શન | 25 |
| | -2- आगम कहाकोसो | [01] | 11 | પ્રકીર્ણ સાહિત્ય- | 05 |
| | -3- आगम-सागर-कोष: | [05] | 12 | દીપરત્નસાગરના લઘુશોધનિબંધ | 05 |
| | -4- आगम-शब्दादि-संग्रह (प्रा-सं-गु) | [04] | | આગમ સિવાયનું સાહિત્ય કૂલ પુસ્તક | 85 |
| 5 | आगम अनुक्रम साहित्य:- | 09 | | | |
| | -1- આગમ વિષયાનુક્રમ- (મૂળ) | 02 | | 1-आगम साहित्य (कुल पुस्तक) | 516 |
| | -2- आगम विषयानुक्रम (सटीकं) | 04 | | 2-आगमेतर साहित्य (कुल | 085 |
| | -3- आगम सूत्र-गाथा अनुक्रम | 03 | | दीपरत्नसागरजी के कुल प्रकाशन | 601 |

| | મુનિ દીપરત્નસાગરનું સાહિત્ય |
|---|---|
| 1 | મુનિ દીપરત્નસાગરનું આગમ સાહિત્ય [કુલ પુસ્તક 516] તેના કુલ પાના [98,300] |
| 2 | મુનિ દીપરત્નસાગરનું અન્ય સાહિત્ય [કુલ પુસ્તક 85] તેના કુલ પાના [09,270] |
| 3 | મુનિ દીપરત્નસાગર સંકલિત 'તત્ત્વાર્થસૂત્ર'ની વિશિષ્ટ DVD તેના કુલ પાના [27,930] |

અમારા પ્રકાશનો કુલ ૬૦૧ + વિશિષ્ટ DVD કુલ પાના 1,35,500

# [३] स्थान
## अंगसूत्र-३- हिन्दी अनुवाद

## स्थान–१

**सूत्र - १**

हे आयुष्मन् शिष्य ! मैंने सूना है, भगवान महावीर ने इस प्रकार कहा है ।

**सूत्र - २**

आत्मा एक है ।

**सूत्र - ३**

दण्ड एक है ।

**सूत्र - ४**

क्रिया एक है ।

**सूत्र - ५**

लोक एक है ।

**सूत्र - ६**

अलोक एक है ।

**सूत्र - ७**

धर्मास्तिकाय एक है ।

**सूत्र - ८**

अधर्मास्तिकाय एक है ।

**सूत्र - ९**

बंध एक है ।

**सूत्र - १०**

मोक्ष एक है ।

**सूत्र - ११**

पुण्य एक है ।

**सूत्र - १२**

पाप एक है ।

**सूत्र - १३**

आश्रव एक है ।

**सूत्र - १४**

संवर एक है ।

**सूत्र - १५**

वेदना एक है ।

**सूत्र - १६**

निर्जरा एक है ।

**सूत्र - १७**

प्रत्येक शरीर नामकर्म के उदय से होने वाले शरीर में जीव एक है ।

**सूत्र - १८**

जीवों की बाह्यपुद्गलों को ग्रहण किये बिना की जाति विकुर्वणा एक है ।

**सूत्र - १९**

मन का व्यापार एक है ।

**सूत्र - २०**

वचन का व्यापार एक है ।

**सूत्र - २१**

काया का व्यापार एक है ।

**सूत्र - २२**

उत्पाद एक है ।

**सूत्र - २३**

विनाश एक है ।

**सूत्र - २४**

मृतात्मा का शरीर एक है ।

**सूत्र - २५**

गति एक है ।

**सूत्र - २६**

आगति एक है ।

**सूत्र - २७**

च्यवन-मरण एक है ।

**सूत्र - २८**

उपपाच जन्म एक है ।

**सूत्र - २९**

तर्क-विमर्श एक है ।

**सूत्र - ३०**

संज्ञा एक है ।

**सूत्र - ३१**

मनन-शक्ति एक है ।

**सूत्र - ३२**

विज्ञान एक है ।

**सूत्र - ३३**

वेदना एक है ।

**सूत्र - ३४**

छेदन एक है ।

**सूत्र - ३५**

भेदन एक है ।

**सूत्र - ३६**

चरम शरीरों का मरण एक ही होता है ।

**सूत्र - ३७**

पूर्ण शुद्ध तत्त्वज्ञ पात्र अथवा गुणप्रकर्ष प्राप्त केवली एक है ।

**सूत्र - ३८**

स्वकृत कर्मफल से जीवों का दुःख एक सा है । सर्व भूत-जीव एक हैं ।

**सूत्र - ३९**

जिसके सेवन से आत्मा को क्लेश प्राप्त होता है वह अधर्म प्रतिज्ञा एक है ।

**सूत्र - ४०**

जिस से आत्मा विशिष्ट ज्ञानादि पर्याय युक्त होता है वह धर्म प्रतिज्ञा एक है ।

**सूत्र - ४१**

देव, असुर और मनुष्यों का एक समयमें मनोयोग एक ही होता है । वचनयोग, काययोग भी एक ही होता है ।

**सूत्र - ४२**

देव, असुर और मनुष्यों के एक समय में एक ही उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पौरुष पराक्रम होता है ।

**सूत्र - ४३**

ज्ञान एक है । दर्शन एक है । चारित्र एक है ।

**सूत्र - ४४**

समय एक है ।

**सूत्र - ४५**

प्रदेश एक है । परमाणु एक है ।

**सूत्र - ४६**

सिद्धि एक है, सिद्ध एक है । परिनिर्वाण एक है, परिनिर्वृत्त एक है ।

**सूत्र - ४७**

शब्द एक है । रूप एक है । गंध एक है । रस एक है । स्पर्श एक है । शुभ शब्द एक है । अशुभ शब्द एक है । सुरूप एक है । कुरूप एक है । दीर्घ एक है । ह्रस्व एक है । वर्तुलाकार 'लड्डू के समान गोल' एक है । त्रिकोण एक है । चतुष्कोण एक है । पृथुल-विस्तीर्ण एक है । परिमंडल-चूड़ो के समान गोल एक है ।

काला एक है । नीला एक है । लाल एक है । पीला एक है । श्वेत एक है ।

सुगन्ध एक है । दुर्गन्ध एक है ।

तिक्त एक है । कटुक एक है । कषाय एक है । अम्ल एक है । मधुर एक है। कर्कश-यावत्-रुक्ष एक है ।

**सूत्र - ४८**

प्राणातिपात (हिंसा) यावत्-परिग्रह एक है । क्रोध-यावत् लोभ एक है । राग एक है-यावत् परपरिवाद एक है । रति-अरति एक है । मायामृषा-कपटयुक्त झूठ एक है । मिथ्यादर्शन शल्य एक है ।

**सूत्र - ४९**

प्राणातिपात-विरमण एक है-यावत् परिग्रह-विरमण एक है ।

क्रोध-त्याग एक है-यावत् मिथ्यादर्शन-शल्य-त्याग एक है ।

**सूत्र - ५०**

अवसर्पिणी एक है । सुषमासुषमा एक है-यावत्-दुषमदुषमा एक है । उत्सर्पिणी एक है । दुषमदुषमा एक है-यावत्-सुषमसुषमा एक है ।

**सूत्र - ५१**

नारकीय के जीवों की वर्गणा एक है । असुरकुमारों की वर्गणा एक है, यावत्-वैमानिक देवों की वर्गणा एक है भव्य जीवों की वर्गणा एक है । अभव्य जीवों की वर्गणा एक है । भव्य नरक जीवों की वर्गणा एक है । अभव्य नरक जीवों की वर्गणा एक है । इस प्रकार-यावत्-भव्य वैमानिक देवों की वर्गणा एक है ।

अभव्य वैमानिक देवों की वर्गणा एक है । सम्यग्दृष्टियों की वर्गणा एक है । मिथ्यादृष्टियों की वर्गणा एक है। मिश्रदृष्टि वालों की वर्गणा एक है । सम्यग्दृष्टि वाले नरक जीवों की वर्गणा एक है । मिथ्यादृष्टि वाले नरक जीवों की वर्गणा एक है । मिश्रदृष्टि वाले नरक जीवों की वर्गणा एक है । इसी प्रकार-यावत्-स्तनित कुमारों की वर्गणा एक है । मिथ्यादृष्टि पृथ्वीकाय के जीवों की वर्गणा एक है । यावत्-वनस्पतिकाय के जीवों की वर्गणा एक है । सम्यग्दृष्टि द्वीन्द्रिय जीवों की वर्गणा एक है । मिथ्यादृष्टि द्वीन्दियि जीवों की वर्गणा एक है । इसी प्रकार त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवों की वर्गणा एक है । शेष नरक जीवों के समान-यावत्-मिश्रदृष्टि वाले वैमानिकों की वर्गणा एक है ।

कृष्णपाक्षिक जीवों की वर्गणा एक है । शुक्लपाक्षिक जीवों की वर्गणा एक है । कृष्णपाक्षिक नरकजीवों की वर्गणा एक है । इसी प्रकार चौबीस दण्डक में समझ लेना ।

कृष्णलेश्या वाले जीवों की वर्गणा एक है । नीललेश्या वाले जीवों की वर्गणा एक है । इसी प्रकार-यावत्-शुक्ललेश्या वाले जीवों की वर्गणा एक है । कृष्णलेश्या वाले नैरयिकों की वर्गणा-यावत्-कापोतलेश्या वाले नैरयिकों की वर्गणा एक है ।

इस प्रकार जिसकी जितनी लेश्याएं हैं उसकी उतनी वर्गणा समझ लेनी चाहिए ।

भवनपति, वाणव्यन्तर, पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय में चार लेश्याएं हैं । तेजस्काय, वायुकाय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय में तीन लेश्याएं हैं । तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्यों में छः लेश्याएं हैं । ज्योतिष्क देवों में एक तेजोलेश्या है । वैमानिक देवों में ऊपर की तीन लेश्याएं हैं । इनकी इतनी ही वर्गणा जाननी चाहिए ।

कृष्णलेश्या वाले भव्य जीवों की वर्गणा एक है । कृष्णलेश्या वाले अभव्य जीवों की वर्गणा एक है । इसी प्रकार छहों लेश्याओं में दो दो पद कहने चाहिए । कृष्णलेश्या वाले भव्य नैरयिकों की वर्गणा एक है । कृष्णलेश्या वाले अभव्य नैरयिकों की वर्गणा एक है । इस प्रकार विमानवासी देव पर्यंत जिसकी जितनी लेश्याएं हैं उसके उतने ही पद समझना ।

कृष्णलेश्या वाले सम्यग्दृष्टि जीवों की वर्गणा एक है । कृष्णलेश्या वाले मिथ्यादृष्टि जीवों की वर्गणा एक है। कृष्णलेश्या वाले मिश्रदृष्टि जीवों की वर्गणा एक है । इस प्रकार छः लेश्याओं में जिसकी जितनी दृष्टियाँ हैं उसके उतने पद जानने चाहिए ।

कृष्णलेश्या वाले कृष्णपाक्षिक जीवों की वर्गणा एक है । कृष्णलेश्या वाले शुक्लपाक्षिक जीवों की वर्गणा एक है । इस प्रकार विमानवासी देव पर्यंत जिसकी जितनी लेश्याएं हों उतने पद समझ लेने चाहिए । ये आठ चौबीस दण्डक जानने चाहिए ।

तीर्थसिद्ध जीवों की वर्गणा एक है । अतीर्थसिद्ध जीवों की वर्गणा एक है - यावत्-एकसिद्ध जीवों की वर्गणा एक है । अनेकसिद्ध जीवों की वर्गणा एक है ।

प्रथम समय सिद्ध जीवों की वर्गणा एक है-यावत्-अनन्त समय सिद्ध जीवों की वर्गणा एक है । परमाणु पुद् गलों की वर्गणा एक है । इस प्रकार अनन्त प्रदेशी स्कन्धों की वर्गणा-यावत् एक है । एक प्रदेशावगाढ़ पुद्गलों की वर्गणा एक है-यावत् असंख्य प्रदेशावगाढ़ पुद्गलों की वर्गणा एक है । एक समय की स्थिति वाले पुद्गलों की वर्गणा एक है-यावत् असंख्य समय की स्थिति वाले पुद्गलों की वर्गणा एक है ।

एक गुण वाले पुद्गलों की वर्गणा एक है-यावत् असंख्य गुण काले पुद्गलों की वर्गणा एक है । अनन्त गुण काले पुद्गलों की वर्गणा एक है । इस प्रकार वर्ण, गंध, रस और स्पर्श का कथन करना चाहिए-यावत् अनन्त गुण रूक्ष पुद्गलों की वर्गणा एक है ।

जघन्य प्रदेशी स्कन्धों की वर्गणा एक है। उत्कृष्ट प्रदेशी स्कन्धों की वर्गणा एक है। न जघन्य न उत्कृष्ट प्रदेशी स्कन्धों की वर्गणा एक है। इसी प्रकार जघन्यावगाढ़, उत्कृष्टावगाढ़ और अजघन्योत्कृष्टावगाढ़। जघन्य स्थिति वाले, उत्कृष्ट स्थिति वाले, अजघन्योत्कृष्ट स्थिति वाले। जघन्य गुण काले, उत्कृष्ट गुण काले, अजघन्योत्कृष्ट गुण काले जानें इसी प्रकार वर्ण, गंध, रस, स्पर्श वाले पुद्‌गलों की वर्गणा एक है – यावत् अजघन्योत्कृष्ट गुण रूक्ष पुद्‌गलों की वर्गणा एक है।

**सूत्र - ५२**

सब द्वीप समुद्रों के मध्य में रहा हुआ–यावत् जम्बूद्वीप एक है।

**सूत्र - ५३**

इस अवसर्पिणी काल में चौबीस तीर्थंकरों में से अन्तिम तीर्थंकर श्रमण भगवान महावीर अकेले सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, निर्वाण प्राप्त, एवं सब दुःखों से रहित हुए।

**सूत्र - ५४**

अनुत्तरोपपातिक देवों की ऊंचाई एक हाथ की है।

**सूत्र - ५५**

आर्द्रा नक्षत्र का एक तारा कहा गया है। चित्रा नक्षत्र का एक तारा कहा गया है। स्वाति नक्षत्र का एक तारा कहा गया है।

**सूत्र - ५६**

एक प्रदेश में रहे हुए पुद्‌गल अनन्त कहे गए हैं। इसी प्रकार एक समय की स्थिति वाले–एक गुण काले पुद्‌गल – यावत् एक गुण रूक्ष पुद्‌गल अनन्त कहे गए हैं।

**स्थान-१ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण**

# स्थान–२

## उद्देशक-१

**सूत्र - ५७**

लोक में जो कुछ है वह सब दो प्रकार का है, यथाजीव और अजीव ।

जीव का द्वैविध्य इस प्रकार है – त्रस और स्थावर, सयोनिक और अयोनिक, सायुष्य और निरायुष्य, सेन्द्रिय और अनेन्द्रिय, सवेदक और अवेदक, सरूपी और अरूपी, सपुद्‌गल और अपुद्‌गल, संसार-समापन्नक और असंसार-समापन्नक, शाश्वत और अशाश्वत ।

**सूत्र - ५८**

अजीव का द्वैविध्य इस प्रकार है – आकाशास्तिकाय और नो आकाशास्तिकाय, धर्मास्तिकाय और अध-र्मास्तिकाय ।

**सूत्र - ५९**

(अन्य तत्त्वों का स्वपक्ष और प्रतिपक्ष इस प्रकार है) बंध और मोक्ष, पुण्य और पाप, आस्रव और संवर, वेदना और निर्जरा ।

**सूत्र - ६०**

क्रिया दो प्रकार की कही गई है, यथा जीव क्रिया और अजीव क्रिया । जीव क्रिया दो प्रकार की कही गई है, यथा–सम्यक्त्व क्रिया और मिथ्यात्व क्रिया । अजीव क्रिया दो प्रकार की कही गई है, यथा–ऐर्यापथिकी और साम्परायिकी ।

क्रिया दो प्रकार की कही गई है, यथा–कायिकी और आधिकरणिकी । कायिकी क्रिया दो प्रकार की कही गई है, यथा–अनुपरतकाय क्रिया और दुष्प्रयुक्तकाय क्रिया । आधिकरणिकी क्रिया दो प्रकार की कही गई है, यथा – संयोजनाधिकरणिकी और निर्वर्तनाधिकरणिकी ।

क्रिया दो प्रकार की कही गई है, यथा–प्राद्वेषिकी और पारितापनिकी । प्राद्वेषिकी क्रिया दो प्रकार की कही गई है, यथा–जीव-प्राद्वेषिकी और अजीव-प्राद्वेषिकी । पारितापनिकी क्रिया दो प्रकार की कही गई है, यथा–स्व-हस्तपारितापनिकी और परहस्तपारितापनिकी ।

क्रिया दो प्रकार की कही गई है, यथा–प्राणातिपात क्रिया, परहस्त प्राणातिपात क्रिया दो प्रकार की कही गई है, यथा–स्वहस्त प्राणातिपात क्रिया, परहस्त प्राणातिपात क्रिया । अप्रत्याख्यान क्रिया दो प्रकार की कही गई है, यथा–जीव अप्रत्याख्यान क्रिया, अजीव अप्रत्याख्यान क्रिया ।

क्रिया दो प्रकार की है, आरम्भिकी और पारिग्रहिकी । आरम्भिकी क्रिया दो प्रकार की है, यथा–जीव आरम्भिकी और अजीव आरम्भिकी । पारिग्रहिकी क्रिया भी दो प्रकार की है, यथा–जीव-पारिग्रहिकी और अजीव-पारिग्रहिकी ।

क्रिया दो प्रकार की कही गई है, यथा–माया-प्रत्ययिकी और मिथ्यादर्शन-प्रत्ययिकी । माया-प्रत्ययिकी क्रिया दो प्रकार की कही गई है, यथा–आत्म-भाव-वंकनता और पर-भाव-वंकनता । मिथ्यादर्शन प्रत्ययिकी क्रिया दो प्रकार की कही गई है, यथा–ऊनातिरिक्त मिथ्यादर्शन, प्रत्ययिकी तद्‌व्यतिरिक्त मिथ्यादर्शन प्रत्ययिकी ।

क्रिया दो प्रकार की है, दृष्टिजा और स्पृष्टिजा । दृष्टिजा क्रिया दो प्रकार की है, यथा–जीव-दृष्टिजा और अजीव-दृष्टिजा । इसी प्रकार पृष्टिजा भी जानना ।

दो क्रियाएं कही गई हैं, यथा–प्रातीत्यिकी और सामन्तोपनिपातिकी । प्रातीत्यिकी क्रिया दो प्रकार की कही गई है, यथा–जीव-प्रातीत्यिकी और अजीव-प्रातीत्यिकी । इसी प्रकार सामन्तोपनिपातिकी भी जाननी चाहिए ।

दो क्रियाएं हैं, स्वहस्तिकी और नैसृष्टिकी । स्वहस्तिकी क्रिया दो प्रकार की है, जीव-स्वहस्तिकी और अजीव-स्वहस्तिकी । नैसृष्टिकी क्रिया भी इसी प्रकार जानना ।

क्रिया दो प्रकार की कही गई है, यथा–आज्ञापनिकी और वैदारिणी। नैसृष्टिकी क्रिया की तरह इनके भी दो दो भेद जानने चाहिए।

दो क्रियाएं कही गई हैं, यथा–अनाभोगप्रत्यया और अनवकांक्षप्रत्यया। अनाभोगप्रत्यया क्रिया दो प्रकार की कही गई है, यथा–अनायुक्त आदानता और अनायुक्त प्रमार्जनता। अनवकांक्षप्रत्यया क्रिया दो प्रकार की कही गई है, यथा–आत्म-शरीर-अनवकांक्षा प्रत्यया। पर-शरीर-अनवकांक्षा प्रत्यया।

दो क्रियाएं कही गई हैं, यथा–राग-प्रत्यया और द्वेष-प्रत्यया। राग-प्रत्यया क्रिया दो प्रकार की कही गई है, यथा–माया-प्रत्यया और लोभ-प्रत्यया। द्वेष-प्रत्यया क्रिया दो प्रकार की कही गई है। यथा–क्रोध-प्रत्यया और मान-प्रत्यया।

**सूत्र - ६१**

गर्हा–पाप की निन्दा दो प्रकार की कही गई है, यथा–कुछ प्राणी केवल मन से ही पाप की निन्दा करते हैं, कुछ केवल वचन से ही पाप की निन्दा करते हैं। अथवा–गर्हा के दो भेद कहे गए हैं, यथा–कोई प्राणी दीर्घ काल पर्यन्त 'आजन्म' गर्हा करता है, कोई प्राणी थोड़े काल पर्यन्त गर्हा करता है।

**सूत्र - ६२**

प्रत्याख्यान दो प्रकार का कहा गया है, यथा–कोई कोई प्राणी केवल मन से प्रत्याख्यान करते हैं, कोई कोई प्राणी केवल वचन से प्रत्याख्यान करते हैं। अथवा–प्रत्याख्यान के दो भेद कहे गए हैं, यथा–कोई दीर्घकाल पर्यन्त प्रत्याख्यान करते हैं, कोई अल्पकालीन प्रत्याख्यान करते हैं।

**सूत्र - ६३**

दो गुणों से युक्त अनगार अनादि, अनन्त, दीर्घकालीन चार गति रूप भवाटवी को पार कर लेता है, यथा–ज्ञान और चारित्र से।

**सूत्र - ६४**

दो स्थानों को जाने बिना और त्यागे बिना आत्मा को केवली-प्ररूपित धर्म सूनने के लिए नहीं मिलता, यथा – आरम्भ और परिग्रह। दो स्थान जाने बिना और त्यागे बिना आत्मा शुद्ध सम्यक्त्व नहीं पाता है, यथा–आरम्भ और परिग्रह।

दो स्थान जाने बिना और त्यागे बिना आत्मा गृहवास का त्याग कर और मुण्डित होकर शुद्ध प्रव्रज्या अंगीकार नहीं कर सकता है, यथा–आरम्भ और परिग्रह। इसी प्रकार–

शुद्ध ब्रह्मचर्य का पालन नहीं कर सकता है, शुद्ध संयम से अपने आपको संयत नहीं कर सकता है, शुद्ध संवर से संवृत्त नहीं हो सकता है, सम्पूर्ण मतिज्ञान नहीं प्राप्त कर सकता, सम्पूर्ण श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनः पर्यव ज्ञान और केवल ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकता है।

**सूत्र - ६५**

दो स्थानों को जानकर और त्यागकर आत्मा केवलि प्ररूपित धर्म सून सकता है–यावत् केवलज्ञान प्राप्त कर सकता है, यथा–आरम्भ और परिग्रह।

**सूत्र - ६६**

दो स्थानों से आत्मा केवलि प्ररूपित धर्म सून सकता है, यावत्-केवलज्ञान प्राप्त कर सकता है। यथा–श्रद्धापूर्वक 'धर्मकी उपादेयता' सूनकर और समझकर।

**सूत्र - ६७**

दो प्रकार का समय कहा गया है, यथा–अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी।

**सूत्र - ६८**

उन्माद दो प्रकार का कहा गया है, यथा–यक्ष के प्रवेश से होने वाला, मोहनीय कर्म के उदय से होने वाला।

इसमें जो यक्षावेश उन्माद है उसका सरलता से वेदन हो सकता है । तथा जो मोहनीय के उदय से होने वाला है उसका कठिनाई से वेदन होता है और उसे कठिनाई से ही दूर किया जा सकता है ।

**सूत्र - ६९**

दण्ड दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–अर्थदण्ड-और अनर्थ-दण्ड ।

नैरयिक जीवों के दो दण्ड कहे गए हैं, यथा–अर्थ-दण्ड और अनर्थ-दण्ड । इसी तरह विमानवासी देव पर्यन्त चौबीस दण्डक समझ लेना चाहिए ।

**सूत्र - ७०**

दर्शन दो प्रकार का कहा गया है, यथा–सम्यग्दर्शन और मिथ्यादर्शन ।

सम्यग्दर्शन के दो भेद कहे गए हैं, यथा–निसर्ग सम्यग्दर्शन और अभिगम सम्यग्दर्शन । निसर्ग सम्यग्दर्शन के दो भेद कहे गए हैं, यथा–प्रतिपाति और अप्रतिपाति । अभिगम सम्यग्दर्शन के दो भेद कहे गए हैं, यथा–प्रतिपाति और अप्रतिपाति ।

मिथ्यादर्शन दो प्रकार का कहा गया है, यथा–अभिग्रहिक मिथ्यादर्शन और अनभिग्रहिक मिथ्यादर्शन । अभिग्रहिक मिथ्यादर्शन दो प्रकार का कहा गया है, यथा–सपर्यवसित (सान्त) और अपर्यवसित (अनन्त), इसी प्रकार अनभिग्रहिक मिथ्यादर्शन के भी दो भेद जानना ।

**सूत्र - ७१**

ज्ञान दो प्रकार का कहा गया है, यथा–प्रत्यक्ष और परोक्ष ।

प्रत्यक्ष ज्ञान दो प्रकार का कहा गया है, यथा–केवलज्ञान और नो केवलज्ञान । केवलज्ञान दो प्रकार का कहा गया है, यथा–भवस्थ-केवलज्ञान और सिद्ध-केवलज्ञान । भवस्थ-केवलज्ञान दो प्रकार का है, यथा–सयोगी-भवस्थ-केवलज्ञान, अयोगी-भवस्थ-केवलज्ञान ।

सयोगी-भवस्थ-केवलज्ञान दो प्रकार का कहा गया है, यथा–प्रथम-समय-सयोगी-भवस्थ-केवलज्ञान, अप्रथम-समय-सयोगी-भवस्थ-केवलज्ञान । अचरम-समय-सयोगी-भवस्थ-केवलज्ञान । इसी प्रकार अयोगी-भवस्थ -केवलज्ञान के भी दो भेद जानने चाहिए ।

सिद्ध-केवलज्ञान के दो भेद कहे गए हैं, यथा–अनन्तर-सिद्ध-केवलज्ञान और परम्पर-सिद्ध-केवलज्ञान । अनन्तर-सिद्ध-केवलज्ञान दो प्रकार का कहा गया है, यथा-एकान्तर सिद्ध केवलज्ञान, अनेकान्तर सिद्ध केवलज्ञान। परम्परसिद्ध केवलज्ञान दो प्रकार का कहा गया है, यथा–एक परम्पर सिद्ध केवलज्ञान, अनेक परम्पर सिद्ध केवलज्ञान ।

नो केवलज्ञान दो प्रकार का कहा गया है, अवधिज्ञान और मनःपर्यवज्ञान ।

अवधिज्ञान दो प्रकार का कहा गया है, यथा–भवप्रत्ययिक और क्षायोपशमिक । दो का अवधिज्ञान भव-प्रत्ययिक कहा गया है, यथा–देवताओं का और नैरयिकों का । दो का अवधिज्ञान क्षायोपशमिक कहा गया है, यथा–मनुष्यों का और तिर्यंच पंचेन्द्रियों का ।

मनःपर्यवज्ञान दो प्रकार का कहा गया है, यथा–ऋजुमति और विपुलमति । परोक्ष ज्ञान दो प्रकार का कहा गया है, यथा–आभिनिबोधिक ज्ञान और श्रुतज्ञान ।

आभिनिबोधिक ज्ञान दो प्रकार का कहा गया है, श्रुतनिश्रित और अश्रुतनिश्रित । श्रुतनिश्रित दो प्रकार का कहा गया है, यथा–अर्थावग्रह और व्यंजनावग्रह । अश्रुतनिश्रित के भी पूर्वोक्त दो भेद समझने चाहिए । श्रुतज्ञान दो प्रकार का कहा गया है, यथा–अंग-प्रविष्ट और अंग-बाह्य । अंग-बाह्य के दो भेद कहे गए हैं, यथा–आवश्यक और आवश्यक-व्यतिरिक्त । आवश्यक-व्यतिरिक्त दो प्रकार का कहा गया है, यथा–कालिक और उत्कालिक ।

**सूत्र - ७२**

धर्म दो प्रकार का कहा गया है, यथा–श्रुत-धर्म और चारित्र-धर्म । श्रुत-धर्म दो प्रकार का कहा है, यथा–सूत्र-श्रुत-धर्म और अर्थ-श्रुत-धर्म । चारित्र धर्म दो प्रकार का कहा है, यथा–अगार-चारित्र-धर्म और अनगार-चारित्र धर्म ।

संयम दो प्रकार का है, सराग-संयम और वीतराग-संयम । सराग-संयम दो प्रकार का है, सूक्ष्म-सम्परायराग - संयम, बादर-सम्परायराग-संयम । सूक्ष्म सम्पराय सराग संयम दो प्रकार का है–प्रथम समय-सूक्ष्मसम्पराय सराग संयम, अप्रथम समय सूक्ष्म सम्पराय सराग संयम । अथवा चरम-समय-सूक्ष्म-सम्पराय-सराग-संयम, अचरम समय - सूक्ष्म-सम्पराय-सराग-संयम । अथवा सूक्ष्म-सम्पराय-संयम दो प्रकार का है, 'संक्लिश्यमान' उपशम-श्रेणी से गिरते हुए जीव का, 'विशुध्यमान' उपशम-श्रेणी पर चढ़ते हुए जीव का ।

बादर-सम्पराय-सराग-संयम दो प्रकार का है, प्रथम-समय-बादर-सम्पराय-सराग-संयम, अप्रथम-समय-बादर-सम्पराय-संयम । अथवा चरम-समय-बादर-सम्पराय-सराग-संयम और अचरम बादर सम्पराय सराग संयम । अथवा बादर-सम्पराय-सराग-संयम दो प्रकार का है, प्रतिपाती और अप्रतिपाती ।

वीतराग संयम दो प्रकार का कहा गया है, यथा–उपशान्त-कषाय-वीतराग-संयम, क्षीण-कषाय-वीतराग-संयम उपशान्तकषाय वीतराग संयम दो प्रकार का है, प्रथम-समय-उपशान्त-कषाय-वीतराग-संयम और अप्रथम-समय-उपशान्त-कषाय-वीतराग-संयम, अथवा चरमसमय उपशान्त कषाय वीतराग संयम, अचरम-समय-उपशान्त -कषाय-वीतराग संयम । क्षीण-कषाय-वीतराग-संयम दो प्रकार का है–छद्मस्थ-क्षीण-कषाय-वीतराग-संयम, केवली-क्षीण-कषाय-वीतराग-संयम । छद्मस्थ क्षीण कषाय वीतराग संयम दो प्रकार का है, स्वयंबुद्ध-छद्मस्थ-क्षीण-कषाय-वीतराग-संयम, बुद्ध-बोधित-छद्मस्थ-क्षीण-कषाय-वीतराग-संयम । स्वयंबुद्ध-छद्मस्थ-क्षीण-कषाय-वीतराग-संयम दो प्रकार का कहा गया है, प्रथम-समय-स्वयंबुद्ध-छद्मस्थ-क्षीण-कषाय-वीतराग-संयम, अप्रथम-समय-स्वयंबुद्ध-छद्मस्थ-क्षीण-कषाय-वीतराग संयम । अथवा चरम-समय-स्वयंबुद्ध-छद्मस्थ-क्षीण-कषाय-वीतराग -संयम और अचरम-समय-स्वयंबुद्ध-छद्मस्थ-क्षीण-कषाय-वीतराग-संयम ।

बुद्ध-बोधित-छद्मस्थ-क्षीण-कषाय-वीतराग-संयम दो प्रकार का कहा गया है, यथा–प्रथम-समय-बुद्ध-बोधित-छद्मस्थ-क्षीण-कषाय-वीतराग संयम और अप्रथम-समय-बुद्ध-बोधित-छद्मस्थ-क्षीण-कषाय-वीतराग-संयम। अथवा चरम-समय और अचरम-समय-बुद्ध-बोधित-केवली । क्षीण-कषाय-वीतराग-संयम दो प्रकार का कहा गया है । यथा–

सयोगी-केवली-क्षीण-कषाय-वीतराग-संयम, अयोगी-केवली-क्षीण-कषाय-वीतराग-संयम । सयोगी-केवली-क्षीण-कषाय-वीतराग-संयम दो प्रकार का है, प्रथम-समय और अप्रथम-समय-सयोगी-केवली-क्षीण-कषाय -वीतराग-संयम, अथवा चरम-समय और अचरम समय सयोगी-केवली-क्षीण-कषाय-वीतराग-संयम ।

अयोगी-केवली-क्षीण-कषाय-वीतराग-संयम दो प्रकार का है, प्रथम-समय और अप्रथमसमय अयोगी-केवली-क्षीण-कषाय-वीतराग-संयम । अथवा चरम-समय-अयोगी-केवली-क्षीण-कषाय-वीतराग-संयम, अचरम-समय-अयोगी-केवली-क्षीण-कषाय-वीतराग-संयम ।

**सूत्र - ७३**

पृथ्वीकायिक जीव दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–सूक्ष्म और बादर । इस प्रकार यावत् दो प्रकार के वनस्पतिकायिक जीव कहे गए हैं, यथा–सूक्ष्म और बादर ।

पृथ्वीकायिक जीव दो प्रकार के हैं, यथा–पर्याप्त और अपर्याप्त । इस प्रकार यावत्–दो प्रकार के वनस्पति-कायिक जीव कहे गए हैं, यथा–पर्याप्त और अपर्याप्त । पृथ्वीकायिक जीव दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–परिणत और अपरिणत । इस प्रकार यावत्–दो प्रकार के वनस्पतिकायिक जीव कहे गए हैं, यथा–परिणत और अपरिणत ।

द्रव्य दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–परिणत और अपरिणत ।

पृथ्वीकायिक जीव दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–गतिसमापन्नक, अगतिसमापन्नक (स्थित) । इस प्रकार यावत्–वनस्पतिकायिक जीव दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–गति-समापन्नक और अगति-समापन्नक ।

द्रव्य दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–गति-समापन्नक और अगति-समापन्नक ।

पृथ्वीकायिक जीव दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–अनन्तरावगाढ़ और परम्परावगाढ़ । इस प्रकार यावत्–द्रव्य दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–अनन्तरावगाढ़ और परम्परावगाढ़ ।

**सूत्र - ७४**

काल दो प्रकार का कहा गया है, यथा–अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी ।

आकाश दो प्रकार का है, यथा–लोकाकाश और अलोकाकाश ।

**सूत्र - ७५**

नैरयिक जीवों के दो शरीर कहे गए हैं, यथा–आभ्यन्तर और बाह्य । कार्मण आभ्यन्तर हैं और वैक्रिय बाह्य शरीर हैं । देवताओं के शरीर भी इसी तरह कहने चाहिए ।

पृथ्वीकायिक जीवों के दो शरीर कहे गए हैं, यथा–आभ्यन्तर और बाह्य । कार्मण आभ्यन्तर हैं और औदारिक बाह्य हैं । वनस्पतिकायिक जीव पर्यन्त ऐसा समझना चाहिए । द्वीन्द्रिय जीवों के दो शरीर कहे गए हैं, यथा–आभ्यन्तर और बाह्य । कार्मण आभ्यन्तर हैं और हड्डी, माँस, रक्त से बना हुआ औदारिक शरीर बाह्य है । चतुरिन्द्रिय जीव पर्यन्त ऐसा ही समझना चाहिए । पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनि के जीवों के दो शरीर हैं, आभ्यन्तर और बाह्य । कार्मण आभ्यन्तर हैं और हड्डी, माँस, रक्त, स्नायु और शिराओं से बना हुआ औदारिक शरीर बाह्य है । इसी तरह मनुष्यों के भी दो शरीर समझने चाहिए ।

विग्रहगति-प्राप्त नैरयिकों के दो शरीर कहे गए हैं, यथा–तैजस और कार्मण । इस प्रकार निरन्तर वैमानिक पर्यन्त जानना चाहिए । नैरयिक जीवों के शरीर की उत्पत्ति दो स्थानों से होती है यथा–राग से और द्वेष से । नैरयिक जीवों के शरीर दो कारणों से पूर्ण अवयव वाले होते हैं, यथा–राग से द्वेष से । इसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त समझना ।

दो काय–'जीव समुदाय' है, त्रसकाय और स्थावरकाय । त्रसकाय दो प्रकार का है, भवसिद्धिक और अभवसिद्धिक । इसी प्रकार स्थावरकाय भी समझना ।

**सूत्र - ७६**

दो दिशाओं के अभिमुख होकर निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियों को दीक्षा देना कल्पता है । यथा–पूर्व और उत्तर । इसी प्रकार–प्रव्रजित करना, सूत्रार्थ सिखाना, महाव्रतों का आरोपण करना, सहभोजन करना, सहनिवास करना, स्वाध्याय करने के लिए कहना, अभ्यस्तशास्त्र को स्थिर करने के लिए कहना, अभ्यस्तशास्त्र अन्य को पढ़ाने के लिए कहना, आलोचन करना, प्रतिक्रमण करना, अतिचारों की निन्दा करना, गुरु समक्ष अतिचारों की गर्हा करना, लगे हुए दोष का छेदन करना, दोष की शुद्धि करना, पुनः दोष न करने के लिए तत्पर होना, यथायोग्य प्रायश्चित्त और तपग्रहण करना कल्पता है ।

दो दिशाओं के अभिमुख होकर निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियों को मारणान्तिक संलेखना-तप विशेष से कर्म-शरीर को क्षीण करना, भोजन-पानी का त्याग कर पादपोपगमन संथारा स्वीकार कर मृत्यु की कामना नहीं करते हुए स्थित रहना कल्पता है, यथा–पूर्व और उत्तर ।

## स्थान-२ – उद्देशक-२

**सूत्र - ७७**

जो देव ऊर्ध्वलोक में उत्पन्न हुए हैं–वे चाहे कल्पोपपन्न हों चाहे विमानोपपन्न हों और जो ज्योतिष्चक्र में स्थित हों वे चाहे गतिरहित हों या सतत गमनशील हों–वे जो, सदा-सतत-पापकर्म ज्ञानावरणादि का बंध करते हैं उसका फल कतिपय देव तो उसी भव में अनुभव कर लेते हैं और कतिपय देव अन्य भव में वेदन करते हैं ।

नैरयिक जीव जो सदा-सतत-पापकर्म का बंध करते हैं उसका फल कतिपय नैरयिक तो उसी भव में अनुभव कर लेते हैं और कितनेक अन्य भव में भी वेदना वेदते हैं । पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक जीव पर्यन्त ऐसा ही समझना चाहिए । मनुष्यों द्वारा जो सदा-सतत-पापकर्म का बंध किया जाता है उसका फल कतिपय इस भवमें वेदते हैं और कतिपय अन्य भवमें अनुभव करते हैं । मनुष्य को छोड़कर शेष अभिलाप समान समझना ।

**सूत्र - ७८**

नैरयिक जीवों की दो गति और दो आगति कही गई है, यथा–नैरयिक जीवों के बीच उत्पन्न होता हुआ या तो

मनुष्यों में से या पंचेन्द्रय तिर्यंच जीवों में से उत्पन्न होता है । वही नैरयिक जीव नैरयिकत्व को छोड़ता हुआ मनुष्य अथवा पंचेन्द्रिय तिर्यंच के रूप में उत्पन्न होता है । इसी तरह असुरकुमार असुरकुमारत्व को छोड़ता हुआ मनुष्य अथवा तिर्यंच के रूप में उत्पन्न होता है । इसी तरह सब देवों के लिए समझना चाहिए ।

पृथ्वीकाय के जीव दो गति और दो आगति वाले कहे गए हैं, यथा–पृथ्वीकायिक जीव पृथ्वीकाय में उत्पन्न होता हुआ पृथ्वीकाय में या नो-पृथ्वीकाय में उत्पन्न होता है । वह पृथ्वीकायिक जीव पृथ्वीकायित्व को छोड़ता हुआ पृथ्वीकाय में अथवा नो-पृथ्वीकाय में उत्पन्न होता है । इसी प्रकार मनुष्य-पर्यन्त समझना चाहिए ।

**सूत्र - ७९**

नैरयिक जीव दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–भवसिद्धिक और अभवसिद्धिक । इस प्रकार वैमानिक पर्यन्त समझना चाहिए । नैरयिक जीव दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–अनन्तरोपपन्नक और परम्परोपपन्नक । इसी तरह वैमानिक पर्यन्त समझना चाहिए ।

नैरयिक जीव दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–गतिसमापन्नक और अगतिसमापन्नक । इसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त जानना चाहिए । नैरयिक जीव दो प्रकार के हैं, प्रथमसमयोत्पन्न और अप्रथमसमयोत्पन्न । इसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त जानना ।

नैरयिक दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–आहारक और अनाहारक । इस प्रकार वैमानिक पर्यन्त समझ लेना चाहिए । नैरयिक दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–उच्छ्वासक और नोउच्छ्वासक । यों वैमानिको पर्यन्त समझना चाहिए ।

नैरयिक दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–सेन्द्रिय और अनीन्द्रिय । यों वैमानिक पर्यन्त जानना चाहिए । नैरयिक दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–पर्याप्त और अपर्याप्त । यों वैमानिक पर्यन्त जानना चाहिए ।

नैरयिक दो प्रकार के हैं, संज्ञी और असंज्ञी । यों विकलेन्द्रियों को छोड़कर जो असंज्ञी अवस्था से नैरयिक आदि के रूप में उत्पन्न होते हैं वे असंज्ञी व्यन्तर तक ही उत्पन्न होते हैं । 'ज्योतिष्क और वैमानिक में नहीं' इस विविक्षा से उनका यहाँ ग्रहण नहीं करके वाणव्यन्तर पर्यन्त कहा है । जिसने मनःपर्याप्ति पूर्ण की हो वह संज्ञी और पूर्ण न की हो वह असंज्ञी वाणव्यन्तर पर्यन्त सब पंचेन्द्रियों के विषय में जानना ।

नैरयिक दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–भाषक और अभाषक । या एकेन्द्रिय को छोड़कर शेष सब दण्डक में समझ लेना चाहिए ।

नैरयिक दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि । इसी तरह एकेन्द्रिय को छोड़कर शेष सब दण्डक में समझना चाहिए ।

नैरयिक दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–परित्तसंसारिक और अनन्तसंसारिक । यों वैमानिक पर्यन्त समझना चाहिए ।

नैरयिक दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–संख्येयकाल की स्थिति वाले, असंख्येयकाल की स्थिति वाले । इस प्रकार एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय को छोड़कर वाणव्यन्तर पर्यन्त पंचेन्द्रिय जीव समझने चाहिए । नैरयिक दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–सुलभबोधिक और दुर्लभबोधिक । यों वैमानिक देव पर्यन्त जानना चाहिए ।

नैरयिक दो प्रकार के कहे गए हैं । यथा–कृष्णपाक्षिक और शुक्लपाक्षिक । यों वैमानिक देव पर्यन्त जानना चाहिए । नैरयिक दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–चरम और अचरम । इस प्रकार वैमानिक देव पर्यन्त जानना चाहिए।

**सूत्र - ८०**

दो प्रकार से आत्मा अधोलोक को जानता और देखता है, यथा–वैक्रिय-समुद्घातरूप आत्मस्वभाव से 'अवधिज्ञानी' आत्मा अधोलोक को जानता और देखता है और वैक्रिय-समुद्घात किये बिना ही आत्म-स्वभाव से आत्मा अधोलोक को जानता और देखता है । (तात्पर्य यह है कि) अवधिज्ञानी वैक्रिय-समुद्घात करके या वैक्रिय-समुद्घात किये बिना ही अधोलोक को जानता है और देखता है । इसी तरह ऊर्ध्वलोक को जानता और देखता है ।

इसी तरह परिपूर्णलोक की जानता और देखता है ।

दो प्रकार से आत्मा अधोलोक को जानता और देखता है, यथा–वैक्रिय शरीर बनाकर आत्मा अधोलोक को जानता और देखता है और वैक्रिय शरीर बनाए बिना भी आत्मा अधोलोक को जानता और देखता है । अवधि ज्ञानी वैक्रिय शरीर बनाकर अथवा बनाए बिना भी अधोलोक को जानता और देखता है । इसी तरह तिर्यक् लोक आदि आलापक समझना ।

दो प्रकार से आत्मा शब्द सूनता है । यथा–देश रूप से आत्मा शब्द सूनता है और सर्व रूप से भी आत्मा शब्द सूनता है । इसी तरह रूप देखता है । इसी तरह गंध सूँघता है । इसी तरह रसों का आस्वादन करता है । इसी तरह स्पर्श का अनुभव करता है ।

दो प्रकार से आत्मा प्रकाश करता है, यथा–देश रूप से आत्मा प्रकाश करता है, सर्व रूप से भी आत्मा प्रकाश करता है । इसी तरह विशेष रूप से प्रकाश करता है । विशेष रूप से वैक्रिय करता है । परिचार मैथुन करता है विशेष रूप से भाषा बोलता है । विशेष रूप से आहार करता है । विशेष रूप से परिणमन करता है । विशेष रूप से वेदन करता है । विशेष रूप से निर्जरा करता है । ये नव सूत्र देश और सर्व दो प्रकार से हैं ।

देव दो प्रकार से शब्द सूनता है, यथा–देव देश से भी शब्द सूनता है और सर्व से भी शब्द सूनता है–यावत् निर्जरा करता है ।

मरुत देव दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–एक शरीर वाले और दो शरीर वाले । इसी तरह किन्नर, किंपुरुष, गंधर्व, नागकुमार, सुवर्णकुमार, अग्निकुमार, वायुकुमार–ये भी एक शरीर और दो शरीर वाले समझने चाहिए ।

## स्थान-२ – उद्देशक-३

**सूत्र - ८१**

शब्द दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–भाषा शब्द और नो-भाषा शब्द ।

भाषा शब्द दो प्रकार का कहा गया है, यथा–अक्षर सम्बद्ध और नो-अक्षर सम्बद्ध ।

नो-भाषा शब्द दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–आतोद्य और नो-आतोद्य । आतोद्य शब्द दो प्रकार का कहा गया है, यथा–तत और वितत, तत शब्द दो प्रकार का कहा गया है, यथा–घन और शुषिर । इसी तरह वितत शब्द भी दो प्रकार का जानना चाहिए ।

नो आतोद्य शब्द दो प्रकार के कहे गए हैं । भूषण शब्द और नो-भूषण शब्द । नो-भूषण शब्द दो प्रकार का कहा गया है, यथा–ताल शब्द और लात-प्रहार का शब्द ।

शब्द की उत्पत्ति दो प्रकार से होती है, यथा–पुद्गलों के परस्पर मिलने से शब्द की उत्पत्ति होती है, पुद्गलों के भेद शब्द की उत्पत्ति होती है ।

**सूत्र - ८२**

दो प्रकार से पुद्गल परस्पर सम्बद्ध होते हैं, यथा–स्वयं ही पुद्गल इकट्ठे हो जाते हैं, अथवा अन्य के द्वारा इकट्ठे किये जाते हैं । दो प्रकार से पुद्गल भिन्न भिन्न होते हैं, यथा–स्वयं ही पुद्गल भिन्न होते हैं । अथवा अन्य द्वारा पुद्गल भिन्न किये जाते हैं ।

दो प्रकार से पुद्गल सड़ते हैं, यथा–स्वयं ही पुद्गल सड़ते हैं, अथवा अन्य के द्वारा सड़ाये जाते हैं । इसी तरह पुद्गल ऊपर गिरते हैं और इसी तरह पुद्गल नष्ट होते हैं ।

पुद्गल दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–भिन्न और अभिन्न ।

पुद्गल दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–नष्ट होने वाले और नहीं नष्ट होने वाले । पुद्गल दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–परमाणु पुद्गल और परमाणु से भिन्न स्कन्ध आदि ।

पुद्गल दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–सूक्ष्म और बादर ।

पुद्गल दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा बद्धपार्श्व स्पृष्ट और नो बद्धपार्श्व स्पृष्ट ।

पुद्‌गल दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–पर्यायातीत अपर्यायातीत । अथवा कर्ण पुद्‌गल की तरह समस्त रूप से गृहीत और असमस्त रूप से गृहीत ।

पुद्‌गल दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–जीव द्वारा गृहीत और अगृहीत ।

पुद्‌गल दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–इष्ट और अनिष्ट ।

पुद्‌गल दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–कान्त और अकान्त ।

पुद्‌गल दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–प्रिय और अप्रिय ।

पुद्‌गल दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–मनोज्ञ और अमनोज्ञ ।

पुद्‌गल दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–मनाम (मनःप्रिय) और अमनाम ।

**सूत्र - ८३**

शब्द दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–गृहीत और अगृहीत । इसी तरह दृष्ट और अनिष्ट–यावत् मनाम और अमनाम शब्द जानने चाहिए ।

इसी तरह रूप, गंध, रस और स्पर्श–प्रत्येक में छ छ आलापक जानने चाहिए ।

**सूत्र - ८४**

आचार दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–ज्ञानाचार और नो-ज्ञानाचार । नो ज्ञानाचार दो प्रकार का कहा गया है, यथा–दर्शनाचार और नो-दर्शनाचार । नो-दर्शनाचार दो प्रकार का कहा गया है, यथा–चारित्राचार और नो-चारित्राचार । नो चारित्राचार दो प्रकार का कहा गया है, यथा–तपाचार और वीर्याचार ।

प्रतिमाएं (प्रतिज्ञाएं) दो कही गई हैं, यथा–समाधि प्रतिमा और उपधान प्रतिमा, प्रतिमाएं दो कही गई हैं, यथा–विवेक प्रतिमा और व्युत्सर्ग प्रतिमा । प्रतिमाएं दो कही गई हैं, यथा–भद्रा और सुभद्रा । प्रतिमाएं दो कही गई हैं, यथा–महाभद्र और सर्वतोभद्र । प्रतिमाएं दो कही गई हैं, यथा–लघुमोक प्रतिमा और महतीमोक प्रतिमा । प्रतिमाएं दो कही गई हैं, यथा–यवमध्यचन्द्र प्रतिमा और वज्रमध्यचन्द्र प्रतिमा ।

सामायिक दो प्रकार की हैं, यथा–आगार सामायिक । अनगार सामायिक ।

**सूत्र - ८५**

दो प्रकार के जीवों का जन्म उपपात कहलाता है, देवों और नैरयिकों का । दो प्रकार के जीवों का मरना उद्वर्तन कहलाता है, नैरयिकों का और भवनवासी देवों का । दो प्रकार के जीवों का मरना च्यवन कहलाता है, ज्योतिष्कों का और वैमानिकों का ।

दो प्रकार के जीवों की गर्भ में उत्पत्ति होती है, यथा–मनुष्यों की और पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों की । दो प्रकार के जीव गर्भ में रहे हुए आहार करते हैं, मनुष्य और तिर्यंच पंचेन्द्रिय । दो प्रकार के जीव गर्भ में वृद्धि पाते हैं, यथा–मनुष्य और पंचेन्द्रिय तिर्यंच ।

इसी प्रकार दो प्रकार के जीव गर्भ में अपचय पाते हैं । दो प्रकार के जीव गर्भ में विकुर्वणा करते हैं । इसी प्रकार दो प्रकार के जीव गर्भ में गति-पर्याय पाते हैं । दो प्रकार के जीव गर्भ में समुद्घात करते हैं । दो प्रकार के जीव गर्भ में कालसंयोग करते हैं । दो प्रकार के जीव गर्भ से आयाति जन्म पाते हैं । दो प्रकार के जीव गर्भ में मरण पाते हैं ।

दो प्रकार के जीवों का शरीर त्वचा और सन्धि बन्धन वाला कहा गया है, यथा–

मनुष्यों का और तिर्यंच पंचेन्द्रिय का । दो प्रकार के जीव शुक्र और शोणित से उत्पन्न होते हैं, यथा–मनुष्य और तिर्यंच पंचेन्द्रिय ।

स्थिति दो प्रकार की कही गई है, यथा–कायस्थिति और भवस्थिति । दो प्रकार के जीवों की कायस्थिति कही गई है, यथा–मनुष्यों की और पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिकों की । दो प्रकार के जीवों की भवस्थिति कही गई है, यथा–देवों की और नैरयिकों की ।

आयु दो प्रकार की कही गई है, यथा–अद्धायु और भवायु । दो प्रकार के जीवों की अद्धायु कही गई है, यथा–

मनुष्यों की और पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिकों की । दो प्रकार के जीवों की भवायु कही गई है, यथा–देवों की और नैरयिकों की ।

कर्म दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–प्रदेश कर्म और अनुभाव कर्म ।

दो प्रकार के जीव यथाबद्ध आयुष्य पूर्ण करते हैं, यथा–देव और नैरयिक । दो प्रकार के जीवों की आयु सोपक्रमवाली कही है, मनुष्यों की और तिर्यक्योनिकों की ।

**सूत्र - ८६**

जम्बूद्वीप में मेरु पर्वत के उत्तर और दक्षिण में अत्यन्त तुल्य, विशेषता रहित, विविधता रहित, लम्बाई-चौड़ाई, आकार एवं परिधि में एक दूसरे का अतिक्रम नहीं करने वाले दो वर्ष-क्षेत्र कहे गए हैं, यथा–भरत और ऐरवत । इसी तरह हैमवत और हिरण्यवत, हरिवर्ष और रम्यक्वर्ष जानने चाहिए ।

इस जम्बूद्वीपवर्ती मेरु पर्वत के पूर्व और पश्चिम दिशा में दो क्षेत्र कहे गए हैं जो अत्यन्त समान-विशेषता रहित हैं, यथा–पूर्व विदेह और अपर विदेह ।

जम्बूद्वीपवर्ती मेरु पर्वत के उत्तर और दक्षिण में दो कुरु (क्षेत्र) कहे गए जो परस्पर अत्यन्त समान हैं, यथा – देवकुरु और उत्तरकुरु । वहाँ दो विशाल महावृक्ष हैं जो परस्पर सर्वथा तुल्य, विशेषता रहित, विविधता रहित, लम्बा, चौड़ाई, ऊंचाई, गहराई, आकृति और परिधि में एक दूसरे का अतिक्रम नहीं करते हैं, यथा–कूट शाल्मली और जंबू सुदर्शना । वहाँ महाऋद्धि वाले यावत्–महान् सुख वाले और पल्योपम की स्थिति वाले दो देव रहते हैं, यथा–वेणुदेव गरुड़ और अनाढ़िय । ये दोनों जम्बूद्वीप के अधिपति हैं ।

**सूत्र - ८७**

जम्बूद्वीप मे मेरु पर्वत के उत्तर और दक्षिण में दो वर्षधर पर्वत कहे गए हैं, परस्पर सर्वथा समान, विशेषता रहित, विविधता रहित, लम्बाई-चौड़ाई, ऊंचाई, गहराई, संस्थान और परिधि में एक दूसरे का अतिक्रम नहीं करते हैं, यथा–लघु हिमवान् और शिखरी । इसी प्रकार महाहिमवान् और रुक्मि । निषध और नीलवान् पर्वतों के सम्बन्ध में जानना ।

जम्बूद्वीपवर्ती मेरु पर्वत के उत्तर और दक्षिण में हैमवत् और एरण्यवत क्षेत्र में दो गोल वैताढ्य पर्वत है जो अति समान, विशेषता और विविधता और विविधता रहित–यावत् उनके नाम, यथा–शब्दापाती और विकटपाती । वहाँ महाऋद्धि वाले–यावत् पल्योपम की स्थिति वाले दो देव रहते हैं, यथा–स्वाति और प्रभास ।

जम्बूद्वीपवर्ती मेरु पर्वत के उत्तर और दक्षिण में हरिवर्ष और रम्यक्वर्ष में दो गोल वैताढ्य पर्वत हैं जो अति-समान हैं यावत्–जिनके नाम, गन्धपाती और माल्यवंत पर्याय । वहाँ महाऋद्धि वाले–यावत् पल्योपम की स्थिति वाले दो देव रहते हैं, अरुण और पद्म ।

जम्बूद्वीपवर्ती मेरु पर्वत के दक्षिण में और देवगुरु के पूर्व और पश्चिम में अश्वस्कन्ध के समान अर्धचन्द्र की आकृति वाले दो वक्षस्कार पर्वत हैं जो परस्पर अति समान हैं–यावत् उनके नाम । सौमनस और विद्युत्प्रभ । जम्बूद्वीपवर्ती मेरु पर्वत के उत्तर में तथा कुरु के पूर्व और पश्चिम भाग में अश्व स्कन्ध के समान, अर्धचन्द्र की आकृति वाले दो वक्षस्कार पर्वत हैं जो परस्पर अतिसमान यावत् नाम । गन्धमादन और माल्यवान ।

जम्बूद्वीपवर्ती मेरु पर्वत के उत्तर और दक्षिण में दो दो दीर्घ वैताढ्य पर्वत हैं जो अतितुल्य हैं–यावत् उनके नाम, यथा–भरत दीर्घ वैताढ्य और ऐरवत दीर्घ वैताढ्य ।

उस भरत दीर्घ वैताढ्य में दो गुफाएं कही गई हैं जो अति तुल्य, अविशेष, विविधता रहित और एक दूसरी की लम्बाई, चौड़ाई, ऊंचाई, संस्थान और परिधि में अतिक्रम न करने वाली हैं, उनके नाम । तिमिस्र गुफा और खण्ड-प्रपात गुफा । वहाँ महर्द्धिक-यावत्–पल्योपम की स्थिति वाले दो देव रहते हैं, नाम । कृतमालक और नृत्य-मालक । एरवत-दीर्घ वैताढ्य में दो गुफाएं हैं जो अतिसमान हैं यावत्–कृतमालक और नृत्यमालक देव हैं ।

जम्बूद्वीपवर्ती मेरु पर्वत के दक्षिण में लघुहिमवान् वर्षधर पर्वत पर दो कूट कहे गए हैं जो परस्पर अति तुल्य–

यावत् लम्बाई-चौड़ाई, ऊंचाई, संस्थान और परिधि में एक दूसरे का अतिक्रमण नहीं करने वाले हैं, उनके नाम- लघुहिमवानकूट और वैश्रमणकूट । जम्बूद्वीपवर्ती मेरु पर्वत के दक्षिण में महाहिमवान् वर्षधर पर्वत पर दो कूट कहे गए हैं जो परस्पर अति तुल्य हैं उनके नाम-महाहिमवनकूट और वैडूर्यकूट । इसी तरह निषध वर्षधर पर्वत पर दो कूट कहे गए हैं जो अति तुल्य हैं-यावत् उनके नाम । निषधकूट और रुचकप्रभकूट । जम्बूद्वीपवर्ती मेरु पर्वत के उत्तर में नीलवान वर्षधर पर्वत पर दो कूट हैं जो अति तुल्य हैं-यावत् उनके नाम । नीलवंतकूट और उपदर्शकूट । इसी तरह तरह रुक्मिकूट वर्षधर पर्वत पर दो कूट हैं यावत्-उनके नाम । रुक्मिकूट और मणिकांचनकूट । इसी तरह शिखरी वर्षधर पर्वत पर दो कूट हैं जो यावत्-उनके नाम, शिखरीकूट और तिगिच्छकूट ।

**सूत्र - ८८**

जम्बूद्वीपवर्ती मेरु पर्वत के उत्तर और दक्षिण में लघुहिमवान् और शिखरी वर्षधर पर्वतों में दो महान् द्रह हैं जो अति-सम, तुल्य, अविशेष, विचित्रतारहित और लम्बाई-चौड़ाई-गहराई, संस्थान एवं परिधि में एक दूसरे का अतिक्रमण नहीं करने वाले हैं, उनके नाम । पद्म द्रह और पुण्डरीक द्रह । वहाँ महाऋद्धि वाली-यावत् पल्योपम की स्थिति वाली दो देवियाँ रहती हैं, उनके नाम । श्री देवी और लक्ष्मी देवी । इसी तरह महाहिमवान् और रुक्मि वर्षधर पर्वतों पर दो महाद्रह हैं जो अतिसमाह हैं-यावत् उनके नाम, महापद्म द्रह और महापुण्डरिक द्रह । देवियों के नाम । ह्री देवी और वृद्धि देवी । इसी तरह निषध और नीलवान पर्वतों में-तिगिच्छ द्रह और केसरी द्रह । देवियाँ 'धृति' और 'कीर्ति' ।

जम्बूद्वीपवर्ती मेरु पर्वत के दक्षिण में महाहिमवान् वर्षधर पर्वत के महापद्म द्रह में दो महानदियाँ प्रवाहित होती हैं, उनके नाम । रोहिता और हरिकान्ता । इसी तरह निषध वर्षधर पर्वत के तिगिच्छ द्रह में से दो महानदियाँ प्रवाहित होती हैं, नाम । हरिता और शीतोदा । जम्बूद्वीपवर्ती मेरुपर्वत के उत्तर में नीलवान् वर्षधर पर्वत के केसरी द्रह में से दो महानदियाँ प्रवाहित होती हैं, उनके नाम । शीता और नारीकान्ता । इसी तरह रुक्मि वर्षधर पर्वत के महापुण्डरीक द्रह में से दो महानदियाँ प्रवाहित होती हैं, नाम । नरकान्ता और रूप्यकुला ।

जम्बूद्वीपवर्ती मेरु पर्वत के दक्षिण भरत क्षेत्र में दो प्रपातद्रह हैं जो अतिसमान हैं यावत्-उनके नाम । गंगा-प्रपात द्रह और सिन्धुप्रपात द्रह । इसी तरह हैमवतवर्ष में दो प्रपात द्रह हैं जो बहुसमान हैं यावत्-उनके नाम । रोहित-प्रपात द्रह और रोहितांश-प्रपात द्रह । जम्बूद्वीपवर्ती मेरु पर्वत के दक्षिण में हरिवर्ष क्षेत्र में दो प्रपात द्रह हैं जो अति समान हैं यावत्-उनके नाम । हरि पर्वत द्रह और हरिकान्त प्रपात द्रह । जम्बूद्वीपवर्ती मेरु पर्वत के उत्तर और दक्षिण में महाविदेह वर्ष में दो प्रपात द्रह हैं जो अतिसमान हैं यावत्-उनके नाम । शीताप्रपात द्रह और शीतोदाप्रपात द्रह । जम्बूद्वीपवर्ती मेरु पर्वत के उत्तर में रम्यक्वर्ष में दो प्रपात द्रह हैं जो बहुसमान हैं यावत्-उनके नाम । नरकान्त प्रपात द्रह और नारीकान्त प्रपात द्रह । इसी तरह हेरण्यवत में दो प्रपात द्रह हैं उनके नाम । सुवर्ण कुल प्रपात द्रह और रूप्यकुल प्रपात द्रह । जम्बूद्वीपवर्ती मेरु पर्वत के उत्तर में ऐरवत वर्ष में दो प्रपात द्रह हैं और अतिसमान हैं यावत्-उनके नाम । रक्तप्रपात द्रह और रक्तावतीप्रपात द्रह ।

जम्बूद्वीपवर्ती मेरु पर्वत के दक्षिण में भरतवर्ष में दो महानदियाँ हैं जो अतिसमान हैं । यावत्-उनके नाम । गंगा और सिन्धु । इसी तरह जितने प्रपात द्रह कहे गए हैं उतनी नदियाँ भी समझ लेनी चाहिए यावत्-ऐरवत वर्ष में दो महानदियाँ हैं जो अतिसमान तुल्य हैं यावत्-उनके नाम । रक्ता और रक्तवती ।

**सूत्र - ८९**

जम्बूद्वीपवर्ती भरत और ऐरवत क्षेत्र में अतीत उत्सर्पिणी के सुषमदुःषम नामक आरे का काल दो क्रोड़ा क्रोड़ी सागरोपम का था । इसी तरह इस अवसर्पिणी के लिए भी समझना चाहिए । इसी तरह आगामी उत्सर्पिणी के यावत्-सुषमदुःषम आरे का काल दो क्रोड़ा क्रोड़ी सागरोपम होगा । जम्बूद्वीपवर्ती भरत-ऐरवत क्षेत्र में गत उत्सर्पिणी के सुषम नामक आरे में मनुष्य दो कोस की ऊंचाई वाले थे । तथा दो पल्योपम की आयु वाले थे । इसी तरह इस अवसर्पिणी में यावत्-आयुष्य था । इसी तरह आगामी उत्सर्पिणी में यावत्-आयुष्य होगा । जम्बूद्वीप में भरत और

ऐरवत क्षेत्र में एक समय में एक युग में दो अर्हत् वंश उत्पन्न हुए, उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे। इसी तरह चक्रवर्ती वंश, इसी तरह दशार वंश। जम्बूद्वीपवर्ती भरत ऐरवत क्षेत्र में एक समय में दो अर्हत् उत्पन्न हुए, उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे। इसी तरह दशार और चक्रवर्ती। इसी तरह बलदेव और वासुदेव दशार वंशी-यावत् उत्पन्न हुए, उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे।

जम्बूद्वीपवर्ती दोनों कुरुक्षेत्र में मनुष्य सदा सुषम-सुषम काल की उत्तम ऋद्धि को प्राप्त कर उनका अनुभव करते हुए रहते हैं, यथा-देवकुरु और उत्तरकुरु। जम्बूद्वीपवर्ती दो क्षेत्रों में मनुष्य सदा सुषम काल की उत्तम ऋद्धि को प्राप्त करके उसका अनुभव करते हुए रहते हैं, यथा-हरिवर्ष और रम्यक्वर्ष। जम्बूद्वीपवर्ती दो क्षेत्रों में मनुष्य सदा सुषम दुःषम की उत्तम ऋद्धि को प्राप्त करके उसका अनुभव करते हुए विचरते हैं, हेमवत और हिरण्यवत। जम्बूद्वीपवर्ती दो क्षेत्रों में मनुष्य सदा दुःषम सुषम की उत्तम ऋद्धि को प्राप्त करके उसका अनुभव करते हुए रहते हैं, यथा-पूर्व-विदेह और अपर-विदेह। जम्बूद्वीपवर्ती दो क्षेत्रों में मनुष्य छः प्रकार के काल का अनुभव करते हुए रहते हैं यथा-भरत और ऐरवत।

**सूत्र - ९०**

जम्बूद्वीप में दो चन्द्रमा प्रकाशित होते थे, होते हैं और होते रहेंगे। दो सूर्य तपते थे, तपते हैं और तपते रहेंगे। दो कृतिका, दो रोहिणी, दो मृगशिर, दो आर्द्रा इस प्रकार निम्न गाथाओं के अनुसार सब दो-दो जान लेने चाहिए।

**सूत्र - ९१**

दो कृतिका, दो रोहिणी, दो मृगशिर, दो आर्द्रा, दो पुनर्वसु, दो पुष्य, दो अश्लेषी, दो मघा, दो पूर्वाफाल्गुनी, दो उत्तराफाल्गुनी।

**सूत्र - ९२**

दो हस्त, दो चित्रा, दो स्वाती, दो विशाखा, दो अनुराधा, दो ज्येष्ठा, दो मूल, दो पूर्वाषाढ़ा, दो उत्तराषाढ़ा, दो अभिजित।

**सूत्र - ९३**

दो श्रवण, दो धनिष्ठा, दो शतभिशा, दो पूर्वा भाद्रपादा, दो उत्तरा भाद्रपादा, दो रेवती, दो अश्विनी और दो भरणी।

**सूत्र - ९४**

अट्ठाईस नक्षत्रों के देवता-१ दो अग्नि, २. दो प्रजापति, ३. दो सोम, ४. दो रुद्र, ५. दो अदिति, ६. दो बृहस्पति, ७. दो सर्प, ८. दो पितृ, ९. दो भग, १०. दो अर्यमन्, ११. दो सविता, १२. दो त्वष्टा, १३. दो वायु, १४. दो इन्द्राग्नि, १५. दो मित्र, १६. दो इन्द्र, १७. दो निर्ऋति, १८. दो आप, १९. दो विश्व, २०. दो ब्रह्मा, २१. दो विष्णु, २२. दो वसु, २३. दो वरुण, २४. दो अज, २५. दो विवृद्धि, २६. दो पूषन्, २७. दो अश्विन, २८. दो यम।

अट्ठासी ग्रह-१. दो अंगारक, २. दो विकालक, ३. दो लोहिताक्ष, ४. दो शनैश्वर, ५. दो आधुनिक, ६. दो प्राधुनिक, ७. दो कण, ८. दो कनक, ९. दो कनकनक, १०. दो कनकवितानक, ११. दो कनकसंतानक, १२. दो सोम, १३. दो सहित, १४. दो आससन, १५. दो कार्योपग, १६. दो कर्बटक, १७. दो अजकरक, १८. दो दुंदुभग, १९. दो शंख, २०. दो शंखवर्ण, २१. दो शंखवर्णाभ, २२. दो कंस, २३. दो कंसवर्ण, २४. दो कंसवर्णाभ, २५. दो रुक्मी, २६. दो रुक्मीभास, २७. दो नील, २८. दो नीलाभास, २९. दो भास, ३०. दो भासराशि, ३१. दो तिल, ३२. दो तिल-पुष्यष्पवर्ण, ३३. दो उदक, ३४. दो उदकपंचवर्ण, ३५. दो काक, ३६. दो काकान्ध, ३७. दो इन्द्रग्रीव, ३८. दो धूमकेतु, ३९. दो हरि, ४०. दो पिंगल, ४१. दो बुध, ४२. दो शुक्र, ४३. दो बृहस्पति, ४४. दो राहु, ४५. दो अगस्ति, ४६. दो माणवक, ४७. दो कास, ४८. दो स्पर्श, ४९. दो धूरा, ५०. दो प्रमुख, ५१. दो विकट, ५२. दो विसंधि, ५३. दो नियल्ल, ५४. दो पदिक, ५५. दो जटिकादिलक, ५६. दो अरुण, ५७. दो अग्रिल, ५८. दो काल, ५९. दो महाकाल, ६०. दो स्वस्तिक, ६१. दो सौवस्तिक, ६२. दो वर्धमानक, ६३. दो प्रलम्ब, ६४. दो नित्यालोक, ६५. दो नित्योद्योत, ६६. दो

स्वयंप्रभ, ६७. दो अवभाष, ६८. दो श्रेयंकर, ६९. दो क्षेमंकर, ७०. दो आभंकर, ७१. दो प्रभंकर, ७२. दो अपराजित, ७३. दो अरत, ७४. दो अशोक, ७५. दो विगतशोक, ७६. दो विमल, ७७. दो व्यक्त, ७८. दो वितथ्य, ७९. दो विशाल, ८०. दो शाल, ८१. दो सुव्रत, ८२. दो अनिवर्त, ८३. दो एकजटी, ८४. दो द्विजटी, ८५. दो करकरिक, ८६. दो राजार्गल, ८७. दो पुष्पकेतु और ८८. दो भावकेतु ।

**सूत्र - ९५**

जम्बूद्वीप की वेदिका दो कोस ऊंची है । लवण समुद्र चक्रवाल विष्कम्भ से दो लाख योजन का है । लवण समुद्र की वेदिका दो कोस की ऊंची है ।

**सूत्र - ९६**

पूर्वार्ध धातकीखंडवर्ती मेरु पर्वत के उत्तर और दक्षिण में दो क्षेत्र कहे गए हैं जो अति समान हैं–यावत् उनके नाम–भरत और ऐरवत । पहले जम्बूद्वीप के अधिकार में कहा वैसे यहाँ भी कहना चाहिए यावत्–दो क्षेत्र में मनुष्य छः प्रकार के काल का अनुभव करते हुए रहते हैं, उनके नाम–भरत और ऐरवत । विशेषता यह है कि वहाँ कूटशाल्मली और धातकी वृक्ष हैं । देवता गरुड़ (वेणुदेव) और सुदर्शन ।

धातकीखंड के पश्चिमार्ध में और मेरु पर्वत के उत्तर-दक्षिण में दो क्षेत्र कहे गए हैं जो परस्पर अति तुल्य हैं यावत् उनके नाम–भरत और ऐरवत् यावत्–दो क्षेत्रों में मनुष्य छः प्रकार के काल का अनुभव करते हुए रहते हैं, यथा–भरत और ऐरवत । विशेषता यह है कि यहाँ कूटशाल्मली और महाधातकी वृक्ष हैं और देव गरुड़ वेणुदेव तथा प्रियदर्शन हैं ।

धातकी खण्ड द्वीप की वेदिका दो कोस की ऊंचाई वाली कही गई है ।

धातकीखंड द्वीप में क्षेत्र–१. दो भरत, २. दो ऐरवत, ३. दो हिमवंत, ४. दो हिरण्यवंत, ५. दो हरिवर्ष, ६. दो रम्यक्वर्ष, ७. दो पूर्व विदेह, ८. दो अपर विदेह, ९. दो देव कुरु । १०. दो देवकुरु महावृक्ष, ११. दो देवकुरु महा-वृक्षावासी देव, १२. दो उत्तरकुरु, १३. दो उत्तरकुरु महावृक्ष, १४. दो उत्तरकुरु महावृक्षवासी देव, १५. दो लघु हिमवंत, १६. दो महा हिमवंत, १७. दो निषध, १८. दो नीलवंत, १९. दो रुक्मी, २०. दो शिखरी, २१. दो शब्दापाती, २२. दो शब्दापाती वासी 'स्वातिदेव', २३. दो विकटापाती ।

२४. दो विकटापाती वासी, २५. दो गंधापाती, २६. दो गंधापाती वासी, २७. दो माल्यवान पर्वत, २८. दो माल्यवान वासी 'पद्मदेव', २९. दो माल्यवान, ३०. दो चित्रकूट स्कार पर्वत । ३१. दो पद्मकूट, ३२. दो नलिनीकूट, ३३. दो एकशैल, ३४. दो त्रिकूट, ३५. दो वैश्रमण कूट, ३६. दो अंजन कूट, ३७. दो मातंजनकूट, ३८. दो सौमनस, ३९. दो विद्युत्प्रभ, ४०. दो अंकापाती कूट, ४१. दो पक्ष्मापाती कूट, ४२. दो आशीविष कूट, ४३. दो सुखावह कूट, ४४. दो चंद्र पर्वत, ४५. दो सूर्य पर्वत, ४६. दो नाग पर्वत, ४७. दो देव पर्वत, ४८. दो गंधमादन, ४९. दो इषुकार पर्वत ।

५०. दो लघु हिमवान कूट, ५१. दो वैश्रमणकूट, ५२. दो महाहिमवान कूट, ५३. दो वैडूर्य कूट, ५४. दो निषध कूट, ५५. दो रुचक कूट, ५६. दो नीलवंत कूट, ५७. दो उपदर्शन कूट, ५८. दो रुक्मी कूट, ५९. दो मणिकंचन कूट, ६०. दो शिखरी कूट, ६१. दो तिगिच्छ कूट, ६२. दो पद्महृद, ६३. दो पद्म हृदवासी 'श्रीदेवी', ६४. दो महापद्म हृद, ६५. दो महापद्म हृदवासी 'ह्रीदेवी', ६६. दो पौंडरीक हृद, ६७. दो पौंडरीक हृदवासी 'लक्ष्मीदेवी', ६८. दो महा पौंडरीक हृद, ६९. दो महा पौंडरीक हृदवासी, ७०. दो तिगिच्छ हृद, ७१. दो तिगिच्छ हृदवासी, ७२. दो केसरी हृद, ७३. दो केसरी हृदवासी ।

७४. दो गंगा प्रपात हृद, ७५. दो सिंधु प्रपात हृद, ७६. दो रोहिता प्रपात हृद, ७७. दो रोहितांश प्रपात हृद, ७८. दो हरि प्रपात हृद, ७९. दो हरिकांता प्रपात हृद, ८०. दो शीता प्रपात हृद, ८१. दो शीतोदा प्रपात हृद, ८२. दो नरकांता प्रपात हृद, ८३. दो नारीकांता प्रपात हृद, ८४. दो सुवर्ण कूला प्रपात हृद, ८५. दो रूप्यकूला प्रपात हृद, ८६. दो रक्ता प्रपात हृद, ८७. दो रक्तावती प्रपात हृद ।

८८. दो रोहिता महानदी, ८९. दो हरिकांता, ९०. दो हरिसलिला, ९१. दो शीतोदा, ९२. दो शीता, ९३. दो नारीकांता, ९४. दो नरकांता, ९५. दो रूप्यकूला, ९६. दो गाथावती, ९७. दो द्रहवती, ९८. दो पंकवती, ९९. दो तप्त

जला, १००. दो मत्तजला, १०१. दो उन्मत्त जला, १०२. दो क्षीरोदा, १०३. दो सिंह स्रोता, १०४. दो अन्तोवाहिनी, १०५. दो उर्मिमालिनी, १०६. दो फेनमालिनी, १०७. दो गंभीर मालिनी ।

१०८. दो कच्छ, १०९. दो सुकच्छ, ११०. दो महाकच्छ, १११. दो कच्छकावती, ११२. दो आवर्त, ११३.दो मंगलावर्त, ११४. दो पुष्कलावर्त, ११५. दो पुष्कलावती, ११६. दो वत्स, ११७. दो सुवत्स, ११८. दो महावत्स, ११९. दो वत्सावती, १२०. दो रम्य, १२१. दो रम्यक्, १२२. दो रमणिक, १२३. दो मंगलावती, १२४. दो पद्म, १२५. दो सुपद्म, १२७. दो पद्मावती, १२८. दो शंख, १२९. दो कुमुद, १३०. दो नलिन, १३१. दो नलिनावती, १३२. दो वप्र, १३३. दो सुवप्र, १३४. दो महावप्र, १३५. दो वप्रावती, १३६. दो वल्गु, १३७. दो सुवल्गु, १३८. दो गंधिल, १३९. दो गंधिलावती ये चक्रवर्ती विजय हैं ।

चक्रवर्ती विजय राजधानियाँ–१४०. दो क्षेमा, १४१. दो क्षेमपुरी, १४२. दो रिष्टा, १४३. दो रिष्टपुरी, १४४.दो खड्गी, १४५. दो मंजुषा, १४६. दो औषधि, १४७. दो पौंडरिकिणी, १४८. दो सुसीमा, १४९. दो कुँडला, १५०. दो अपराजिता, १५१. दो प्रभंकरा, १५२. दो अंकावती, १५३. दो पद्मावती, १५४. दो शुभा, १५५. दो रत्नसंचया, १५६. दो अश्वपुरा, १५७. दो सिंहपुरा, १५८. दो महापुरा, १५९. दो विजयपुरा, १६०. दो अपराजिता, १६१. दो अपरा, १६२. दो अशोका, १६३. दो वीतशोका, १६४. दो विजया, १६५. दो वैजयंती, १६६. दो जयंती, १६७. दो अपराजिता, १६८. दो चक्रपुरा, १६९. दो खड्गपुरा, १७०. दो अवध्या, १७१. दो अयोध्या ।

मेरु पर्वत पर वन खंड–१७२. दो भद्रशाल वन, १७३. दो नंदन वन, १७४. दो सौमनस वन, १७५. दो पंडक वन मेरु पर्वत पर शिला–१७६. दो पांडुकंबल शिला, १७७. दो अतिकंबल शिला, १७८. दो रक्तकंबल शिला, १७९. दो अतिरक्तकंबल शिला, १८०. दो मेरु पर्वत, १८१. दो मेरु पर्वत की चूलिका है ।

**सूत्र - ९७**

कालोदधि समुद्र की वेदिका दो कोस की ऊंचाई वाली है । पुष्करवर द्वीपार्ध के पूर्वार्ध में मेरु पर्वत के उत्तर और दक्षिण में दो क्षेत्र हैं जो अति तुल्य हैं-यावत् नाम–भरत और ऐरवत । इसी तरह यावत्–दो कुरु हैं, यथा –देव कुरु और उत्तर कुरु । वहाँ दो विशाल महाद्रुम हैं, उनके नाम–कुटशाल्मली और पद्मवृक्ष देव गरुड़ वेणुदेव और पद्म यावत् –वहाँ मनुष्य छः प्रकार के काल का अनुभव करते हुए रहते हैं ।

पुष्करवर द्वीपार्ध के पश्चिमार्ध में और मेरु पर्वत के उत्तर दक्षिण में दो क्षेत्र कहे गए हैं इत्यादि पूर्ववत् । विशेषता यह है कि वहाँ कूटशाल्मली और महापद्म वृक्ष हैं और देव गरुड़ (वेणुदेव) और पुण्डरिक हैं । पुष्कर-द्वीपार्ध में दो भरत, दो ऐरवत–यावत् दो मेरु और दो मेरु चूलिकाएं हैं । पुष्करवर द्वीप की वेदिका दो कोस की ऊंची कही गई है । सब द्वीप-समुद्रों की वेदिकाएं दो कोस की ऊंचाई वाली कही गई हैं ।

**सूत्र - ९८**

असुरकुमारेन्द्र दो कहे गए हैं, यथा–चमर और बलि । नागकुमारेन्द्र दो कहे गए हैं, यथा–धरन और भूता-नन्द सुवर्णकुमारेन्द्र दो कहे गए हैं, वेणुदेव और वेणुदाली । विद्युतकुमारेन्द्र दो कहे गए हैं, यथा–हरि और हरिसह। अग्निकुमारेन्द्र दो कहे गए हैं, यथा–अग्निशिख और अग्निमाणव । द्वीपकुमारेन्द्र दो कहे गए हैं, यथा–पूर्ण और वाशिष्ट । उदधिकुमारेन्द्र दो कहे गए हैं, यथा–जलकान्त और जलप्रभ । दिक्कुमारेन्द्र दो कहे गए हैं, यथा–अमितगति और अमितवाहन । वायुकुमारेन्द्र दो कहे गए हैं, यथा–वेलम्ब और प्रभंजन । स्तनितकुमारेन्द्र दो कहे गए हैं, यथा–घोष और महाघोष । यह भवनपति के इन्द्र हैं ।

सोलह व्यन्तरों के बत्तीस इन्द्र हैं यथा–पिशाचेन्द्र दो हैं, सुरूप और प्रतिरूप । यक्षेन्द्र दो कहे गए हैं, यथा–पूर्णभद्र और माणिभद्र । राक्षसेन्द्र दो कहे गए हैं, यथा–भीम और महाभीम । किन्नरेन्द्र दो कहे गए हैं, यथा–किन्नर और किंपुरुष । किंपुरुषेन्द्र दो कहे गए हैं, यथा–सत्पुरुष और महापुरुष । महोरगेन्द्र दो कहे गए हैं, यथा–अतिकाय और महाकाय । गन्धवेन्द्र दो कहे गए हैं, यथा–गीतरति और गीतयश । अणपन्निकेन्द्र दो कहे गए हैं, यथा–सन्निहित और समान्य । पणपन्निकेन्द्र दो कहे गए हैं, यथा–धात और विहात । ऋषिवादीन्द्र दो कहे गए हैं, यथा–ऋषि और

ऋषिपालक । भूतवादीन्द्र दो कहे गए हैं, यथा–ईश्वर और महेश्वर । क्रन्दितेन्द्र दो कहे गए हैं, यथा–सुवत्स और विशाल महाक्रन्दितेन्द्र दो कहे गए हैं, हास्य और हास्यरति । कुभांडेन्द्र दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा –श्वेत और महाश्वेत । पतंगेन्द्र दो कहे गए हैं, यथा–पतय और पतयपति ।

ज्योतिष्क देवों के दो इन्द्र कहे गए हैं, यथा–चन्द्र और सूर्य ।

बारह देवलोकों के दस इन्द्र हैं । यथा–सौधर्म और ईशान कल्प में दो इन्द्र हैं, शक्र और ईशान । सनत्कुमार और माहेन्द्र में दो इन्द्र कहे गए हैं, सनत्कुमार और माहेन्द्र । ब्रह्मलोक और लान्तक कल्प में दो इन्द्र कहे गए हैं, यथा–ब्रह्म और लान्तक । महाशुक्र और सहस्रार कल्प में दो इन्द्र कहे गए हैं, यथा–महाशुक्र और सहस्रार । आनत, प्राणत, आरण और अच्युत कल्प में दो इन्द्र कहे गए हैं, यथा–प्राणत और अच्युत इस प्रकार सब मिलकर चौंसठ इन्द्र होते हैं

महाशुक्र और सहस्रार कल्प में विमान दो वर्ण के हैं, यथा–पीले और श्वेत ।

ग्रैवेयक देवों की ऊंचाई दो हाथ की है ।

## स्थान-२ – उद्देशक-४

### सूत्र - ९९

समय अथवा आवलिका जीव और अजीव कहे जाते हैं । श्वासोच्छ्वास अथवा स्तोक जीव और अजीव कहे जाते हैं । इसी तरह–लव, मुहूर्त्त और अहोरात्र पक्ष और मास ऋतु और अयन संवत्सर और युग सौ वर्ष और हजार वर्ष लाख वर्ष और क्रोड़ वर्ष त्रुटितांग और त्रुटित, पूर्वांग अथवा पूर्व, अडडांग और अडड, अववांग और अवव, हूहूतांग और हूहूत, उत्पलांग और उत्पल, पद्मग और पद्म, नलिनांग और नलिन, अक्षनिकुरांग और अक्षि-निकुर, अयुतांग और अयुत, नियुतांग और नियुत, प्रयुतांग और प्रयुत, चूलिकांग और चूलिक, शीर्ष प्रहेलिकांग और शीर्ष प्रहेलिका, पल्योपम और सागरोपम, उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी ये सब जीव और अजीव कहे जाते हैं ।

ग्राम अथवा नगर, निगम, राजधानी, खेड़ा, कर्बट, मडम्ब, द्रोणमुख, पत्तन, आकर, आश्रम, संवाह, सन्निवेश, गौकुल, आराम, उद्यान, वन, वनखंड, बावड़ी, पुष्करिणी, सरोवर, सरोवरों की पंक्ति, कूप, तालाब, ह्रद, नदी, रत्न-प्रभादिक पृथ्वी, घनोदधि, वातस्कन्ध (घनवात तनुवात), अन्य पोलार (वातस्कन्ध के नीचे का आकाश जहाँ सूक्ष्म पृथ्वीकाय के जीव भरे हैं), वलय (पृथ्वी के घनोदधि, घनवात, तनुवातरूप वेष्टन), विग्रह (लोकनाड़ी) द्वीप, समुद्र, वेला, वेदिका, द्वार, तोरण, नैरयिक नरकवास, वैमानिक, वैमानिकों के आवास, कल्पविमानावास, वर्ष क्षेत्र वर्षधर पर्वत, कूट, कूटागार, विजय राजधानी ये सब जीवाजीवात्मक होने से जीव और अजीव कहे जाते हैं ।

छाया, आतप, ज्योत्स्ना, अन्धकार, अवमान, उन्मान, अतियान गृह, उद्यानगृह, अवलिम्ब, सणिप्पवाय ये सब जीव और अजीव कहे जाते हैं, (जीव और अजीव से व्याप्त होने के कारण अभेदनय की अपेक्षा से जीव या अजीव कहे जाते हैं) ।

### सूत्र - १००

दो राशियाँ कही गई हैं, यथा–जीव-राशि और अजीव-राशि ।

बंध दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–राग-बंध और द्वेष-बंध ।

जीव दो प्रकार से पाप कर्म बाँधते हैं, यथा–राग से और द्वेष से ।

जीव दो प्रकार से पाप कर्मों की उदीरणा करते हैं, आभ्युपगमिक (स्वेच्छा से) वेदना से, औपक्रमिक (कर्मोदय वश) वेदना से । इसी तरह दो प्रकार से जीव कर्मों का वेदन एवं निर्जरा करते हैं, यथा–आभ्युपगमिक और औपक्रमिक वेदना से ।

### सूत्र - १०१

दो प्रकार से आत्मा शरीर का स्पर्श करके बाहर नीकलती है, यथा–देश से-शरीर के अमुक भाग अथवा अमुक अवयव का स्पर्श करके आत्मा बाहर नीकलती है । सर्व से-सम्पूर्ण शरीर का स्पर्श करके आत्मा बाहर नीकलती है । इसी तरह स्फुरण करके स्फोटन करके, संकोचन करके शरीर से अलग होकर आत्मा बाहर नीकलती है ।

**सूत्र - १०२**

दो प्रकार से आत्मा को केवलि-प्ररूपित धर्म सूनने के लिए मिलता है, यथा–कर्मों के क्षय से अथवा उपशम से । इसी प्रकार यावत्–दो कारणों से जीव को मनःपर्याय ज्ञान उत्पन्न होता है, यथा–(आवरणीय कर्म के) क्षय से अथवा उपशम से ।

**सूत्र - १०३**

औपमिक काल दो प्रकार का है, पल्योपम और सागरोपम । पल्योपम का स्वरूप क्या है ? पल्योपम का स्वरूप इस प्रकार है ।

**सूत्र - १०४**

एक योजन विस्तार वाले पल्य में एक दिन के उगे हुए बाल निरन्तर एवं निविड़ रूप से ठूँस ठूँस कर भर दिए जाए और

**सूत्र - १०५**

सौ सौ वर्ष में एक एक बाल नीकालने से जितने वर्षों में वह पल्य खाली हो जाए उतने वर्षों के काल को एक पल्योपम समझना चाहिए ।

**सूत्र - १०६**

ऐसे दस क्रोड़ा क्रोड़ी पल्योपम का एक सागरोपम होता है ।

**सूत्र - १०७**

क्रोध दो प्रकार का कहा गया है, यथा–आत्मप्रतिष्ठित और परप्रतिष्ठित । 'अपने आप पर होने वाला या अपने द्वारा उत्पन्न किया हुआ क्रोध आत्म प्रतिष्ठित है ।' 'दूसरे पर होने वाला या उसके द्वारा उत्पन्न किया हुआ क्रोध पर प्रतिष्ठित है । इसी प्रकार नारक यावत्–वैमानिकों को उक्त दो प्रकार मान माया यावत्–मिथ्यादर्शनशल्य भी दो प्रकार का समझना चाहिए ।

**सूत्र - १०८**

संसार समापन्नक 'संसारी' जीव दो प्रकार कहे गए हैं, यथा–त्रस और स्थावर, सर्व जीव दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–सिद्ध और असिद्ध । सर्व जीव दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–सेन्द्रिय और अनिन्द्रिय । इस प्रकार सशरीरी और अशरीरी पर्यन्त निम्न गाथा से समझना चाहिए । यथा–

**सूत्र - १०९**

सिद्ध, सेन्द्रिय, सकाय, सयोगी, सवेदी, सकषायी, सलेश्य, ज्ञानी, साकारोपयुक्त, आहारक, भाषक, चरम, सशरीरी ये और प्रत्येक का प्रतिपक्ष ऐसे दो-दो प्रकार समझना ।

**सूत्र - ११०**

श्रमण भगवान महावीर ने श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए दो प्रकार के मरण सदा (उपादेय रूप से) नहीं कहे हैं, कीर्तित नहीं कहे हैं, व्यक्त नहीं कहे हैं, प्रशस्त नहीं कहे हैं और उनके आचरण की अनुमति नहीं दी है, यथा–वलद् मरण (संयम से खेद पाकर मरना) वशार्त मरण (इन्द्रिय-विषयों के वश होकर मरना) । इसी तरह निदान मरण और तद्भव-मरण । पर्वत से गिरकर मरना और वृक्ष से गिरकर मरना । पानी में डूबकर या अग्नि में जलकर मरना । विष का भक्षण कर मरना और शस्त्र का प्रहार कर मरना ।

दो प्रकार के मरण यावत्–नित्य अनुज्ञात नहीं हैं किन्तु कारण-विशेष होने पर निषिद्ध नहीं हैं, वे इस प्रकार हैं, यथा–वैहायस मरण (वृक्ष की शाखा वगैरह पर लटक कर) और गृध्रपृष्ठ मरण (गौध आदि पक्षियों से शरीर नुचवा कर मरना) ।

श्रमण भगवान महावीर ने दो मरण श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए सदा उपादेय रूप से वर्णित किए हैं–यावत्–उनके लिए अनुमति दी है, यथा पादपोपगमन और भक्त प्रत्याख्यान । पादपोपगमन दो प्रकार का है, यथा–निर्हारिम (ग्राम

नगर आदि में मरना जहाँ मृत्यु संस्कार हो) और अनिर्हारिम (गिरि कन्दरादि में मरना जहाँ मृत्यु संस्कार न हो) । भक्तप्रत्याख्यान दो प्रकार का है, निर्हारिम और अनिर्हारिम ।

**सूत्र - १११**

यह लोक क्या है ? जीव और अजीव ही यह लोक है । लोक में अनन्त क्या है ? जीव और अजीव, लोक में शाश्वत क्या है ? जीव और अजीव ।

**सूत्र - ११२**

बोधि दो प्रकार की है, यथा–ज्ञान-बोधि और दर्शन-बोधि । बुद्ध दो प्रकार के हैं, यथा–ज्ञान-बुद्ध और दर्शन-बुद्ध । इसी तरह मोह को समझना चाहिए । इसी तरह मूढ़ को समझना चाहिए ।

**सूत्र - ११३**

ज्ञानावरणीय कर्म दो प्रकार का है, देशज्ञानावरणीय और सर्व ज्ञानावरणीय । दर्शनावरणीय कर्म भी इस तरह दो प्रकार का है । वेदनीय कर्म दो प्रकार का कहा गया है, यथा–सातावेदनीय और असातावेदनीय । मोहनीय कर्म दो प्रकार का कहा गया है, यथा–दर्शन मोहनीय और चारित्र मोहनीय । आयुष्य कर्म दो प्रकार का कहा गया है, यथा–अद्धायु (कायस्थिति) और भवायु (भवस्थिति) । नाम कर्म दो प्रकार का कहा गया है, यथा–शुभ नाम और अशुभ नाम । गोत्र कर्म दो प्रकार का कहा गया है, यथा–उच्च गोत्र और नीच गोत्र । अन्तराय कर्म दो प्रकार का कहा गया है, यथा–प्रत्युत्पन्न विनाशी (वर्तमान में होने वाले लाभ को नष्ट करने वाला) पिहितागामीपथ (भविष्य में होने वाले लाभ को रोकने वाला) ।

**सूत्र - ११४**

मूर्च्छा दो प्रकार की कही गई है, यथा–प्रेम-प्रत्यया 'राग से होने वाली' द्वेष-प्रत्यया 'द्वेष से होने वाली' प्रेम - प्रत्यया मूर्च्छा दो प्रकार की कही गई है, माया और लोभ । द्वेष प्रत्यया मूर्च्छा दो प्रकार की कही गई है, यथा–क्रोध और मान ।

**सूत्र - ११५**

आराधना दो प्रकार की है । धार्मिक आराधना और केवलि आराधना । धार्मिक आराधना दो प्रकार की है । श्रुतधर्म आराधना और चारित्रधर्म आराधना । केवलि आराधना दो प्रकार की कही गई है, यथा–अन्तक्रिया और कल्पविमानोपपत्ति । यह आराधना श्रुतकेवली की होती है ।

**सूत्र - ११६**

दो तीर्थंकर नील-कमल के समान वर्ण वाले थे, यथा–मुनिसुव्रत और अरिष्टनेमि । दो तीर्थंकर प्रियंगु (वृक्ष-विशेष) के समान वर्ण वाले थे, यथा–श्री मल्लिनाथ और पार्श्वनाथ, दो तीर्थंकर पद्म के समान गौर (लाल) वर्ण के थे, यथा–पद्मप्रभ और वासुपूज्य । दो तीर्थंकर चन्द्र के समान गोर वर्ण वाले थे, यथा–चन्द्रप्रभ और पुष्पदन्त ।

**सूत्र - ११७** सत्यप्रवाद पूर्व की दो वस्तुएं कही गई है ।

**सूत्र - ११८**

पूर्वभाद्रपद नक्षत्र के दो तारे कहे गए हैं । उत्तराभाद्रपद नक्षत्र के दो तारे कहे गए हैं । इसी तरह पूर्व-फाल्गुन और उत्तरफाल्गुन के भी दो दो तारे कहे गए हैं ।

**सूत्र - ११९** मनुष्य-क्षेत्र के अन्दर दो समुद्र हैं, यथा–लवण और कालोदधि समुद्र ।

**सूत्र - १२०**

काम भोगों का त्याग नहीं करने वाले दो चक्रवर्ती मरण-काल में मरकर नीचे सातवीं नरक-पृथ्वी के अप्रतिष्ठान नामक नरकवास में नारकरूप से उत्पन्न हुए, उनके नाम ये हैं, यथा–सुभूम और ब्रह्मदत्त ।

**सूत्र - १२१**

असुरेन्द्रों को छोड़कर भवनवासी देवों को किंचित् न्यून दो पल्योपम की स्थिति कही गई है । सौधर्म कल्प में

देवताओं की उत्कृष्ट स्थिति दो सागरोपम की कही गई है । ईशान कल्प में देवताओं को उत्कृष्ट किंचित् अधिक दो सागरोपम की स्थिति कही गई है । सनत्कुमार कल्प में देवों की जघन्य दो सागरोपम की स्थिति कही गई है । माहेन्द्र कल्प में देवों की जघन्य स्थिति किंचित् अधिक दो सागरोपम की कही गई है ।

**सूत्र - १२२**

दो देवलोक में देवियाँ कही गई है, यथा–सौधर्म और ईशान ।

**सूत्र - १२३**

दो देवलोक में तेजोलेश्या वाले देव हैं, सौधर्म और ईशान ।

**सूत्र - १२४**

दो देवलोक में देव कायपरिचारक (मनुष्य की तरह विषय सेवन करने वाले) कहे गए हैं, यथा–सौधर्म और ईशान, दो देवलोक में देव स्पर्श-परिचारक कहे गए हैं, यथा–सनत्कुमार और माहेन्द्र । दो कल्प में देव रूप-परिचारक कहे गए हैं, यथा–ब्रह्म लोक और लान्तक । दो कल्प में देव शब्द-परिचारक कहे गए हैं, यथा–महाशुक्र और सहस्रार । दो इन्द्र मनः परिचारक कहे गए हैं, यथा–प्राणत और अच्युत । आनत, प्राणत, आरण और अच्युत इन चारों कल्पों में देव मनःपरिचारक हैं, परन्तु यहाँ द्विस्थान का अधिकार होने से 'दो इंदा' ऐसा पद दिया है, क्योंकि इन चारों कल्पों में दो इन्द्र हैं ।

**सूत्र - १२५**

जीव ने द्विस्थान निर्वर्तक (अथवा इन कथ्यमान स्थानों में जन्म लेकर उपार्जित अथवा इन दो स्थानों में जन्म लेने से निवृत्ति होने वाले) पुद्‌गलों को पापकर्मरूप से एकत्रित किये हैं, एकत्रित करते हैं और एकत्रित करेंगे, वे इस प्रकार हैं, यथा–त्रसकाय निवर्तित और स्थावरकाय निवर्तित । इसी तरह उपचय किये, उपचय करते हैं और उपचय करेंगे, बाँधे, बाँधते हैं और बाँधेंगे, उदीरणा की, उदीरणा करते हैं और उदीरणा करेंगे, वेदन, वेदन करते हैं और वेदन करेंगे, निर्जरा की, निर्जरा करते हैं और निर्जरा करेंगे ।

**सूत्र - १२६**

दो प्रदेश वाले स्कन्ध अनन्त कहे गए हैं । दो प्रदेश में रहने वाले पुद्‌गल अनन्त कहे गए हैं । इस प्रकार यावत् द्विगुण रूक्ष पुद्‌गल अनन्त कहे गए हैं ।

## स्थान-२ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

# स्थान– ३

## उद्देशक-१

**सूत्र - १२७**

इन्द्र तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–नाम इन्द्र, स्थापना इन्द्र, द्रव्य इन्द्र ।

इन्द्र तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–ज्ञान इन्द्र, दर्शन इन्द्र और चारित्र इन्द्र ।

इन्द्र तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–देवेन्द्र, असुरेन्द्र और मनुष्येन्द्र ।

**सूत्र - १२८**

विकुर्वणा तीन प्रकार की है, एक बाह्य पुद्‌गलों को ग्रहण करके की जाने वाली विकुर्वणा, एक बाह्य पुद्‌गलों को ग्रहण किये बिना कि जाने वाली विकुर्वणा, एक बाह्य पुद्‌गलों को ग्रहण करके और ग्रहण किये बिना कि जाने वाली विकुर्वणा ।

विकुर्वणा तीन प्रकार की हैं, एक आभ्यन्तर पुद्‌गलों को ग्रहण करके की जाने वाली विकुर्वणा, एक आभ्यन्तर पुद्‌गलों को ग्रहण किये बिना की जाने वाली विकुर्वणा, एक आभ्यन्तर पुद्‌गलों को ग्रहण करके और ग्रहण किये बिना की जाने वाली विकुर्वणा ।

विकुर्वणा तीन प्रकार की हैं–एक बाह्य और आभ्यन्तर पुद्‌गलों को ग्रहण करके की जाने वाली विकुर्वणा । एक बाह्य आभ्यन्तर पुद्‌गलों को ग्रहण किये बिना की जाने वाली विकुर्वणा । एक बाह्य तथा आभ्यन्तर पुद्‌गलों को ग्रहण करके और बिना ग्रहण किये भी की जाने वाली विकुर्वणा ।

**सूत्र - १२९**

नारक तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–कतिसंचित-एक समय में दो से लेकर संख्यात तक उत्पन्न होने वाले, अकतिसंचित–एक समय में असंख्यात उत्पन्न होने वाले, अवक्तव्यक संचित–एक समय में एक ही उत्पन्न होने वाले ।

इस प्रकार एकेन्द्रिय को छोड़कर शेष अकतिसंचित ही हैं । क्योंकि वे एक समय में असंख्यात या अनन्त उत्पन्न होते हैं । इसी तरह वैमानिक पर्यन्त तीन भेद जानना ।

**सूत्र - १३०**

परिचारणा (देवों का विषय-सेवन) तीन प्रकार की कही गई हैं, यथा–कोई देव अन्य देवों को या अन्य देवों की देवियों को वश में करके या आलिंगनादि करके विषय सेवन करता है, अपनी देवियों को आलिंगन कर विषय-सेवन करता है और अपने शरीर की विकुर्वणा कर अपने आप से ही विषय सेवन करता है ।

कोई देव अन्य देवों और अन्य देवों की देवियों को वश में करके तो विषयसेवन नहीं करता है परन्तु अपनी देवियों का आलिंगन कर विषय-सेवन करता है ।

कोई देव अन्य देवों और अन्य देवों की देवियों को वश में करके विषयसेवन नहीं करता है और न अपनी देवियों का आलिंगनादि करके भी विषयसेवन करता है ।

**सूत्र - १३१**

मैथुन तीन प्रकार का कहा गया है । यथा देवता सम्बन्धी, मनुष्य सम्बन्धी, तिर्यंच योनि सम्बन्धी ।

तीन प्रकार के जीव मैथुन करते हैं, यथा–देव, मनुष्य और तिर्यंचयोनिक जीव ।

तीन वेद वाले जीव मैथुन सेवन करते हैं, यथा–स्त्री, पुरुष और नपुंसक ।

**सूत्र - १३२**

योग तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–मनोयोग, वचनयोग और काययोग । इस प्रकार नारक जीवों के तीन योग होते हैं, यों विकलेन्द्रिय को छोड़कर वैमानिक पर्यन्त तीन योग समझने चाहिए ।

तीन प्रकार के प्रयोग हैं, यथा–मनःप्रयोग, वाक् प्रयोग और काय प्रयोग । जैसे विकलेन्द्रिय को छोड़कर योग का कथन किया वैसा ही प्रयोग के विषय में जानना ।

करण तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–मनःकरण, वचन करण और काय करण । इसी तरह विकलेन्द्रिय को छोड़कर वैमानिक पर्यन्त तीन करण जानने चाहिए ।

करण तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–आरम्भकरण, संरम्भकरण और समारम्भकरण । यह अन्तर रहित वैमानिक पर्यन्त जानने चाहिए ।

**सूत्र - १३३**

तीन कारणों से जीव अल्पायु रूप कर्म का बंध करते हैं, यथा–वह प्राणियों की हिंसा करता है, झूठ बोलता है, और तथारूप श्रमण-माहन को अप्रासुक अशन आहार, पान, खादिम तथा स्वादिम वहराता है, इन तीन कारणों से जीव अल्पायु रूप कर्म का बंध करते हैं । तीन कारणों से जीव दीर्घायु रूप कर्मों का बंध करते हैं, यथा–यदि वह प्राणियों की हिंसा नहीं करता है, झूठ नहीं बोलता है, तथारूप श्रमण-माहन को प्रासुक एषणीय अशन, पान, खादिम तथा स्वादिम का दान करता है । इन तीन कारणों से जीव दीर्घायु रूप कर्म का बंध करते हैं ।

तीन कारणों से जीव अशुभ दीर्घायु रूप कर्म का बंध करते हैं । यथा–यदि वह प्राणियों की हिंसा करता है, झूठ बोलता है, तथारूप श्रमण-माहन की हीलना करके निन्दा करके, भर्त्सना करके, गर्हा करके और अपमान करके किसी प्रकार का अमनोज्ञ एवं अप्रीतिकर अशनादि देता है, इन तीन कारणों से जीव अशुभ दीर्घायुरूप कर्म का बंध करते हैं ।

तीन कारणों से जीव शुभ दीर्घायु रूप कर्म का बंध करते हैं । यथा–यदि वह प्राणियों की हिंसा नहीं करता है, झूठ नहीं बोलता है तथारूप श्रमण-माहन को वन्दना करके, नमस्कार करके, सत्कार करके, सन्मान करके, कल्याणरूप, मंगलरूप, देवरूप और ज्ञानरूप मानकर तथा सेवा-शुश्रूषा करके मनोज्ञ प्रीतिकर, अशन, पान, खादिम, स्वादिम का दान करता है, इन तीन कारणों से जीव शुभदीर्घायु रूप कर्म का बंध करते हैं ।

**सूत्र - १३४**

तीन गुप्तियाँ कही गई हैं, यथा–मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति । संयत मनुष्यों की तीन गुप्तियाँ कही गई हैं, यथा–मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति ।

तीन अगुप्तियाँ कही गई हैं, यथा–मन-अगुप्ति, वचन-अगुप्ति और काय-अगुप्ति, इसी प्रकार नारक यावत् स्तनितकुमारों की, पंचेन्द्रियतिर्यंच योनिक, असंयत, मनुष्य और वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों की तीन अगुप्तियाँ कही गई हैं ।

तीन दण्ड कहे गए हैं, यथा–मन दण्ड, वचन दण्ड और काय दण्ड । नारकों के तीन दण्ड कहे गए हैं, यथा –मन दण्ड, वचन दण्ड और काय दण्ड । विकलेन्द्रियों को छोड़कर वैमानिक पर्यन्त तीन दण्ड जानने चाहिए ।

**सूत्र - १३५**

तीन प्रकार की गर्हा कही गई है, यथा–कुछ व्यक्ति मन से गर्हा करते हैं, कुछ व्यक्ति वचन से गर्हा करते हैं, कुछ व्यक्ति पाप कर्म नहीं करके काया द्वारा गर्हा करते हैं ।

अथवा गर्हा तीन प्रकार की कही गई है, यथा–कितनेक दीर्घकाल की गर्हा करते हैं, कितनेक थोड़े काल की गर्हा करते हैं, कितनेक पाप कर्म नहीं करने के लिए अपने शरीर को उनसे दूर रखते हैं अर्थात् पाप कर्म में प्रवृत्ति नहीं करना रूप गर्हा करते हैं ।

प्रत्याख्यान तीन प्रकार के हैं, यथा–कुछ व्यक्ति मन के द्वारा प्रत्याख्यान करते हैं, कुछ व्यक्ति वचन के द्वारा प्रत्याख्यान करते हैं, कुछ व्यक्ति काया के द्वारा प्रत्याख्यान करते हैं । गर्हा के कथन के समान प्रत्याख्यान के विषय में भी दो आलापक कहने चाहिए ।

**सूत्र - १३६**

वृक्ष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–पत्रयुक्त, फलयुक्त और पुष्पयुक्त । इसी तरह तीन प्रकार के पुरुष कहे गए हैं, यथा–पत्रवाले वृक्ष के समान, फल वाले वृक्ष के समान, फूल वाले वृक्ष के समान ।

तीन प्रकार के पुरुष कहे गए हैं, यथा–नाम पुरुष, स्थापना पुरुष और द्रव्य पुरुष ।

तीन प्रकार के पुरुष कहे गए हैं, यथा–ज्ञानपुरुष, दर्शनपुरुष और चारित्रपुरुष ।

तीन प्रकार के पुरुष कहे गए हैं, यथा–वेदपुरुष, चिन्ह पुरुष और अभिलाप पुरुष ।

तीन प्रकार के पुरुष कहे गए हैं, यथा–उत्तम पुरुष, मध्यम पुरुष और जघन्य पुरुष । उत्तम पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–धर्म पुरुष, भोग पुरुष और कर्म पुरुष । धर्म पुरुष अर्हन्त देव हैं, भोग पुरुष चक्रवर्ती हैं, कर्म पुरुष वासुदेव हैं । मध्यम पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–उग्र वंशी, भोग वंशी और राजन्य वंशी । जघन्य पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–दास, भृत्य और भागीदार ।

**सूत्र - १३७**

मत्स्य (मच्छ) तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा अण्डे से उत्पन्न होने वाले, पोत से (बिना किसी आवरण के) पैदा होने वाले, सम्मूर्छिम (संयोग के बिना) स्वतः उत्पन्न होने वाले । अण्डज मत्स्य तीन प्रकार के हैं, यथा–स्त्री मत्स्य, पुरुष मत्स्य और नपुंसक मत्स्य । पोतज मत्स्य तीन प्रकार के हैं, यथा–स्त्री, पुरुष और नपुंसक ।

पक्षी तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–अण्डज, पोतज और सम्मूर्छिम । अण्डज पक्षी तीन प्रकार के हैं, यथा–स्त्री, पुरुष और नपुंसक । पोतज पक्षी तीन प्रकार के हैं, यथा–स्त्री, पुरुष और नपुंसक ।

इस अभिलापक से उरपरिसर्प और भुजपरिसर्प का भी कथन करना चाहिए ।

**सूत्र - १३८, १३९**

तीन प्रकार की स्त्रियाँ कही गई हैं, यथा–तिर्यंच योनिक स्त्रियाँ, मनुष्य योनिक स्त्रियाँ, देव-स्त्रियाँ । तिर्यंच स्त्रियाँ तीन प्रकार की कही गई हैं, यथा–जलचर स्त्री, स्थलचर स्त्री, खेचर स्त्री । मनुष्य-स्त्रियाँ तीन प्रकार की हैं, यथा–कर्मभूमि में पैदा होने वाली, अकर्मभूमि में पैदा होने वाली, अन्तर्द्वीप में उत्पन्न होने वाली ।

पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–तिर्यंचयोनिक पुरुष, मनुष्ययोनिक पुरुष, देव पुरुष । तिर्यंचयोनिक पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–जलचर, स्थलचर और खेचर । मनुष्ययोनिक पुरुष तीन प्रकार के हैं, यथा–कर्मभूमि में उत्पन्न होने वाले, अकर्मभूमि में उत्पन्न होने वाले, अन्तर्द्वीपों में पैदा होने वाले ।

नपुंसक तीन प्रकार के हैं, नैरयिक नपुंसक, तिर्यंचयोनिक नपुंसक, मनुष्य नपुंसक । तिर्यंचयोनिक नपुंसक तीन प्रकार के हैं, यथा–जलचर, स्थलचर और खेचर । मनुष्य नपुंसक तीन प्रकार के हैं, यथा–कर्मभूमिज, अकर्म भूमिज और अन्तर्द्वीपिक ।

तिर्यंच योनिक तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–स्त्री, पुरुष और नपुंसक ।

**सूत्र - १४०**

नारक जीवों की तीन लेश्याएं कही गई हैं, यथा–कृष्ण लेश्या, नील लेश्या और कापोत लेश्या ।

असुरकुमारों की तीन अशुभ लेश्याएं कही गई हैं, यथा–कृष्ण लेश्या, नील लेश्या और कापोत लेश्या । इसी प्रकार स्तनितकुमार पर्यन्त जानना चाहिए । इसी प्रकार पृथ्वीकायिक, अप्कायिक और वनस्पतिकायिक जीवों की लेश्या समझना चाहिए । इसी प्रकार तेजस्काय और वायुकाय की लेश्या भी जाननी चाहिए । द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रियों के भी तीन लेश्याएं नारक जीवों के समान कही गई हैं ।

पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिकों के तीन अशुभ लेश्याएं कही गई हैं । यथा–कृष्ण लेश्या, नील लेश्या और कापोत लेश्या । पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिकों के तीन लेश्याएं शुभ कही गई हैं । तेजोलेश्या, पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या । इसी प्रकार मनुष्यों के भी तीन लेश्या समझना ।

असुरकुमारों के समान वाणव्यन्तरों के भी तीन लेश्या समझनी चाहिए ।

वैमानिकों के तीन लेश्याएं कही गई हैं, तेजोलेश्या, पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या ।

**सूत्र - १४१**

तीन कारणों से तारे अपने स्थान से चलित होते हैं, यथा–वैक्रिय करते हुए, विषय-सेवन करते हुए, एक स्थान

से दूसरे स्थान पर संक्रमण करके जाते हुए ।

तीन कारणों से देव विद्युत चमकाते हैं, यथा-वैक्रिय करते हुए, विषय-सेवन करते हुए तथारूप श्रमण-माहन को ऋद्धि, द्युति, यश, बल, वीर्य और पौरुष पराक्रम बताते हुए ।

तीन कारणों से देव मेघ गर्जना करते हैं, यथा–वैक्रिय करते हुए जिस प्रकार विद्युत् चमकाने के लिए कहा वैसा ही मेघ गर्जना के लिए भी समझना चाहिए ।

**सूत्र - १४२**

तीन कारणों से (तीन प्रसंगों पर) लोक में अन्धकार होता है, यथा–अर्हन्त भगवान के निर्वाण-प्राप्त होने पर अर्हन्त-प्ररूपित धर्म (तीर्थ) के विच्छिन्न होने पर, पूर्वगत श्रुत के विच्छिन्न होने पर ।

तीन कारणों से लोक में उद्योत होता है, यथा–अर्हन्त के जन्म धारण करते समय, अर्हन्त के प्रव्रज्या अंगीकार करते समय, अर्हन्त भगवान के केवलज्ञान महोत्सव समय ।

तीन कारणों से देव-भवनों में भी अन्धकार होता है, यथा–अर्हन्त भगवान के निर्वाण प्राप्त होने पर, अर्हन्त प्ररूपित धर्म को विच्छेद होने पर, पूर्वगत श्रुत के विच्छिन्न होने पर ।

तीन प्रसंगों पर देवलोक में विशेष उद्योत होता है, यथा–अर्हन्त भगवंतों के जन्म महोत्सव पर, अर्हन्तों के दीक्षा महोत्सव पर, अर्हन्तों के केवलज्ञान महोत्सव पर ।

तीन प्रसंगों पर देव इस पृथ्वी पर आते हैं, यथा–अर्हन्तों के जन्म महोत्सव पर, उनके दीक्षा महोत्सव पर, उनके केवलज्ञान महोत्सव पर । इसी तरह देवताओं का समूह रूप में एकत्रित होना और देवताओं का हर्षनाद भी समझना चाहिए ।

तीन प्रसंगों पर देवेन्द्र मनुष्य लोक में शीघ्र आते हैं, यथा–अर्हन्तों के जन्म महोत्सव पर, उनके दीक्षा महोत्सव पर, उनके केवलज्ञान महोत्सव पर । इसी प्रकार सामानिक देव, त्रायस्त्रिंशक देव, लोकपाल देव, अग्र-महिषी देवियों की पर्षद के देव, सेनाधिपति देव, आत्मरक्षक देव मनुष्य-लोक में शीघ्र आते हैं ।

तीन प्रसंगों पर देव सिंहासन से उठते हैं, यथा–अर्हन्तों के जन्म महोत्सव पर, उनके दीक्षा महोत्सव पर, उनके केवलज्ञान-प्रसंग महोत्सव पर । इसी तरह तीन प्रसंगों पर उनके आसन चलायमान होते हैं, वे सिंहनाद करते हैं और वस्त्र-वृष्टि करते हैं ।

तीन प्रसंगों पर देवताओं के चैत्यवृक्ष चलायमान होते हैं, यथा–अर्हन्तों के जन्म महोत्सव पर । उनके दीक्षा महोत्सव पर, केवलज्ञान महोत्सव पर ।

तीन प्रसंगों पर लोकान्तिक देव मनुष्य-लोक में शीघ्र आते हैं, यथा–अर्हन्तों के जन्म महोत्सव पर, उनके दीक्षा महोत्सव पर, उनके केवलज्ञान महोत्सव पर ।

**सूत्र - १४३**

हे आयुष्मन् श्रमणों ! तीन व्यक्तियों पर प्रत्युपकार कठिन है, यथा–माता-पिता, स्वामी (पोषक) और धर्माचार्य । कोई पुरुष (प्रतिदिन) प्रातःकाल होते ही माता-पिता को शतपाक, सहस्रपाक तेल से मर्दन करके सुगन्धित उबटन लगाकर तीन प्रकार के (गन्धोदक, उष्णोदक, शीतोदक) जल से स्नान करा कर, सर्व अलंकारों से विभूषित करके मनोज्ञ, हांडी में पकाया हुआ, शुद्ध अठारह प्रकार के व्यंजनों से युक्त भोजन जिमाकर यावज्जीवन कावड़ में बिठाकर कंधे पर लेकर फिरता रहे तो भी उपकार का बदला नहीं चूका सकता है किन्तु वह माता-पिता को केवलि प्ररूपित धर्म बताकर, समझाकर और प्ररूपणा कर उसमें स्थापित करे तो वह उन माता-पिता के उपकार का सुचारु रूप से बदला चूका सकता है ।

कोई महाऋद्धि वाला पुरुष किसी दरिद्र को धन आदि देकर उन्नत बनाए तदनन्तर वह दरिद्र धनादि से समृद्ध बनने पर उस सेठ के असमक्ष अथवा समक्ष ही विपुल भोग सामग्री से युक्त होकर विचरता हो, इसके बाद वह ऋद्धि वाला पुरुष कदाचित् (दैवयोग से) दरिद्र बन कर उस (पूर्व के) दरिद्र के पास शीघ्र आवे उस समय वह (पहले का)

दरिद्र (वर्तमान को श्रीमन्त) अपने इस स्वामी को सर्वस्व देता हुआ भी उसके उपकार का बदला नहीं चूका सकता है किन्तु वह अपने स्वामी को केवलिप्ररूपित धर्म बताकर समझाकर और प्ररूपणा कर उसमें स्थापित करता है तो इससे वह अपने स्वामी के उपकार का भलीभाँति बदला चूका सकता है ।

कोई व्यक्ति तथारूप श्रमण-माहन के पास से एक भी आर्य (श्रेष्ठ) धार्मिक सुवचन सूनकर-समझकर मृत्यु के समय मरकर किसी देवलोक में देवरूप से उत्पन्न हुआ । तदनन्तर वह देव उन धर्माचार्य को दुर्भिक्ष वाले देश से सुभिक्ष वाले देश में ले जाकर रख दे, जंगल में भटकते हुए को जंगल से बाहर ले जाकर रख दे, दीर्घकालीन व्याधि - ग्रस्त को रोग मुक्त कर दे तो भी वह धर्माचार्य के उपकार का बदला नहीं चूका सकता है किन्तु वह केवलि प्ररूपित धर्म से (संयोगवश) भ्रष्ट हुए धर्माचार्य को पुनः केवलि-प्ररूपित धर्म बताकर यावत्-उसमें स्थापित कर देता है तो वह उन धर्माचार्य के उपकार का बदला चूका सकता है ।

**सूत्र - १४४**

तीन स्थानों (गुणों) से युक्त अनगार अनादि-अनन्त दीर्घ-मार्ग वाले चार गतिरूप संसार-कान्तार को पार कर लेता है वे इस प्रकार है, यथा–निदान (भोग ऋद्धि आदि की ईच्छा) नहीं करने से, सम्यक्दर्शन युक्त होने से, समाधि रहने से । अथवा उपधान-तपश्चर्या पूर्वक श्रुत का अभ्यास करने से ।

**सूत्र - १४५**

तीन प्रकार की अवसर्पिणी कही गई है, यथा–उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य । इस प्रकार छहों आरक का कथन करना चाहिए–यावत् दुषमदुःषमा ।

तीन प्रकार की उत्सर्पिणी कही गई है, यथा–उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य । इस प्रकार छ आरक समझने चाहिए–यावत् सुषमसुषमा ।

**सूत्र - १४६**

तीन कारणों से अच्छिन्न पुद्गल अपने स्थान से चलित होते हैं, यथा–आहार के रूप में जीव के द्वारा गृह्यमान होने पर पुद्गल अपने स्थान से चलित होते हैं, वैक्रिय किये जाने पर उसके वशवर्ति होकर पुद्गल स्वस्थान से चलित होते हैं, एक स्थान से दूसरे स्थान पर संक्रमण किये जाने पर (ले जाये जाने पर) पुद्गल स्वस्थान से चलित होते हैं ।

उपधि तीन प्रकार की कही गई है, यथा–कर्मोपधि, शरीरोपधि और बाह्यभाण्डोपकरणोपधि । असुकुमारों के तीन प्रकार की उपधि कहनी चाहिए । यों एकेन्द्रिय और नारक को छोड़कर वैमानिक पर्यन्त तीन प्रकार की उपधि समझनी चाहिए । अथवा तीन प्रकार की उपधि कही गई है, यथा–सचित्त, अचित्त और मिश्र । इस प्रकार निरन्तर नैरयिक जीवों को यावत्–वैमानिकों को तीनों ही प्रकार की उपधि होती है ।

परिग्रह तीन प्रकार का कहा गया है, यथा–कर्म-परिग्रह, शरीर-परिग्रह, बाह्यभाण्डोपकरण-परिग्रह । असुर कुमारों को तीनों प्रकार का परिग्रह होता है । यों एकेन्द्रिय और नारक को छोड़कर वैमानिक पर्यन्त समझना चाहिए । अथवा तीन प्रकार का परिग्रह कहा गया है, यथा–सचित्त, अचित्त और मिश्र । निरन्तर नैरयिक यावत् विमानवासी देवों को तीनों प्रकार का परिग्रह होता है ।

**सूत्र - १४७**

तीन प्रकार का प्रणिधान (एकाग्रता) कहा गया है, यथा–मन-प्रणिधान, वचन-प्रणिधान और काय-प्रणिधान । यह तीन प्रकार का प्रणिधान पंचेन्द्रियों से लेकर वैमानिक पर्यन्त सब दण्डकों में पाया जाता है ।

तीन प्रकार का सुप्रणिधान कहा गया है, यथा–मन का सुप्रणिधान, वचन का सुप्रणिधान, काय का सुप्रणि-धान । संयत मनुष्यों का तीन प्रकार का सुप्रणिधान कहा गया है, यथा–मन का सुप्रणिधान, वचन का सुप्रणिधान, काय का सुप्रणिधान ।

तीन प्रकार का अशुभ प्रणिधान है, मन का अशुभ प्रणिधान, वचन का अशुभ प्रणिधान, काय का अशुभ प्रणिधान । यह पंचेन्द्रिय से वैमानिक पर्यन्त होता है ।

**सूत्र - १४८**

योनि तीन प्रकार की कही गई है, यथा–शीत, उष्ण और शीतोष्ण । यह तेजस्काय को छोड़कर शेष एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, सम्मूर्छिम तिर्यंचयोनिक पंचेन्द्रिय और सम्मूर्छिम मनुष्यों को होती है ।

योनि तीन प्रकार की कही गई है, यथा–सचित्त, अचित्त और मिश्र । यह एकेन्द्रियों, विकलेन्द्रियों, सम्मूर्छिम तिर्यंचयोनिक पंचेन्द्रियों और सम्मूर्छिम मनुष्यों को होती है ।

योनि तीन प्रकार की कही गई है, यथा–संवृता, विवृता और संवृत-विवृता ।

योनि तीन प्रकार की कही गई है, यथा–कूर्मोन्नता, शंखावर्ता और वंशीपत्रिका । उत्तम पुरुषों की माताओं की कूर्मोन्नता योनि होती है । कूर्मोन्नता योनि में तीन प्रकार के उत्तम पुरुष गर्भ रूप में उत्पन्न होते हैं, यथा–अर्हन्त, चक्रवर्ती और बलदेव-वासुदेव । चक्रवर्ती के स्त्रीरत्न की योनि शंखावर्त्त होती है । शंखावर्त्त योनि में बहुत से जीव और पुद्‌गल पैदा होते हैं एवं नष्ट होते हैं किन्तु जन्म धारण नहीं करते हैं । वंशीपत्रिकायोनि सामान्य मनुष्यों की योनि है । वंशीपत्रिकायोनि में बहुत से सामान्य मनुष्य गर्भरूप में उत्पन्न होते हैं ।

**सूत्र - १४९**

तृण (बादर) वनस्पतिकाय तीन प्रकार की कही गई हैं, यथा–संख्यात जीव वाली, असंख्यात जीव वाली और अनन्त जीव वाली ।

**सूत्र - १५०**

जम्बूद्वीपवर्ती भरतक्षेत्र में तीन तीर्थ कहे गए हैं, यथा–मागध, वरदाम और प्रभास । इसी तरह ऐरवत क्षेत्र में भी समझने चाहिए । जम्बूद्वीपवर्ती महाविदेह क्षेत्र में एक एक चक्रवर्ती विजय में तीन तीर्थ कहे गए हैं, यथा–मागध, वरदाम और प्रभास । इसी तरह धातकीखण्ड द्वीप के पूर्वार्ध में और पश्चिमार्ध में तथा अर्धपुष्करवरद्वीप के पूर्वार्ध में और पश्चिमार्ध में भी इसी तरह जानना चाहिए ।

**सूत्र - १५१**

जम्बूद्वीपवर्ती भरत और ऐरवत क्षेत्र में अतीत उत्सर्पिणी काल के सुषम नामक आरक का काल तीन क्रोड़ाक्रोड़ी सागरोपम था । इसी तरह इस अवसर्पिणी काल के सुरमआरक का काल इतना ही है । आगामी उत्स-र्पिणी के सुषम आरक का काल इतना ही होगा । इसी तरह धातकीखण्ड के पूर्वार्ध में और पश्चिमार्ध में भी इसी तरह अर्ध पुष्करवरद्वीप के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध में भी काल का कथन करना ।

जम्बूद्वीपवर्ती भरत ऐरवत क्षेत्र में अतीत उत्सर्पिणी काल के सुषमसुषमा आरे में मनुष्य तीन कोस की ऊंचाई वाले और तीन पल्योपम के परमायुष्य वाले थे । इसी तरह इस अवसर्पिणी काल और आगामी उत्सर्पिणी काल मं भी समझना चाहिए । जम्बूद्वीपवर्ती देवकुरु और उत्तरकुरु में मनुष्य तीन कोस की ऊंचाई वाले कहे गए हैं तथा वे तीन पल्योपम की परमायु वाले हैं । इसी तरह अर्धपुष्करवर द्वीप के पश्चिमार्ध तक का कथन करना चाहिए।

जम्बूद्वीपवर्ती भरत-ऐरवत क्षेत्र में एक एक उत्सर्पिणी अवसर्पिणी में तीन वंश (उत्तम पुरुष परम्परा) उत्पन्न हुए, उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे, यथा–अर्हन्तवंश, चक्रवर्तीवंश और दशार्हवंश । इसी तरह अर्धपुष्करवर द्वीप के पश्चिमार्ध तक कथन करना चाहिए । जम्बूद्वीप के भरत, ऐरवत क्षेत्र में एक एक उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल में तीन प्रकार के उत्तम पुरुष उत्पन्न हुए, उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे, यथा–अर्हन्त, चक्रवर्ती और बलदेव-वासुदेव । इस प्रकार अर्धपुष्करवर द्वीप के पश्चिमार्ध तक समझना चाहिए ।

तीन यथायु का पालन करते हैं (निरुपक्रम आयु वाले होते हैं), यथा–अर्हन्त, चक्रवर्ती और बलदेव-वासुदेव। तीन मध्यमायु का पालन करते हैं (वृद्धत्व रहित आयु वाले होते हैं) । यथा–अर्हन्त, चक्रवर्ती और बलदेव-वासुदेव ।

**सूत्र - १५२**

बादर तेजस्काय के जीवों की उत्कृष्ट स्थिति तीन अहोरात्र की कही गई हैं, बादरवायुकाय की उत्कृष्ट स्थिति तीन हजार वर्ष की कही गई है ।

**सूत्र - १५३**

हे भदन्त ! शालि, व्रीहि, गेहूं, जौ, यवयव इन धान्यों को कोठों में सुरक्षित रखने पर, पल्य में सुरक्षित रखने पर, मंच पर सुरक्षित रखने पर, ढक्कन लगाकर, लीप कर, सब तरफ लीप कर, रेखादि के द्वारा लांछित करने पर, मिट्टी की मुद्रा लगाने पर अच्छी तरह बन्द रखने पर इनकी कितने काल तक योनि रहती है ?

हे गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट तीन वर्ष तक योनि रहती है, इसके बाद योनि म्लान हो जाती है, इसके बाद ध्वंसाभिमुख होती है, नष्ट हो जाती है, इसके बाद जीव अजीव हो जाता है और तत्पश्चात् योनि का विच्छेद हो जाता है ।

**सूत्र - १५४**

दूसरी शर्कराप्रभा नरक-पृथ्वी के नारकों की तीन सागरोपम की उत्कृष्ट स्थिति है । तीसरी बालुकाप्रभा पृथ्वी में नारकों की तीन सागरोपम की जघन्य स्थिति है ।

**सूत्र - १५५**

पाँचवी धूमप्रभा-पृथ्वी में तीन लाख नरकावास कहे गए हैं ।

तीन नरक-पृथ्वीयों में नारकों को उष्णवेदना कही गई हैं, यथा–पहली, दूसरी और तीसरी नरक में । तीन पृथ्वीयों में नारक उष्णवेदना का अनुभव करते हैं, यथा–प्रथम, दूसरी और तीसरी नरक में ।

**सूत्र - १५६**

लोक में तीन समान प्रमाण (लम्बाई-चौड़ाई) वाले, समान पार्श्व (आजू-बाजू) वाले और सब विदिशाओं में भी समान कहे गए हैं, यथा–अप्रतिष्ठान नरक, जम्बूद्वीप, सर्वार्थसिद्ध महाविमान । लोक में तीन समान प्रमाण वाले, समान पार्श्व वाले और सब विदिशाओं में समान कहे गए हैं, यथा–सीमन्त नरकावास, समयक्षेत्र, ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी ।

**सूत्र - १५७**

तीन समुद्र प्रकृति से उदकरस वाले कहे गए हैं, यथा–कालोदधि, पुष्करोदधि और स्वयंभूरमण । तीन समुद्रों में मच्छ कच्छ आदि जलचर विशेष रूप से कहे गए हैं, यथा–लवण, कालोदधि और स्वयंभूरमण ।

**सूत्र - १५८**

शीलरहित, व्रतरहित, गुणरहित, मर्यादारहित, प्रत्याख्यान पौषध-उपवास आदि नहीं करने वाले तीन प्रकार के व्यक्ति मृत्यु के समय मर कर नीचे सातवी नरक के अप्रतिष्ठान नामक नरकावास में नारक रूप से उत्पन्न होते हैं, यथा–चक्रवर्ती आदि राजा, माण्डलिक राजा (शेष सामान्य राजा) और महारम्भ करने वाले कुटुम्बी ।

सुशील, सुव्रती, सद्गुणी मर्यादा वाले, प्रत्याख्यान-पौषध उपवास करने वाले तीन प्रकार के व्यक्ति मृत्यु के समय मर कर सर्वार्थसिद्ध महाविमान में देव रूप से उत्पन्न होते हैं, यथा–कामभोगों का त्याग करने वाले राजा, कामभोग के त्यागी सेनापति, प्रशस्ता-धर्माचार्य ।

**सूत्र - १५९**

ब्रह्मलोक और लान्तक में विमान तीन वर्ण वाले कहे गए हैं । यथा–काले, नीले और लाल । आनत, प्राणत, आरण और अच्युत कल्प में देवों के भवधारणीय शरीरों की ऊंचाई तीन हाथ की कही गई है ।

**सूत्र - १६०**

तीन प्रज्ञप्तियाँ नियत समय पर पढ़ी जाती हैं, यथा–चन्द्रप्रज्ञप्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति और द्वीपसागरप्रज्ञप्ति ।

## स्थान-३ – उद्देशक-२

**सूत्र - १६१**

लोक तीन प्रकार के कहे गए हैं, नामलोक, स्थापनालोक और द्रव्यलोक ।

भावलोक तीन प्रकार के कहे गए हैं, ज्ञानलोक, दर्शनलोक और चारित्रलोक ।

लोक तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–ऊर्ध्वलोक, अधोलोक और तिर्यग्लोक ।

**सूत्र - १६२**

असुरकुमारराज असुरेन्द्र चमर की तीन प्रकार की परीषद कही गई है, यथा–समिता चण्डा और जाया । समिता आभ्यन्तर परीषद है, चण्डा मध्यम परीषद है, जाया बाह्य परीषद है । असुरकुमारराज असुरेन्द्र चमर के सामानिक देवों की तीन परीषद हैं समिता आदि । इसी तरह त्रायस्त्रिंशकों की भी तीन परीषद जानें ।

लोकपालों की तीन परीषद हैं तुम्बा, त्रुटिता और पर्वा । इसी तरह अग्रमहिषियों की भी परीषद जाने । बलीन्द्र की भी इसी तरह तीन परीषद समझनी चाहिए । अग्रमहिषी पर्यन्त इसी तरह परीषद जाननी चाहिए ।

धरणेन्द्र की, उसके सामानिक और त्रायस्त्रिंशकों की तीन प्रकार की परीषद कही गई है, यथा–समिता, चण्डा और जाया ।

इसके लोकपाल और अग्रमहिषियों की तीन परीषद कही गई हैं, यथा–ईषा, त्रुटिता और दृढरथा । धरणेन्द्र की तरह शेष भवनवासी देवों की परीषद जाननी चाहिए ।

पिशाच-राज, पिशाचेन्द्र काल की तीन परीषद कही गई हैं यथा–ईषा, त्रुटिता और दृढरथा । इसी तरह सामानिक देव और अग्रमहिषियों की भी परीषद जानें । इसी तरह यावत्–गीतरति और गीतयशा की भी परीषद जाननी चाहिए ।

ज्योतिष्कराज ज्योतिष्केन्द्र चन्द्र की तीन परीषद कही गई हैं, यथा–तुम्बा, त्रुटिता और पर्वा । इसी तरह सामानिक देव और अग्रमहिषियों की भी परीषद जाने । इसी तरह सूर्य की भी परीषद जानें ।

देवराज देवेन्द्र शक्र की तीन परीषद कही गई हैं, यथा–समिता, चण्डा और जाया । इसी प्रकार अग्रमहिषी पर्यन्त चमरेन्द्र के समान तीन परीषद कहना चाहिए । इसी तरह अच्युत के लोकपाल पर्यन्त तीन परीषद समझनी चाहिए ।

**सूत्र - १६३**

तीन याम कहे गए हैं, यथा–प्रथम याम, मध्यम याम और अन्तिम याम । तीन यामों में आत्मा केवलि-प्ररूपित धर्म सून सकता है, यथा–प्रथम याम में, मध्यम याम में और अन्तिम याम में । इसी तरह यावत्–आत्मा तीन यामों में केवलज्ञान उत्पन्न करता है, यथा–प्रथम याम में, मध्यम याम में और अन्तिम याम में ।

तीन वय कही गई हैं, प्रथम वय, मध्यम वय, अन्तिम वय । इन तीनों वय में आत्मा केवलि-प्रज्ञप्त धर्म सून पाता है, प्रथम वय, मध्यम वय और अन्तिम वय । केवलज्ञान उत्पन्न होने तक का कथन पहले के समान ही जानना ।

**सूत्र - १६४**

बोधि तीन प्रकार की कही गई हैं । यथा–ज्ञान बोधि, दर्शन बोधि और चारित्र बोधि । तीन प्रकार के बुद्ध कहे गए हैं, यथा–ज्ञानबुद्ध, दर्शनबुद्ध और चारित्रबुद्ध । इसी तरह तीन प्रकार का मोह और तीन प्रकार के मूढ़ समझना ।

**सूत्र - १६५**

प्रव्रज्या तीन प्रकार की कही गई है, यथा–इहलोकप्रतिबद्धा, परलोकप्रतिबद्धा, उभयलोकप्रतिबद्धा ।

तीन प्रकार की प्रव्रज्या कही गई हैं, यथा–पुरतः प्रतिबद्धा, मार्गतः प्रतिबद्धा, उभयतः प्रतिबद्धा । तीन प्रकार की प्रव्रज्या कही गई हैं, व्यथा उत्पन्न कर दी जाने वाली दीक्षा, अन्यत्र ले जाकर दी जाने वाली दीक्षा, धर्म तत्व समझाकर दी जाने वाली दीक्षा ।

तीन प्रकार की प्रव्रज्या है, सद्‌गुरुओं की सेवा के लिए ली गई दीक्षा, आख्यानप्रव्रज्या धर्मदेशना के दिये जाने से ली गई दीक्षा, संगार प्रव्रज्या-संकेत से ली गई दीक्षा ।

**सूत्र - १६६**

तीन निर्ग्रन्थ नोसंज्ञोपयुक्त हैं, यथा–पुलाक, निर्ग्रन्थ और स्नातक ।

तीन निर्ग्रन्थ संज्ञ-नोसंज्ञोपयुक्त (संज्ञा और नोसंज्ञा दोनों से संयुक्त) कहे गए हैं । यथा–बकुश, प्रतिसेवना कुशील और कषायकुशील ।

**सूत्र - १६७**

तीन प्रकार की शैक्ष-भूमि कही गई हैं, यथा–उत्कृष्ट छः मास, मध्यम चार मास, जघन्य सात रात-दिन ।

तीन स्थवीर भूमियाँ कही गई हैं, यथा–जातिस्थविर, सूत्रस्थविर और पर्यायस्थविर । साठ वर्ष की उम्र वाला श्रमण-निर्ग्रन्थ जातिस्थविर है, स्थानांग समवायांग को जानने वाला श्रमण-निर्ग्रन्थ सूत्रस्थविर है, बीस वर्ष की दीक्षा वाला श्रमण-निर्ग्रन्थ पर्यायस्थविर है ।

**सूत्र - १६८**

तीन प्रकार के पुरुष कहे गए हैं । यथा, सुमना (हर्षयुक्त) दुर्मना (दुःख या द्वेषयुक्त) नो-सुमना-नो-दुर्मना (समभाव रखने वाला) ।

तीन प्रकार के पुरुष कहे गए हैं, यथा–कितनेक किसी स्थान पर जाकर सुमना होते हैं, कितनेक किसी स्थान पर जाकर दुर्मना होते हैं, कितनेक किसी स्थान पर जाकर नो-सुमना-नो-दुर्मना होते हैं ।

तीन प्रकार के पुरुष कहे गए हैं, यथा–कितनेक 'किसी स्थान पर जाता हूँ,' ऐसा मानकर सुमना होते हैं, कितनेक 'किसी स्थान पर जाता हूँ,' ऐसा मानकर दुर्मना होते हैं, कितनेक 'किसी स्थान पर जाता हूँ,' ऐसा मान कर नो-सुमना-नो-दुर्मना होते हैं । इसी तरह कितनेक 'जाऊंगा' ऐसा मानकर सुमना होते हैं इत्यादि पूर्ववत् । तीन प्रकार के पुरुष कहे गए हैं, यथा–कितनेक 'नहीं जाकर' सुमना होते हैं, इत्यादि । तीन प्रकार के पुरुष कहे गए हैं, यथा–'नहीं जाता हूँ' ऐसा मानकर सुमना होते हैं इत्यादि । तीन प्रकार के पुरुष कहे गए हैं, यथा–'नहीं जाऊंगा' ऐसा मानकर सुमना होते हैं इत्यादि । इसी तरह 'आकर' कितनेक सुमना होते हैं इत्यादि । 'आता हूँ' ऐसा मानकर कितनेक सुमना होते हैं इत्यादि । 'आऊंगा' ऐसा मानकर कितनेक सुमना होते हैं इत्यादि । इस प्रकार इस अभिलापक से

**सूत्र - १६९**

जाकर, नहीं जाकर । खड़े रहकर-खड़े नहीं रहकर । बैठकर, नहीं बैठकर ।

**सूत्र - १७०**

मारकर, नहीं मारकर । छेदकर, नहीं छदेकर । बोलकर, नहीं बोलकर । कहकर, नहीं कहकर ।

**सूत्र - १७१**

देकर, नहीं देकर । खाकर, नहीं खाकर । प्राप्त कर, नहीं प्राप्त कर । पीकर, नहीं पीकर ।

**सूत्र - १७२**

सोकर, नहीं सोकर । लड़कर, नहीं लड़कर । जीतकर, नहीं जीतकर । पराजित कर, नहीं पराजित कर ।

**सूत्र - १७३**

शब्द, रूप, गंध, रस और स्पर्श । इस प्रकार एक-एक के तीन आलापक कहने चाहिए, यथा कितने शब्द सूनकर सुमना होते हैं । कितनेक 'सूनता हूँ' यह मानकर सुमना होते हैं । कितनेक 'सूनुँगा' यह मानकर सुमना होते हैं । इसी प्रकार कितनेक 'नहीं सूना' यह मानकर सुमना होते हैं । कितनेक 'नहीं सूनता हूँ' यह मानकर सुमना होते हैं । कितनेक 'नहीं सूनूँगा' यह मानकर सुमना होते हैं । इस प्रकार रूप, गंध, रस और स्पर्श प्रत्येक में छः छः आलापक कहने चाहिए ।

**सूत्र - १७४**

शीलरहित, व्रतरहित, गुणरहित, मर्यादा-रहित और प्रत्याख्यान-पोषधोपवास रहित के तीन स्थान गर्हित होते हैं । उसका इहलोक जन्म गर्हित होता है, उसका उपपात निन्दित होता है, उसके बाद के जन्मों में भी वह निन्दनीय होता है ।

सुशील, सुव्रती, सद्गुणी, मर्यादावान और पौषधोपवास प्रत्याख्यान आदि करने वाले के तीन स्थान प्रशंसनीय होते हैं, यथा–उसकी इस लोक में भी प्रशंसा होती है, उसका उपपात भी प्रशंसनीय होता है उसके बाद के जन्म में भी उसे प्रशंसा प्राप्त होती है ।

**सूत्र - १७५**

संसारी जीव तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–स्त्री, पुरुष और नपुंसक । सर्व जीव तीन प्रकार के कहे गए हैं । यथा–सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि ।

अथवा सब जीव तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–पर्याप्त, अपर्याप्त और नो-पर्याप्त-नो-अपर्याप्त । इसी तरह सम्यग्दृष्टि । परित्त, पर्याप्त, सूक्ष्म, संज्ञी और भव्य इनमें से जो ऊपर नहीं कहे गए हैं उनके भी तीन तीन प्रकार समझने चाहिए ।

**सूत्र - १७६**

लोक-स्थिति तीन प्रकार की कही गई है, यथा–आकाश के आधार पर वायु रहा हुआ है, वायु के आधार पर उदधि, उदधि के आधार पर पृथ्वी ।

दिशाएं तीन कही गई हैं, यथा–ऊर्ध्व दिशा, अधो दिशा और तिर्छी दिशा । तीन दिशाओं में जीवों की गति होती है, ऊर्ध्व दिशा में, अधोदिशा में और तिर्छी दिशा में ।

इसी तरह आगति । उत्पत्ति, आहार, वृद्धि, हानि, गति पर्याय-हलन चलन, समुद्घात, कालसंयोग, अवधि दर्शन से देखना, अवधिज्ञान से जानना ।

तीन दिशाओं में जीवों को अजीवों का ज्ञान होता है, यथा–ऊर्ध्व दिशा में, अधोदिशा में और तिर्छी दिशा में। (तीनों दिशाओं में गति आदि तेरह पद समस्त रूप से चौबीस दण्डकों में से पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक और मनुष्य में ही होते हैं) ।

**सूत्र - १७७**

त्रस जीव तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–तेजस्काय, वायुकाय और उदार (स्थूल) त्रस प्राणी ।

स्थावर तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय ।

**सूत्र - १७८**

तीन अच्छेद्य हैं–समय, प्रदेश और परमाणु । इसी तरह इन तीनों का भेदन नहीं हो सकता, इसे जलाया नहीं जा सकता, इसे ग्रहण नहीं किया जा सकता एवं इन तीनों का मध्यभाग नहीं हो सकता और यह तीनों अप्रदेशी हैं ।

तीन अविभाज्य हैं, यथा–समय, प्रदेश और परमाणु ।

**सूत्र - १७९**

हे आर्यो ! इस प्रकार श्रमण भगवान महावीर गौतमादि श्रमण निर्ग्रन्थों को सम्बोधित कर इस प्रकार बोले हे श्रमणों ! प्राणियों को किससे भय है ? (तब) गौतमादि श्रमणनिर्ग्रन्थ श्रमण भगवान महावीर के समीप आते हैं और वन्दना–नमस्कार करते हैं । वे इस प्रकार बोले–हे देवानुप्रिय ! यह अर्थ हम जानते नहीं हैं, देखते नहीं हैं, इसलिए यदि आपको कहने में कष्ट न होता हो तो हम यह बात आप श्री से जानना चाहते हैं ।

आर्यो ! यों श्रमण भगवान महावीर गौतमादि श्रमणनिर्ग्रन्थों को सम्बोधित करके इस प्रकार बोले–हे श्रमणों ! प्राणी दुःख से डरने वाले हैं । हे भगवन् ! यह दुःख किसके द्वारा दिया गया है ? (भगवान बोले) जीव ने प्रमाद के द्वारा दुःख उत्पन्न किया है । हे भगवन् ! यह दुःख कैसे नष्ट होता है ? अप्रमाद से दुःख का क्षय होता है ।

**सूत्र - १८०**

हे भगवन् ! अन्य तीर्थिक इस प्रकार बोलते हैं, कहते हैं, प्रज्ञप्त करते हैं और प्ररूपणा करते हैं कि श्रमण-निर्ग्रन्थों के मत में कर्म किस प्रकार दुःख रूप होते हैं ? (चार भंगों में से जो पूर्वकृत कर्म दुःख रूप होते हैं यह वे नहीं पूछते हैं, जो पूर्वकृत कर्म दुःखरूप नहीं होते हैं यह भी वे नहीं पूछते हैं, जो पूर्वकृत नहीं हैं परन्तु दुःखरूप होते हैं उसके लिए वे पूछते हैं । अकृतकर्म को दुःख का कारण मानने वाले वादियों का यह कथन है कि कर्म किये बिना ही दुःख होता है, कर्मों का स्पर्श किये बिना ही दुःख होता है, किये जाने वाले और किये हुए कर्मों के बिना ही दुःख होता है, प्राणी, भूत, जीव और सत्त्व द्वारा कर्म किये बिना ही वेदना का अनुभव करते हैं–ऐसा कहना चाहिए।

(भगवान बोले) जो लोग ऐसा कहते हैं वे मिथ्या कहते हैं । मैं ऐसा कहता हूँ, बोलता हूँ और प्ररूपणा करता

हूँ कि कर्म करने से दुःख होता है, कर्मों का स्पर्श करने से दुःख होता है, क्रियमाण और कृत कर्मों से दुःख होता है, प्राण, भूत, जीव और सत्वकर्म करके वेदना का अनुभव करते हैं। ऐसा कहना चाहिए।

## स्थान-३ – उद्देशक-३

**सूत्र - १८१**

तीन कारणों से मायावी माया करके भी आलोचना नहीं करता है, प्रतिक्रमण नहीं करता, निन्दा नहीं करता, गर्हा नहीं करता, उस विचार को दूर नहीं करता है, शुद्धि नहीं करता, पुनः नहीं करने के लिए तत्पर नहीं होता और यथायोग्य प्रायश्चित्त और तपश्चर्या अंगीकार नहीं करता है, यथा–आलोचना करने से मेरा मान महत्त्व कम हो जाएगा अतः आलोचना न करूँ। 'इस समय भी मैं वैसा ही करता हूँ' इसे निन्दनीय कैसे कहूँ ? 'भविष्य में भी मैं वैसा ही करूँगा' इसलिए आलोचना कैसे करूँ।

तीन कारणों से मायावी माया करके भी उसकी आलोचना नहीं करता है, प्रतिक्रमण नहीं करता है, यावत्–तपश्चर्या अंगीकार नहीं करता है, यथा–मेरी अपकीर्ति होगी, मेरा अवर्णवाद होगा, मेरा अविनय होगा। तीन कारणों से मायावी माया करके भी आलोचना नहीं करता है–यावत् तप अंगीकार नहीं करता है, यथा–मेरी कीर्ति क्षीण होगी, मेरा यश हीन होगा, मेरी पूजा व मेरा सत्कार कम होगा।

तीन कारणों से मायावी माया करके उसकी आलोचना करता है, यावत्–तप अंगीकार करता है, मायावी की इस लोक में निन्दा होती है, परलोक भी निन्दनीय होता है, अन्य जन्म भी गर्हित होता है। तीन कारणों से मायावी माया करके आलोचना करता है, यावत्–तप अंगीकार करता है, अमायी का यह लोक प्रशस्य होता है, परलोक में जन्म प्रशस्त होता है, अन्य जन्म भी प्रशंसनीय होता है। तीन कारणों से मायावी माया करके आलोचना करता है यावत्–तप अंगीकार करता है, ज्ञान के लिए, दर्शन के लिए, चारित्र के लिए।

**सूत्र - १८२**

तीन प्रकार के पुरुष हैं, सूत्र के धारक, अर्थ के धारक, उभय के धारक।

**सूत्र - १८३**

साधू और साध्वीयों को तीन प्रकार के वस्त्र धारण करना और पहनना कल्पता है, यथा–ऊन का, सन का और सुत का बना हुआ। साधू और साध्वीयों को तीन प्रकार के पात्र धारण करन और परिभोग करने के लिए कल्पते हैं, यथा–तुम्बे का पात्र, लकड़ी का पात्र और मिट्टी का पात्र।

**सूत्र - १८४**

तीन कारणों से वस्त्र धारण करना चाहिए, यथा–लज्जा के लिए, प्रवचन की निन्दा न हो इसलिए, शीतादि परीषह निवारण के लिए।

**सूत्र - १८५**

आत्मा को रागद्वेष से बचाने के लिए तीन उपाय कहे गए हैं, यथा–धार्मिक उपदेश का पालन करे, उपेक्षा करे या मौन रहे, उस स्थान से उठकर स्वयं एकान्त स्थान में चला जाए। तृषादि से ग्लान निर्ग्रन्थ को प्रासुक जल की तीन दत्ति ग्रहण करना कल्पता है, यथा–उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य।

**सूत्र - १८६**

तीन कारणों से श्रमण निर्ग्रन्थ स्वधर्मी साम्भोगिक के साथ भोजनादि व्यवहार को तोड़ता हुआ वीतराग की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करता है, यथा–व्रतों में 'गुरुतर' दोष लगाते हुए जिसे स्वयं देखा हो उसे, व्रतों में 'गुरुतर' दोष लगाने की बात के सम्बन्ध में किसी श्रद्धालु से सुनी हो उसे, चौथी बार दोष सेवन करने वाले को।

**सूत्र - १८७**

तीन प्रकार की अनुज्ञा कही गई है यथा–आचार्य जो आज्ञा दे, उपाध्याय जो आज्ञा दे, गणनायक जो आज्ञा दे

तीन प्रकार की समनुज्ञा कही गई हैं, आचार्य जो आज्ञा दे, उपाध्याय जो आज्ञा दे, गणनायक जो आज्ञा दे।

इसी प्रकार उपसम्पदा और पदवी का त्याग भी समझना ।

**सूत्र - १८८**

तीन प्रकार के वचन कहे गए हैं, यथा–तद्‌वचन, तदन्य वचन और नोवचन तीन प्रकार के अवचन कहे गए हैं, यथा–नो तद्‌वचन, नो तदन्य वचन और अवचन ।

तीन प्रकार के मन कहे गए हैं, यथा–तदमन, तदन्यमन और अमन ।

**सूत्र - १८९**

तीन कारणों से अल्पवृष्टि होती है, यथा–उस देश में या प्रदेश में बहुत से उदक योनि के जीव अथवा पुद्‌गल उदक रूप से उत्पन्न नहीं होते हैं, नष्ट नहीं होते हैं, समाप्त नहीं होते हैं, पैदा नहीं होते हैं । नाग, देव, यक्ष और भूतों की सम्यग् आराधना नहीं करने से वहाँ उठे हुए उदक पुद्‌गल-मेघ को जो बरसने वाला है उसे वे देव आदि अन्य देश में लेकर चले जाते हैं । उठे हुए परिपक्व और बरसने वाले मेघ को पवन बिखेर डालता है ।

तीन कारणों से महावृष्टि होती है, यथा–उस देश में या प्रदेश में उदक योनि के जीव और पुद्‌गल उदक रूप से उत्पन्न होते हैं, समाप्त होते हैं, नष्ट होते हैं और पैदा होते हैं । देव, यक्ष, नाग और भूतों की सम्यग् आराधना करने से अन्यत्र उठे हुए परिपक्व और बरसने वाले मेघ को उस प्रदेश में ला देते हैं । उठे हुए, परिपक्व बने हुए और बरसने वाले मेघ को वायु नष्ट न करे । इन तीन कारणों से महावृष्टि होती है ।

**सूत्र - १९०**

तीन कारणों से देवलोक में नवीन उत्पन्न देव मनुष्य-लोक में शीघ्र आने की ईच्छा करने पर भी शीघ्र आने में समर्थ नहीं होता है, यथा–देवलोक में नवीन उत्पन्न देव दिव्य कामभोगों में मूर्च्छित होने से, गृहयुद्ध होने से, स्नेहपाश में बंधा हुआ होने से, तन्मय होने से वह मनुष्य-सम्बन्धी कामभोगों को आदर नहीं देता है, अच्छा नहीं समझता है, 'उनसे कुछ प्रयोजन है' ऐसा निश्चय नहीं करता है, उनकी ईच्छा नहीं करता है, 'ये मुझे मिले' ऐसी भावना नहीं करता।

देवलोक में नवीन उत्पन्न हुआ, देव दिव्य कामभोगों में मूर्छित, गृद्ध, आभक्त और तन्मय होने से उसका मनुष्य सम्बन्धी प्रेमभाव नष्ट हो जाता है और दिव्य कामभोगों के प्रति आकर्षण होता है । देवलोक में नवीन उत्पन्न देव दिव्य कामभोगों में मूर्छित यावत्–तन्मय बना हुआ ऐसा सोचना है कि 'अभी न जाऊं एक मुहूर्त्त के बाद जब नाटकादि पूरे हो जाएगा तब जाऊंगा' । इतने काल में तो अल्प आयुष्य वाले मनुष्य मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं । इन तीन कारणों से नवीन उत्पन्न हुआ देव मनुष्य लोक में शीघ्र आने की ईच्छा करने पर भी शीघ्र नहीं आ सकता है ।

तीन कारणों से देवलोक में नवीन उत्पन्न देव मनुष्यलोक में शीघ्र आने की ईच्छा करने पर शीघ्र आने में समर्थ होता है, यथा–देवलोक में नवीन उत्पन्न हुआ देव दिव्य कामभोगों में मूर्च्छित नहीं होने से, गृद्ध नहीं होने से, आसक्त नहीं होने से उसे ऐसा विचार होता है कि–'मनुष्य-भव में भी मेरे आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्तक, स्थविर, गणी, गणधर अथवा गणावच्छेदक हैं जिनके प्रभाव से मुझे यह इस प्रकार की देवता की दिव्य ऋद्धि, दिव्य द्युति, दिव्य देवशक्ति मिली, प्राप्त हुई, उपस्थित हुई अतः जाऊं और उन भगवान को वन्दन करूँ, नमस्कार करूँ, सत्कार करूँ, कल्याणकारी, मंगलकारी, देव स्वरूप मानकर उनकी सेवा करूँ । देवलोक में उत्पन्न हुआ देव दिव्य कामभोगों में मूर्च्छित नहीं होने से यावत्–तन्मय नहीं होने से ऐसा विचार करता है कि–इस मनुष्यभव में ज्ञानी हैं, तपस्वी हैं और अतिदुष्कर क्रिया करने वाले हैं अतः जाऊं और उन भगवंतों को वन्दन करूँ, नमस्कार करूँ यावत् उनकी सेवा करूँ । देवलोक में नवीन उत्पन्न हुआ देव दिव्य कामभोगों में मूर्च्छित यावत् तन्मय नहीं होता हुआ ऐसा विचार करता है कि–मनुष्यभव में मेरी माता-यावत् मेरी पुत्रवधू है इसलिए जाऊं और उनके समीप प्रकट होऊं जिससे वे मेरी इस प्रकार की मिली हुई, प्राप्त हुई और सम्मुख उपस्थिति हुई दिव्य देवर्द्धि, दिव्य द्युति और दिव्य देवशक्ति को देखें । इन तीन कारणों से देवलोक में नवीन उत्पन्न हुआ देव मनुष्य लोक में शीघ्र आ सकता है।

**सूत्र - १९१**

तीन स्थानों की देवता भी अभिलाषा करते हैं, यथा–मनुष्यभव, आर्यक्षेत्र में जन्म और उत्तम कुल में उत्पत्ति ।

तीन कारणों से देव पश्चात्ताप करते हैं, यथा–अहो ! मैंने बल होते हुए, शक्ति होते हुए, पौरुष-पराक्रम होते हुए भी निरुपद्रवता और सुभिक्ष होने पर भी आचार्य और उपाध्याय के विद्यमान होने पर और नीरोगी शरीर होने पर भी शास्त्रों का अधिक अध्ययन नहीं किया । अहो ! मैं विषयों का प्यासा बनकर इहलोक में ही फँसा रहा और परलोक से विमुख बना रहा जिससे मैं दीर्घ श्रमण पर्याय का पालन नहीं कर सका । अहो ! ऋद्धि, रस और रूप के गर्व में फँसकर और भोगों में आसक्त होकर मैंने विशुद्ध चारित्र का स्पर्श भी नहीं किया ।

**सूत्र - १९२**

तीन कारणों से देव – 'मैं यहाँ से च्युत होऊंगा' यह जानते हैं, यथा–विमान और आभरणों को कान्तिहीन देखकर, कल्पवृक्ष को म्लान होता हुआ देखकर, अपनी तेजोलेश्या को क्षीण होती हुई जानकर ।

तीन कारणों से देव उद्वेग पाते हैं, यथा–अरे मुझे इस प्रकार की मिली हुई, प्राप्त हुई और सम्मुख आई हुई दिव्य देवर्द्धि, दिव्य देवद्युति और दिव्यशक्ति छोड़नी पड़ेगी । अरे ! मुझे माता के ऋतु और पिता के वीर्य के सम्मिश्रण का प्रथम आहार करना पड़ेगा । अरे ! मुझे माता के जठर के मलयम, अशुचिमय, उद्वेगमय और भयंकर गर्भावास में रहना पड़ेगा ।

**सूत्र - १९३**

विमान तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–गोल, त्रिकोण और चतुष्कोण । इन में जो गोल विमान हैं वे पुष्कर कर्णिका के आकार के होते हैं । उनके चारों ओर प्राकार होता है और प्रवेश के लिए एक द्वार होता है । उनमें जो त्रिकोण विमान हैं वे सिंघाड़े के आकार के, दोनों तरफ परकोटा वाले, एक तरफ वेदिका वाले और तीन द्वार वाले कहे गए हैं । उनमें जो चतुष्कोण विमान हैं वे अखाड़े के आकार के हैं और सब तरफ वेदिका से घिरे हुए हैं तथा चार द्वार वाले कहे गए हैं ।

देव विमान तीनके आधार पर स्थित है, यथा–घनोदधि प्रतिष्ठित, घनवात प्रतिष्ठित, आकाश प्रतिष्ठित । विमान तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–अवस्थित, वैक्रेय के द्वारा निष्पादित, पारियानिक आवागमन के लिए वाहन रूप में काम आने वाले ।

**सूत्र - १९४**

नैरयिक तीन प्रकार के कहे गए हैं, सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि और मिश्रदृष्टि । इस प्रकार विकलेन्द्रिय को छोड़कर वैमानिक पर्यन्त समझ लेना चाहिए ।

तीन दुर्गतियाँ कही गई हैं, नरक दुर्गति, तिर्यंचयोनिक दुर्गति और मनुष्य दुर्गति । तीन सद्गतियाँ कही गई हैं, यथा–सिद्ध सद्गति, देव सद्गति और मनुष्य सद्गति ।

तीन दुर्गति प्राप्त कहे गए हैं, यथा–नैरयिक दुर्गति प्राप्त, तिर्यंचयोनिक दुर्गति प्राप्त, मनुष्य दुर्गति प्राप्त । तीन सद्गति प्राप्त कहे गए हैं, यथा–सिद्धसद्गति प्राप्त, देवसद्गति प्राप्त, मनुष्यसद्गति प्राप्त ।

**सूत्र - १९५**

चतुर्थभक्त 'एक उपवास करने' वाले मुनि को तीन प्रकार का जल लेना कल्पता है, आटे का धोवन, उबाली हुई भाजी पर सिंचा गया जल, चावल का धोवन । छट्ठ भक्त 'दो उपवास' करने वाले मुनि को तीन प्रकार का जल लेना कल्पता है, यथा–तिल का धोवन, तुष का धोवन, जौ का धोवन । अष्टभक्त 'तीन उपवास' करने वाले मुनि को तीन प्रकार का जल लेना कल्पता है, ओसामान, छाछ के ऊपर का पानी, शुद्ध उष्णजल ।

भोजन स्थान में अर्पित किया हुआ आहार तीन प्रकार का है, यथा–फलिखोपहृत, शुद्धोपहृत, संसृष्टो-पहृत । तीन प्रकार का आहार दाता द्वारा दिया गया कहा गया है, यथा–देने वाला हाथ से ग्रहण कर देवे, आहार के बर्तन से भोजन के बर्तन में रख कर देवे, बचे हुए अन्न को पुनः बर्तन में रखते समय देवे ।

तीन प्रकार की ऊनोदरी कही गई है, यथा–उपकरण कम करना, आहार पानी कम करना, कषाय त्याग रूप भाव ऊनोदरी । उपकरण ऊणोदरी तीन प्रकार की कही गई है, यथा–एक वस्त्र, एक पात्र, संयमी संमत उपाधि धारण

तीन स्थान निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियों के लिए अहितकर, अशुभ, अयुक्त, अकल्याणकारी, अमुक्तकारी और अशुभानुबन्धी होते हैं, यथा–आर्तस्वर 'क्रन्दन' करना, शय्या उपधि आदि के दोषोद्‌भावन युक्त प्रलाप करना, दुर्ध्यान 'आर्त-रौद्रध्यान' करना । तीन स्थान साधु और साध्वीयों के लिए हीतकर, शुभ, युक्त, कल्याणकारी और शुभानुबन्धी होते हैं, यथा–आर्त्तस्वर 'क्रन्दन' न करना, दोषोद्भावन गर्भित प्रलाप नहीं करना, अपध्यान नहीं करना

शल्य तीन प्रकार के कहे गए हैं, मायाशल्य, निदानशल्य और मिथ्यादर्शनशल्य ।

तीन कारणों से श्रमण-निर्ग्रन्थ संक्षिप्त विपुल तेजोलेश्या वाला होता है, यथा–आतापना लेने से, क्षमा रखने से, जलरहित तपश्चर्या करने से । तीन मास की भिक्षु-प्रतिमा को अंगीकार करने वाले अनगार को तीन दत्ति भोजन की और तीन दत्ति जल की लेना कल्पता है ।

एक रात्रि की भिक्षु प्रतिमा का सम्यग् आराधन नहीं करने वाले साधु के लिए वे तीन स्थान अहीतकर, अशुभकर, अयुक्त, अकल्याणकारी और अशुभानुबन्धी होते हैं, यथा–वह पागल हो जाए, दीर्घकालीन रोग उत्पन्न हो जाए, केवलि प्ररूपित धर्म से भ्रष्ट हो जाए । एक रात्रि की भिक्षु-प्रतिमा का सम्यग् आराधन करने वाले अनगार के लिए ये तीन स्थान हीतकर, शुभकारी, युक्त, कल्याणकारी और शुभानुबन्धी होते हैं, यथा–उसे अवधिज्ञान उत्पन्न हो, मनःपर्यायज्ञान उत्पन्न हो, केवलज्ञान उत्पन्न हो ।

**सूत्र - १९६**

जम्बूद्वीप में तीन कर्मभूमियाँ कही गई हैं, भरत, एरवत और महाविदेह । इसी प्रकार धातकी खण्ड द्वीप के पूर्वार्ध में यावत् अर्धपुष्करवरद्वीप के पश्चिमार्द्ध में भी तीन तीन कर्मभूमियाँ कही गई हैं ।

**सूत्र - १९७**

दर्शन तीन प्रकार के हैं, यथा–सम्यग्‌दर्शन, मिथ्यादर्शन और मिश्रदर्शन ।

रुचि तीन प्रकार की है, यथा–सम्यग्‌रुचि, मिथ्यारुचि और मिश्ररुचि । प्रयोग तीन प्रकार के हैं, यथा–सम्यग् प्रयोग, मिथ्याप्रयोग और मिश्रप्रयोग ।

**सूत्र - १९८**

व्यवसाय तीन प्रकार के हैं, यथा–धार्मिक व्यवसाय, अधार्मिक व्यवसाय, मिश्र व्यवसाय । अथवा–तीन प्रकार व्यवसाय 'ज्ञान' कहे गए हैं, यथा–प्रत्यक्ष 'अवधि आदि' प्रात्ययिक 'इन्द्रिय और मन के निमित्त' से होने वाला और आनुगामिक ।

अथवा तीन प्रकार के व्यवसाय कहे गए हैं, यथा–ऐहलौकिक व्यवसाय, पारलौकिक व्यवसाय, उभय-लौकिक व्यवसाय । ऐहलौकिक व्यवसाय तीन प्रकार का कहा गया है, यथा–लौकिक, वैदिक और सामयिक । लौकिक व्यवसाय तीन प्रकार का कहा गया है, यथा–अर्थ, धर्म और काम, वैदिकव्यवसाय तीन प्रकार का कहा गया है, यथा–ऋग्वेद में कहा हुआ, यजुर्वेद में कहा हुआ, सामवेद में कहा हुआ । सामयिक व्यवसाय तीन प्रकार का कहा गया है, यथा–ज्ञान, दर्शन और चारित्र ।

तीन प्रकार की अर्थयोनि कही गई है, यथा–साम, दण्ड और भेद ।

**सूत्र - १९९**

तीन प्रकार के पुद्‌गल कहे गए हैं, यथा–प्रयोगपरिणत, मिश्रक्षपरिणत और स्वतःपरिणत । नरकावास तीन के आधार पर रहे हुए हैं, यथा–पृथ्वी के आधार पर, आकाश के आधार पर, स्वरूप के आधार पर नैगम संग्रह और व्यवहार नय से पृथ्वीप्रतिष्ठित । ऋजुसूत्र नय के अनुसार आकाशप्रतिष्ठित । तीन शब्दनयों के अनुसार आत्म-प्रतिष्ठित ।

**सूत्र - २००**

मिथ्यात्व तीन प्रकार का कहा गया है, यथा–अक्रिया मिथ्यात्व, अविनय मिथ्यात्व, अज्ञान मिथ्यात्व ।

अक्रिया 'दुष्ट क्रिया' तीन प्रकार की कही गई है, यथा–प्रयोगक्रिया, सामुदानिक क्रिया, अज्ञान क्रिया । प्रयोग

क्रिया तीन प्रकार की हैं, यथा–मनः प्रयोग क्रिया, वचन प्रयोग क्रिया, कायप्रयोग क्रिया । समुदान क्रिया तीन प्रकार की है, यथा-अनन्तर समुदान क्रिया, परम्पर समुदान क्रिया, तदुभय समुदान क्रिया । अज्ञान क्रिया तीन प्रकार की कही गई है, यथा–मति-अज्ञान क्रिया, श्रुत-अज्ञान क्रिया और विभंग-अज्ञान क्रिया ।

अविनय तीन प्रकार का है, देशत्यागी, निराम्बनता, नाना प्रेम-द्वेष अविनय ।

अज्ञान तीन प्रकार का कहा गया है । प्रदेश अज्ञान, सर्व अज्ञान, भाव अज्ञान ।

**सूत्र - २०१**

धर्म तीन प्रकार का है, श्रुतधर्म, चारित्रधर्म और अस्तिकाय-धर्म ।

उपक्रम तीन प्रकार का कहा गया है, यथा–धार्मिक उपक्रम, अधार्मिक उपक्रम और मिश्र उपक्रम । अथवा तीन प्रकार का उपक्रम कहा गया है, यथा–आत्मोपक्रम, परोपक्रम और तदुभयोपक्रम । इसी तरह वैयावृत्य, अनुग्रह, अनुशासन और उपालम्भ । प्रत्येक के तीन-तीन आलापक उपक्रम के समान ही कहने चाहिए ।

**सूत्र - २०२**

कथा तीन प्रकार की कही गई है, अर्थकथा, धर्मकथा और कामकथा ।

विनिश्चय तीन प्रकार के कहे हैं, अर्थविनिश्चय, धर्मविनिश्चय और कामविनिश्चय ।

**सूत्र - २०३**

श्री गौतम स्वामी भगवान महावीर से पूछते हैं–हे भगवन् ! तथारूप श्रमण माहन की सेवा करने वाले को सेवा का क्या फल मिलता है ? भगवान बोले–हे गौतम ! उसे धर्मश्रवण करने का फल मिलता है । हे भगवन् ! धर्म श्रवण करने का क्या फल होता है ? धर्मश्रवण करने से ज्ञान की प्राप्ति होती है । हे भगवन् ! ज्ञान का फल क्या है? हे गौतम ! ज्ञान का फल विज्ञान है इस प्रकार इस अभिलापक से यह गाथा जान लेनी चाहिए ।

**सूत्र - २०४**

श्रवण का फल ज्ञान, ज्ञान का फल विज्ञान, विज्ञान का फल प्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान का फल संयम, संयम का फल अनाश्रव, अनाश्रव का फल 'तप' तप का फल व्यवदान, व्यवदान का फल अक्रिया । अक्रिया का फल निर्वाण है । हे भगवन् ! निर्वाण का क्या फल है ? हे श्रमणायुष्मन् ! सिद्धगति में जाना ही निर्वाण का सर्वान्तिम प्रयोजन है ।

## स्थान-३ – उद्देशक-४

**सूत्र - २०५**

प्रतिमाधारी अनगार को तीन उपाश्रयों का प्रतिलेखन करना कल्पता है, यथा–अतिथिगृह में, खुले मकान में, वृक्ष के नीचे । इसी प्रकार तीन उपाश्रयों की आज्ञा लेना और उनका ग्रहण करना कल्पता है । प्रतिमाधारी अनगार को तीन संस्तारकों की प्रतिलेखना करना कल्पता है, यथा–पृथ्वी-शिला, काष्ठ-शिला और तृणादि । इसी प्रकार तीन संस्तारकों की आज्ञा लेना और ग्रहण करना कल्पता है ।

**सूत्र - २०६**

काल तीन प्रकार के कहे गए हैं, भूतकाल, वर्तमानकाल और भविष्यकाल ।

समय तीन प्रकार का कहा गया है, यथा–अतीत काल, वर्तमानकाल और अनागत काल । इसी तरह आवलिका, श्वसोच्छ्वास, स्तोक, क्षण, लव, मुहूर्त्त, अहोरात्र–यावत् क्रोड़वर्ष, पूर्वांग, पूर्व, यावत्–अवसर्पिणी ।

पुद्गल परिवर्तन तीन प्रकार का है, यथा–अतीत, प्रत्युत्पन्न और अनागत ।

**सूत्र - २०७**

वचन तीन प्रकार के हैं–एकवचन, द्विवचन और बहुवचन । अथवा वचन तीन प्रकार के हैं, स्त्री वचन, पुरुष वचन और नपुंसक वचन । अथवा तीन प्रकार के वचन हैं, अतीत वचन, वर्तमान वचन और भविष्य वचन ।

**सूत्र - २०८**

तीन प्रकार की प्रज्ञापना कही गई हैं, यथा–ज्ञान प्रज्ञापना, दर्शन प्रज्ञापना और चारित्र प्रज्ञापना ।

तीन प्रकार के सम्यक् हैं, ज्ञान सम्यक्, दर्शन सम्यक् और चारित्र सम्यक् ।

तीन प्रकार के उपघात कहे गए हैं, उद्गमोपघात, उत्पादनोपघात और एषणोपघात ।

इसी तरह तीन प्रकार की विशुद्धि कही गई है, यथा–उद्गम विशुद्धि आदि ।

**सूत्र - २०९**

तीन प्रकार की आराधना कही गई है, यथा–ज्ञानाराधना, दर्शनाराधना और चारित्राराधना । ज्ञानाराधना तीन प्रकार की कही गई है, यथा–उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य । इसी तरह दर्शन आराधना और चारित्र आराधना कहनी चाहिए ।

तीन प्रकार का संक्लेश कहा गया है, ज्ञानसंक्लेश, दर्शनसंक्लेश और चारित्रसंक्लेश । इसी तरह असंक्लेश, अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार और अनाचार भी समझने चाहिए ।

तीन का अतिक्रमण करने पर आलोचना करनी चाहिए, प्रतिक्रमण करना चाहिए, निन्दा करनी चाहिए, गर्हा करनी चाहिए यावत्–तप अंगीकार करना चाहिए, यथा–ज्ञान का अतिक्रमण करने पर, दर्शन का अतिक्रमण करने पर, चारित्र का अतिक्रमण करने पर । इसी तरह व्यतिक्रम, अतिचार और अनाचार करने पर भी आलोचनादि करनी चाहिए ।

**सूत्र - २१०**

प्रायश्चित्त तीन प्रकार का कहा गया है, यथा–आलोचना के योग्य, प्रतिक्रमण के योग्य, उभय योग्य ।

**सूत्र - २११**

जम्बूद्वीपवर्ती मेरु पर्वत के दक्षिण में तीन अकर्मभूमियाँ कही गई हैं, यथा–हेमवत, हरिवास और देवकुरु । जम्बूद्वीपवर्ती मेरु पर्वत के उत्तर में तीन अकर्मभूमियाँ कही गई हैं, यथा–उत्तरकुरु, रम्यक्वास और हिरण्यवत ।

जम्बूद्वीपवर्ती मेरु पर्वत के दक्षिण में तीन क्षेत्र कहे गए हैं, यथा–भरत, हेमवत और हरिवास । जम्बूद्वीप-वर्ती मेरु पर्वत के उत्तर में तीन क्षेत्र कहे गए हैं, यथा–रम्यक्वास, हिरण्यवास और ऐरवत ।

जम्बूद्वीपवर्ती मेरु पर्वत के दक्षिण में तीन वर्षधर पर्वत हैं, यथा–लघुहिमवान, महाहिमवान और निषध । जम्बूद्वीपवर्ती मेरु पर्वत के उत्तर में तीन वर्षधर पर्वत हैं, यथा–नीलवान, रुक्मी और शिखरी ।

जम्बूद्वीपवर्ती मेरु पर्वत के दक्षिण में तीन महाह्रद हैं, यथा–पद्मह्रद, महापद्मह्रद और तिगिच्छह्रद । वहाँ तीन महर्द्धिक यावत्–पल्योपम की स्थिति वाली तीन देवियाँ रहती हैं, यथा–श्री, ह्री और धृति । इसी तरह उत्तर में भी तीन ह्रद हैं, यथा–केशरी ह्रद, महापुण्डरीक ह्रद और पुण्डरीक ह्रद । इन ह्रदों में रहने वाली देवियों के नाम, कीर्ति, बुद्धि और लक्ष्मी ।

जम्बूद्वीपवर्ती मेरु पर्वत के दक्षिण में लघु हिमवान वर्षधर पर्वत के पद्मह्रद नामक महाह्रद से तीन महा-नदियाँ नीकलती हैं, यथा–गंगा, सिन्धु और रोहितांशा । जम्बूद्वीपवर्ती मेरु पर्वत के उत्तर में शिखरीवर्षधर पर्वत के पौण्डरीक नामक महाह्रद से तीन महानदियाँ नीकलती हैं, यथा–सुवर्णकुला, रक्ता और रक्तवती । जम्बूद्वीपवर्ती मेरु पर्वत के पूर्व में सीता महानदी के उत्तर में तीन अन्तर नदियाँ कही गई हैं, यथा–तप्तजला, मत्तजला और उन्मत्तजला ।

जम्बूद्वीपवर्ती मेरु पर्वत के पश्चिम में शीतोदा महानदी के दक्षिण में तीन अन्तर नदियाँ हैं, क्षीरोदा, शीत-स्रोता और अन्तर्वाहिनी । जम्बूद्वीपवर्ती मेरु पर्वत के पश्चिम में शीतोदा महानदी के उत्तर में तीन अन्तर नदियाँ हैं, फेनमालिनी और गंभीरमालिनी । इस प्रकार धातकी खण्डद्वीप के पूर्वार्ध में अकर्मभूमियों से लगाकर अन्तर नदियों तक यावत् अर्धपुष्कर द्वीप के पश्चिमार्ध में भी इसी प्रकार जानना ।

**सूत्र - २१२**

तीन कारणों से पृथ्वी का थोड़ा भाग चलायमान होता है, यथा–रत्नप्रभा पृथ्वी के नीचे बादर पुद्गल आकर लगे या वहाँ से अलग होवे तो वे लगने या अलग होने वाले बादर पुद्गल पृथ्वी के कुछ भाग को चलायमान करते हैं, महा ऋद्धि वाला यावत् महेश कहा जाने वाला महोरग देव इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नीचे आवागमन करे तो पृथ्वी चलायमान होती है, नागकुमार तथा सुवर्णकुमार का संग्राम होने पर थोड़ी पृथ्वी चलायमान होती है ।

तीन कारणों से पूर्ण पृथ्वी चलायमान होती है, यथा–इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नीचे घनवात क्षुब्ध होने से घनोदधि कम्पित होता है । कम्पित होता हुआ घनोदधि समग्र पृथ्वी को चलायमान करता है । महर्धिक-यावत् महेश कहा जाने वाला देव तथारूप श्रमण-माहन को ऋद्धि, यश, बल, वीर्य, पुरुषकार पराक्रम बताता हुआ समग्र पृथ्वी को चलायमान करता है । देव तथा असुरों का संग्राम होने पर समस्त पृथ्वी चलायमान होती है ।

**सूत्र - २१३**

किल्बिषिक देव तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–तीन पल्योपम की स्थिति वाले, तीन सागरोपम की स्थिति वाले, तेरह सागरोपम की स्थिति वाले ।

हे भगवन् ! तीन पल्योपम की स्थिति वाले किल्बिषिक देव कहाँ रहते हैं ? ज्योतिष्क देवों के ऊपर और सौधर्म-ईशानकल्प के नीचे तीन पल्योपम की स्थिति वाले किल्बिषिक देव रहते हैं । हे भगवन् ! तीन सागरोपम की स्थिति वाले किल्बिषिक देव कहाँ रहते हैं ? सौधर्म ईशान देवलोक के ऊपर और सनत्कुमार-माहेन्द्रकल्प के नीचे तीन सागरोपम की स्थिति वाले किल्बिषिक देव रहते हैं । तेरह सागरोपम स्थिति वाले किल्बिषिक देव कहाँ रहते हैं ? ब्रह्मलोक कल्प के ऊपर और लान्तक कल्प के नीचे यह किल्बिषिक देव रहते हैं ।

**सूत्र - २१४**

देवराज देवेन्द्र शक्र की बाह्य परीषद के देवों की स्थिति तीन पल्योपम की है । देवराज देवेन्द्र शक्र की आभ्यन्तर परीषद की देवियों की स्थिति तीन पल्योपम की है । देवराज देवेन्द्र ईशान के बाह्य परीषद देवियों की स्थिति तीन पल्योपम की कही गई हैं ।

**सूत्र - २१५**

प्रायश्चित्त तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–ज्ञानप्रायश्चित्त, दर्शनप्रायश्चित्त और चारित्र-प्रायश्चित्त ।

तीन को अनुद्घातिक 'गुरु' प्रायश्चित्त कहा गया है, यथा–हस्तकर्म करने वाले को, मैथुन सेवन करने वाले को, रात्रिभोजन करने वाले को ।

तीन को पारांचिक प्रायश्चित्त कहा गया है, यथा–कषाय और विषय से अत्यन्त दुष्ट को परस्पर स्त्यान-गृद्धि निद्रा वाले को, 'गुदा' मैथुन करने वालों को ।

तीन को अनवस्थाप्य प्रायश्चित्त कहा गया है, यथा–साधर्मिकों की चोरी करने वाले को, अन्यधार्मिकों की चोरी करने वाले को, हाथ आदि से मर्मान्तक प्रहार करने वाले को ।

**सूत्र - २१६**

तीन को प्रव्रजित करना नहीं कल्पता है, यथा–पण्डक को, वातिक को, क्लीब-असमर्थ को । इसी तरह 'उक्त तीन को' मुण्डित करना, शिक्षा देना, महाव्रतों का आरोपण करना, एक साथ बैठकर भोजन करना तथा साथ में रखना नहीं कल्पता है ।

**सूत्र - २१७**

तीन वाचना देने योग्य नहीं है, यथा–अविनीत को, दूध आदि विकृति के लोलुपी को, अत्यन्त क्रोधी को । तीन को वाचना देना कल्पता है, यथा–विनीत को, विकृति में लोलुप न होने वाले को, क्रोध उपशान्त करने वाले को

तीन को समझाना कठिन है, यथा–दुष्ट को, मूढ़ को और दुराग्रही को । तीन को सरलता से समझाया जा सकता है, यथा–अदुष्ट को, अमूढ़ को और अदुराग्रही को ।

**सूत्र - २१८**

तीन माण्डलिक पर्वत कहे गए हैं, यथा–मानुषोत्तर पर्वत, कुण्डलवर पर्वत, रुचकवर पर्वत ।

**सूत्र - २१९**

तीन बड़े से बड़े कहे गए हैं, यथा–सब मेरु पर्वतों में जम्बूद्वीप का मेरु पर्वत, समुद्रों में स्वयंभूरमण समुद्र, कल्पों में ब्रह्मलोक कल्प ।

**सूत्र - २२०**

तीन प्रकार की कल्प स्थिति है, यथा–सामायिक कल्पस्थिति, छेदोपस्थापनीय कल्पस्थिति, निर्विशमान, कल्पस्थिति । अथवा तीन प्रकार की कल्पस्थिति कही गई हैं, यथा–निर्विष्ट कल्पस्थिति, जिनकल्प स्थिति, स्थविर कल्पस्थिति ।

**सूत्र - २२१**

नारक जीवों के तीन शरीर कहे गए हैं, यथा–वैक्रिय, तैजस और कार्मण । असुरकुमारों के तीन शरीर नैरयिकों के समान कहे गए हैं, इसी तरह सब देवों के हैं ।

पृथ्वीकाय के तीन शरीर कहे गए हैं, यथा–औदारिक, तैजस और कार्मण । इसी तरह वायुकाय को छोड़कर चतुरिन्द्रिय पर्यन्त तीन शरीर समझने चाहिए ।

**सूत्र - २२२**

गुरु सम्बन्धी तीन प्रत्यनीक 'प्रतिकूल आचरण करने वाले कहे गए हैं, यथा–आचार्य का प्रत्यनीक, उपाध्याय का प्रत्यनीक, स्थविर का प्रत्यनीक ।

गति सम्बन्धी तीन प्रत्यनीक कहे गए हैं, यथा–इहलोक-प्रत्यनीक, परलोक-प्रत्यनीक, उभयलोक प्रत्यनीक समूह की अपेक्षा से तीन प्रत्यनीक कहे गए हैं, यथा–कुल प्रत्यनीक, गण-प्रत्यनीक, संघ-प्रत्यनीक ।

अनुकम्पा की अपेक्षा से तीन प्रत्यनीक कहे गए हैं, यथा–तपस्वी-प्रत्यनीक, ग्लान-प्रत्यनीक, शैक्ष 'नवदीक्षित' प्रत्यनीक ।

भाव की अपेक्षा तीन प्रत्यनीक कहे गए हैं, यथा–ज्ञान-प्रत्यनीक, दर्शन-प्रत्यनीक, चारित्र-प्रत्यनीक । श्रुत की अपेक्षा तीन प्रत्यनीक कहे गए हैं, यथा–सूत्र प्रत्यनीक, अर्थ-प्रत्यनीक, तदुभय-प्रत्यनीक ।

**सूत्र - २२३**

तीन अंग पिता के 'वीर्य से निष्पन्न' कहे गए हैं, यथा–हड्डी, हड्डी की मिंजा और केश-मूँछ, रोम नख । तीन अंग माता के 'आर्तव से निष्पन्न' कहे हैं, यथा–माँस, रक्त और कपाल का भेजा, अथवा–भेजे का फिप्फिस 'माँस विशेष' ।

**सूत्र - २२४**

तीन कारणों से श्रमण निर्ग्रन्थ महानिर्जरा वाला और महापर्यवसान वाला होता है, यथा–कब मैं अल्प या अधिक श्रुत का अध्ययन करूँगा, कब मैं एकलविहार प्रतिमा को अंगीकार करके विचरूँगा, कब मैं अन्तिम मारणान्तिक संलेखना से भूषित होकर आहार पानी का त्याग करके पादपोपगमन संथारा अंगीकार करके मृत्यु की ईच्छा नहीं करता हुआ विचरूँगा । इन तीन कारणों से तीनों भावना प्रकट करता हुआ अथवा चिन्तन पर्यालोचन करता हुआ निर्ग्रन्थ महानिर्जरा और महापर्यवसान वाला होता है ।

तीनों कारणों से श्रमणोपासक महानिर्जरा और महापर्यवसान करने वाला होता है, यथा–कब मैं अल्प या बहुत परिग्रह को छोड़ूँगा, कब मैं मुँडित होकर गृहस्थ से अनगार धर्म में दीक्षित होऊंगा, कब मैं अन्तिम मारणा-न्तिक संलेखना भूषणा से भूषित होकर, आहार-पानी का त्याग करके पादपोपगमन संथारा करके मृत्यु की ईच्छा नहीं करता हुआ विचरूँगा । इस प्रकार शुद्ध मन से, शुद्ध वचन से और शुद्ध काया से पर्यालोचन करता हुआ या उक्त तीनों भावना प्रकट करता हुआ श्रमणोपासक महानिर्जरा और महापर्यवसान वाला होता है ।

**सूत्र - २२५**

तीन प्रकार से पुद्‌गल की गति में प्रतिघात होना कहा गया है, यथा–एक परमाणु-पुद्‌गल का दूसरे परमाणु - पुद्‌गल से टकराने के कारण गति में प्रतिघात होता है, रूक्ष होने से गति मैं प्रतिघात होता है, लोकान्त में गति का प्रतिघात होता है ।

**सूत्र - २२६**

चक्षुष्मान् 'नेत्रवाले' तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–एक नेत्र वाले, दो नेत्र वाले और तीन नेत्र वाले । छद्मस्थ-

श्रुतादि ज्ञान-रहित मनुष्य एक नेत्र वाले हैं देव दो नेत्र वाले हैं, तथारुप श्रमण तीन नेत्र वाले हैं ।

**सूत्र - २२७**

तीन प्रकार का अभिसमागम 'विशिष्ट ज्ञान' हैं, यथा–ऊर्ध्व, अधः और तिर्यक् । जब किसी तथारूप श्रमण - माहण को विशिष्ट ज्ञान-दर्शन उत्पन्न होता है तब वह सर्व प्रथम ऊर्ध्वलोक तो जानता है तदनन्तर तिर्यक् लोक को, उसके पश्चात् अधोलोक को जानता है । हे श्रमण आयुष्मन् ! अधोलोक का ज्ञान कठिनाई से होता है ।

**सूत्र - २२८**

ऋद्धि तीन प्रकार की कही गई है, यथा–देवर्द्धि, राजर्द्धि और गण के अधिपति आचार्य की ऋद्धि । देव की ऋद्धि तीन प्रकार की कही गई है, यथा–विमानों की ऋद्धि, वैक्रिय की ऋद्धि, परिचार 'विषयभोग' की ऋद्धि । अथवा–देवर्द्धि तीन प्रकार की है यथा–सचित्त, अचित्त और मिश्र । राजा की ऋद्धि तीन प्रकार की है, यथा–राजा की अतियान ऋद्धि, राजा की नियान ऋद्धि, राजा की सेना, वाहन कोष, कोष्ठागार आदि की ऋद्धि । अथवा–राजा की ऋद्धि तीन प्रकार की है, यथा–सचित्त, अचित्त और मिश्र ऋद्धि । गणी (आचार्य) की ऋद्धि तीन प्रकार की है, यथा–ज्ञान की ऋद्धि, दर्शन की ऋद्धि और चारित्र की ऋद्धि । अथवा–गणी की ऋद्धि तीन प्रकार की है, यथा–सचित्त, अचित्त और मिश्र ।

**सूत्र - २२९**

तीन प्रकार के गौरव हैं, ऋद्धि-गौरव, रस-गौरव और साता-गौरव ।

**सूत्र - २३०**

तीन प्रकार के करण (अनुष्ठान) कहे गए हैं, यथा– धार्मिक करण, अधार्मिक करण और मिश्र करण ।

**सूत्र - २३१**

भगवान ने तीन प्रकार का धर्म कहा है, यथा–सु-अधीत 'अच्छी तरह ज्ञान प्राप्त करना' सु-ध्यात 'अच्छी तरह भावनादी का चिन्तन करना' सु-तपस्यित 'तप का अनुष्ठान अच्छी तरह करना । जब अच्छी तरह अध्ययन होता है तो अच्छी तरह ध्यान और चिन्तन हो सकता है, जब अच्छी तरह ध्यान और चिन्तन होता है तब श्रेष्ठ तप का आराधन होता है इसी प्रकार सु-अधीत, सु-ध्यान और सु-तपस्यित रूप सु-आख्यान धर्म भगवान ने प्ररूपित किया है ।

**सूत्र - २३२**

व्यावृत्ति 'हिंसादि से निवृत्ति' तीन प्रकार की कही गई है, यथा–ज्ञानयुक्त की जाने वाली व्यावृत्ति, अज्ञान से की जाने वाली व्यावृत्ति, संशय से की जाने वाली व्यावृत्ति । इसी तरह पदार्थों में आसक्ति और पदार्थों का ग्रहण भी तीन तीन प्रकार का है ।

**सूत्र - २३३**

तीन प्रकार के अन्त कहे गए हैं, यथा–लोकान्त, वेदान्त और समयान्त । लौकिक अर्थशास्त्र आदि से निर्णय करना लोकान्त है, वेदों के अनुसार निर्णय करना वेदान्त है, जैन सिद्धान्तों के अनुसार 'निर्णय' करना समयान्त है ।

**सूत्र - २३४**

जिन तीन प्रकार के कहे गए हैं, अवधिज्ञानी जिन, मनःपर्यवज्ञानी जिन और केवलज्ञानी जिन । तीन केवली कहे गए हैं, यथा–अवधिज्ञानी केवली, मनःपर्यवज्ञानी केवली और केवलज्ञानी केवली ।

तीन अर्हन्त कहे गए हैं, यथा–अवधिज्ञानी अर्हन्त, मनःपर्यवज्ञानी अर्हन्त और केवलज्ञानी अर्हन्त ।

**सूत्र - २३५**

तीन लेश्याएं दुर्गन्ध वाली कही गई हैं, यथा–कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोतलेश्या । तीन लेश्याएं सुगंध वाली कही गई हैं, तेजोलेश्या, पद्मलेश्या, शुक्ललेश्या । इसी तरह दुर्गति में ले जाने वाली, सुगति में ले जाने वाली लेश्या, अशुभ, शुभ, अमनोज्ञ, मनोज्ञ, अविशुद्ध, विशुद्ध, क्रमशः अप्रशस्त, प्रशस्त, शीतोष्ण और स्निग्ध, रूक्ष समझना ।

**सूत्र - २३६**

मरण तीन प्रकार का कहा गया है, यथा–बालमरण, पण्डितमरण और बालपण्डितमरण । बालमरण तीन प्रकार का कहा गया है, स्थितलेश्य, संक्लिष्ट लेश्य, पर्यवजात लेश्य । पण्डितमरण तीन प्रकार का है, स्थितलेश्य, असंक्लिष्टलेश्य, अपर्यवजात लेश्य । बालपण्डितमरण तीन प्रकार का है, स्थितलेश्य, असंक्लिष्टलेश्य और अपर्यवजात लेश्य ।

**सूत्र - २३७**

निश्चय नहीं करने वाले 'शंकाशील' के लिए तीन स्थान अहित कर, अशुभरूप, अयुक्त, अकल्याणकारी और अशुभानुबन्धी होते हैं, यथा–कोई मुण्डित होकर गृहस्थाश्रम से नीकलकर अनगार धर्म में दीक्षित होने पर निर्ग्रन्थ प्रवचन में शंका करता है, अन्यमत की ईच्छा करता है, क्रिया के फल के प्रति शंकाशील होता है, द्वैधीभाव 'ऐसा है या नहीं है' ऐसी बुद्धि को प्राप्त करता है और कलुषित भाव वाला होता है और इस प्रकार वह निर्ग्रन्थ प्रवचन में श्रद्धा नहीं रखता है, विश्वास नहीं रखता है, रुचि नहीं रखता है तो उसे परीषह होते हैं और वे उसे पराजित कर देते हैं । परीषहों को पराजित नहीं कर सकता । कोई व्यक्ति मुण्डित होकर अगार अवस्था से अनगार रूप में दीक्षित होने पर पाँच महाव्रतों में शंका करे–यावत् कलुषित भाव वाला होता है और इस प्रकार वह कलुषित पंच महाव्रतों में श्रद्धा नहीं रखता–यावत् वह परीषहों को पराजित नहीं कर सकता है ।

कोई व्यक्ति मुण्डित होकर और अगार से अनगार दीक्षा को अंगीकार करने पर षट् जीवनिकाय में श्रद्धा नहीं करता है, यावत्–वह परीषहों को पराजित नहीं कर सकता है ।

सम्यक् निश्चय करने वाले के तीन स्थान हित कर यावत्–शुभानुबन्धी होते हैं, यथा–कोई व्यक्ति मुण्डित होकर गृहस्थावस्था से अनगार धर्म में प्रव्रजित होने पर निर्ग्रन्थ प्रवचन में शंका नहीं लाता है अन्यमत की कांक्षा नहीं करता है यावत्–कलुषभाव को प्राप्त न होकर निर्ग्रन्थ प्रवचन में श्रद्धा रखता है, विश्वास रखता है और रुचि रखता है तो वह परीषहों को पराजित कर देता है । परीषह उसे पराजित नहीं कर सकते हैं । कोई व्यक्ति मुण्डित होकर और गृहस्थावस्था से अनगार धर्म में प्रव्रजित होकर पाँच महाव्रतों में शंका नहीं करता है, कांक्षा नहीं करता है–यावत् वह परीषहों को पराजित करता है, परीषह उसे पराजित नहीं कर सकते हैं । कोई व्यक्ति मुण्डित होकर गृहस्थावस्था से अनगार अवस्था में प्रव्रजित होकर षट् जीवनिकाय में शंका नहीं करता है–यावत् वह परीषहों को पराजित कर देता है उसे परीषह पराजित नहीं कर सकते हैं ।

**सूत्र - २३८**

रत्नप्रभादि प्रत्येक पृथ्वी तीन वलयों के द्वारा चारों तरफ से घिरी हुई है, यथा–घनोदधिवलय से, घनवात-वलय से और तनुवात वलय से ।

**सूत्र - २३९**

नैरयिक जीवन उत्कृष्ट तीन समय वाली विग्रह-गति से उत्पन्न होते हैं । एकेन्द्रिय को छोड़कर वैमानिक पर्यन्त ऐसा जानना चाहिए ।

**सूत्र - २४०**

क्षीण मोहवाले अर्हन्त तीन कर्मप्रकृतियों एक साथ क्षय करते हैं, यथा–ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय,अन्तराय

**सूत्र - २४१**

अभिजित नक्षत्र के तीन तारे कहे गए हैं । इसी तरह श्रवण, अश्विनी, भरणी, मृगशिर, पुष्य और ज्येष्ठा के भी तीन तीन तारे हैं ।

**सूत्र - २४२**

श्री धर्मनाथ तीर्थंकर के पश्चात् त्रिचतुर्थांश, पल्योपम न्यून सागरोपम व्यतीत हो जाने के बाद श्री शान्तिनाथ भगवान उत्पन्न हुए ।

**सूत्र - २४३**

श्रमण भगवान महावीर से लेकर तीसरे युगपुरुष पर्यन्त मोक्षगमन कहा गया है । मल्लिनाथ भगवान ने तीन सौ पुरुषों के साथ मुण्डित होकर प्रव्रज्या धारण की थी । इसी तरह पार्श्वनाथ भगवान ने भी की थी ।

**सूत्र - २४४**

श्रमण भगवान महावीर ने जिन नहीं किन्तु जिन के समान, सर्वाक्षरसन्निपाती 'सब भाषाओं के वेत्ता' और जिन के समान यथातथ्य कहने वाले चौदह पूर्वधर मुनियों की उत्कृष्ट सम्पदा 'संख्या' तीन सौ थी ।

**सूत्र - २४५**

तीन तीर्थंकर चक्रवर्ती थे, यथा–शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ और अरनाथ ।

**सूत्र - २४६**

ग्रैवेयक विमान प्रस्तर 'समूह' तीन हैं, यथा–अधस्तनग्रैवेयक विमानप्रस्तर, मध्यमग्रैवेयक विमानप्रस्तर, उपरितनग्रैवेयक विमानप्रस्तर । अधस्तन ग्रैवेयक विमानप्रस्तर तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–अधस्तनाधस्तन ग्रैवेयक विमानप्रस्तर, अधस्तनमध्यम ग्रैवेयक विमानप्रस्तर, अधस्तनोपरितन ग्रैवेयकविमान प्रस्तर । मध्यम ग्रैवेयक विमानप्रस्तर तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–मध्यमाधस्तन ग्रैवेयक विमानप्रस्तर, मध्यममध्यम ग्रैवेयक विमान-प्रस्तर, मध्यमोपरितन ग्रैवेयक विमानप्रस्तर । उपरितन ग्रैवेयक विमान प्रस्तर तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–उपरितनअधस्तनग्रैवेयक विमानप्रस्तर, उपरितनमध्यम ग्रैवेयक विमानप्रस्तर, उपरितनोपरितनग्रैवेयक विमानप्रस्तर

**सूत्र - २४७**

जीवों ने तीन स्थानों में अर्जित पुद्‌गलों को पापकर्म रूप में एकत्रित किए, करते हैं और करेंगे, यथा–स्त्री-वेदनिवर्तित, पुरुषवेदनिवर्तित, नपुंसकवेदनिवर्तित । पुद्‌गलों का एकत्रित करना, वृद्धि करना, बंध, उदीरणा, वेदन तथा निर्जरा का भी इसी तरह कथन समझना चाहिए ।

**सूत्र - २४८**

तीन प्रदेशी स्कन्ध यावत्–त्रिगुण रूक्ष पुद्‌गल अनन्त कहे गए हैं ।

# स्थान–४

## उद्देशक-१

**सूत्र - २४९**

चार प्रकार की अन्त क्रियाएं कही गई हैं, उनमें प्रथम अन्तक्रिया इस प्रकार है–कोई अल्पकर्मा व्यक्ति मनुष्य-भव में उत्पन्न होता है, वह मुण्डित होकर गृहस्थावस्था से अनगार धर्म में प्रव्रजित होने पर उत्तम संयम, संवर और समाधि का पालन करने वाला रूक्षवृत्ति वाला संसार को पार करने का अभिलाषी; शास्त्राध्ययन के लिए तप करने वाला, दुःख का क्षय करने वाला, तपस्वी होता है । उसे घोर तप नहीं करना पड़ता है और न उसे घोर वेदना होती है । (क्योंकि वह अल्पकर्मा ही उत्पन्न हुआ है) । ऐसा पुरुष दीर्घायु भोगकर सिद्ध होता है, बुद्ध होता है, मुक्त होता है, निर्वाण प्राप्त करता है और सब दुःखों का अन्त करता है । जैसे–चातुरन्त चक्रवर्ती भरत राजा । यह पहली अन्तक्रिया

दूसरी अन्तक्रिया इस प्रकार है–कोई व्यक्ति अधिक कर्म वाला मनुष्य-भव में उत्पन्न होता है, वह मुण्डित होकर गृहस्थावस्था से अनगार-धर्म में प्रव्रजित होकर संयम युक्त; संवर युक्त यावत्–उपधान-वान, दुःख का क्षय करने वाला और तपस्वी होता है । उसे घोर तप करना पड़ता है और उसे घोर वेदना होती है । ऐसा पुरुष अल्प आयु भोगकर सिद्ध होता है यावत्–दुःखों का अन्त करता है, जैसे गजसुकुमार अणगार ।

तीसरी अन्तक्रिया इस प्रकार है–कोई अल्पकर्मा व्यक्ति मनुष्य-भव में उत्पन्न होता है, वह मुण्डित होकर अगार अवस्था से अनगारधर्म में दीक्षित हुआ, जैसे दूसरी अन्तक्रिया में कहा उसी तरह सर्व कथन करना चाहिए, विशेषता यह है कि वह दीर्घायु भोगकर होता है यावत्–सब दुःखों का अन्त करता है । जैसे चातुरन्त चक्रवर्ती राजा सनत्कुमार ।

चौथी अन्तक्रिया इस प्रकार है–कोई अल्पकर्मा व्यक्ति मनुष्य-भवमें उत्पन्न होता है । वह मुण्डित हो कर यावत्–दीक्षा लेकर उत्तम संयम का पालन करता है–यावत् न तो उसे घोरतप करना पड़ता है, न उसे घोर वेदना सहनी पड़ती है । ऐसा पुरुष अल्पायु भोगकर सिद्ध होता है–यावत् सब दुःखों का अन्त करता है । जैसे भगवती मरुदेवी ।

**सूत्र - २५०**

चार प्रकार के वृक्ष कहे गए हैं, यथा–कितनेक द्रव्य से भी ऊंचे और भाव से भी ऊंचे, कितनेक द्रव्य से ऊंचे किन्तु भाव से नीचे, कितनेक द्रव्य से नीचे किन्तु भाव से ऊंचे, कितनेक द्रव्य से भी नीचे और भाव से भी नीचे । इसी प्रकार चार प्रकार के पुरुष कहे गए हैं, यथा–कितनेक द्रव्य से 'जाति से' उन्नत और गुण से भी उन्नत इस प्रकार यावत् –द्रव्य से भी हीन और गुण से भी हीन ।

चार प्रकार के वृक्ष कहे गए हैं, यथा–कितनेक वृक्ष ऊंचाई में उन्नत होते हैं और शुभ रस वाले होते हैं । कितनेक वृक्ष ऊंचाई में उन्नत होते हैं परन्तु अशुभ रस वाले होते हैं । कितनेक वृक्ष ऊंचाई में अवनत और रसादि में उन्नत होते हैं । कितनेक वृक्ष ऊंचाई में भी अवनत और रसादि में भी अवनत होते हैं । इसी तरह चार प्रकार के पुरुष कहे गए हैं, यथा–द्रव्य से भी उन्नत और गुण-परिणमन से भी उन्नत । इत्यादि चार भंग ।

चार प्रकार के वृक्ष कहे गए हैं, कितनेक ऊंचाई में भी ऊंचे और रूप में भी उन्नत । इत्यादि चार भंग । इसी प्रकार चार प्रकार के पुरुष कहे गए हैं, यथा–कितनेक द्रव्यादि से उन्नत होते हुए रूप से भी उन्नत हैं । इत्यादि चार भंग । चार प्रकार के पुरुष कहे गए हैं, यथा–द्रव्यादि से उन्नत होते हुए उन्नत मन वाले यावत्–चार भंग । इसी प्रकार संकल्प प्रज्ञा, दृष्टि, शीलाचार, व्यवहार, पराक्रम, सब के चार भंग समझ लेने चाहिए । इन मन सूत्रों में पुरुष सूत्र ही समझने चाहिए, वृक्ष सूत्र नहीं ।

चार प्रकार के वृक्ष कहे गए हैं, यथा–कितनेक वृक्ष कहे आकृति से भी सरल और फलादि देने में भी सरल, कितनेक आकृति में सरल और फलादि देने में वक्र । इस प्रकार चार भंग । इसी प्रकार चार प्रकार के पुरुष कहे गए हैं, यथा–आकृति से भी सरल और हृदय से भी सरल । इसी प्रकार उन्नत प्रणत के चार भंग और ऋजुवक्र के चार भंग भी कहने चाहिए । पराक्रम तक सब भंग जान लेने चाहिए ।

**सूत्र - २५१**

प्रतिमाधारी अनगार को चार भाषाएं बोलना कल्पता है, यथा–याचनी, प्रच्छनी, अनुज्ञापनी, प्रश्नव्याकरणी

**सूत्र - २५२**

चार प्रकार की भाषाएं कही गई हैं, यथा–सत्यभा, मृषा, सत्य-मृषा और असत्यमृषा-व्यवहार भाषा ।

**सूत्र - २५३**

चार प्रकार के वस्त्र कहे गए हैं, यथा–शुद्ध तन्तु आदि से बुना हुआ भी है और बाह्य मेल से रहित भी है । शुद्ध बुना हुआ तो है परन्तु मलिन है, शुद्ध बुना हुआ नहीं परन्तु स्वच्छ है । शुद्ध बुना हुआ भी नहीं है और स्वच्छ भी नहीं है इसी प्रकार चार प्रकार के पुरुष कहे गए हैं, यथा–जाति आदि से शुद्ध और ज्ञानादी गुण से भी शुद्ध । इत्यादि चार भंग इसी तरह परिणत और रूप से भी वस्त्र की चौभंगी और पुरुष की चौभंगी समझ लेनी चाहिए ।

चार प्रकार के पुरुष कहे गए हैं, यथा–जात्यादि से शुद्ध और मन से भी शुद्ध । इत्यादि चार भंग । इसी तरह संकल्प यावत्–पराक्रम से भी चार भंग जानने चाहिए ।

**सूत्र - २५४**

चार प्रकार के पुत्र कहे गए हैं, अतिजात 'अपने पिता से भी बढ़ा चढ़ा हुआ', अनुजात 'पिता के समान', अवजात 'पिता से कम गुण वाला, कुलांगार' कुल में कलंक लगाने वाला ।

**सूत्र - २५५**

चार प्रकार के पुरुष कहे गए हैं, यथा–कितने द्रव्य से भी सत्य और भाव से भी सत्य होते हैं । कितने द्रव्य से सत्य और भाव से असत्य होते हैं । इत्यादि चार भंग । इसी तरह परिणत यावत्–पराक्रम से चार भंग जानने चाहिए ।

चार प्रकार के वस्त्र कहे गए हैं, यथा–कितनेक स्वभाव से भी पवित्र और संस्कार से भी पवित्र, कितनेक स्वभाव से पवित्र परन्तु संस्कार से अपवित्र इत्यादि चार भंग । इसी तरह चार प्रकार के पुरुष कहे गए हैं, यथा–शरीर से भी पवित्र और स्वभाव से भी पवित्र । इत्यादि चार भंग । शुद्ध वस्त्र के चार भंग पहले कहे हैं उसी प्रकार शुचिवस्त्र के भी चार भंग समझने चाहिए ।

**सूत्र - २५६**

चार प्रकार के कोर कहे गए हैं, यथा–आम्रफल के कोर, ताड़ के फल के कोर, वल्लीफल के कोर, मेंढ़े के सिंग के समान फल वाली वनस्पति के कोर । इसी प्रकार चार प्रकार के पुरुष कहे गए हैं, यथा–आम्रफल के कोर के समान, तालफल के कोर के समान, वल्ली फल के कोर के समान, मेंढ़े के विषाण के तुल्य वनस्पति के कोर के समान

**सूत्र - २५७**

चार प्रकार के धुन कहे गए हैं, यथा–लकड़ी के बाहर की त्वचा को खाने वाले, छाल खाने वाले, लकड़ी खाने वाले, लकड़ी का सारभाग खाने वाले । इसी प्रकार चार प्रकार के भिक्षु कहे गए हैं, यथा–त्वचा खाने वाले, धुन के समान यावत्–सार खाने वाले धुन के समान । त्वचा खाने वाले धुन के जैसे भिक्षु का तप सार खाने वाले धुन के जैसा है । छाल खाने वाले धुन के जैसे भिक्षु का तप काष्ठ खाने वाले धुन के जैसा है । काष्ठ खाने वाले धुन के जैसे भिक्षु का तप छाल खाने वाले धुन के जैसा है । सार खाने वाले धुन के जैसा भिक्षु का तप त्वचा खाने वाले धुन के जैसा है ।

**सूत्र - २५८**

तृण वनस्पतिकायिक चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–अग्रबीज, मूलबीज, पर्वबीज और स्कंधबीज ।

**सूत्र - २५९**

चार कारणों से नरक में नवीन उत्पन्न नैरयिक मनुष्य लोक में शीघ्र आने की ईच्छा करता है परन्तु आने में समर्थ नहीं होता है, यथा–नरकलोक में नवीन उत्पन्न हुआ नैरयिक वहाँ होने वाली प्रबल वेदना का अनुभव करता हुआ मनुष्यलोक शीघ्र आने की ईच्छा करता है किन्तु शीघ्र आने में समर्थ नहीं होता है, नरकपालों के द्वारा पुनः पुनः आक्रान्त होने पर मनुष्यलोक में जल्दी आने की ईच्छा करता है परन्तु आने में समर्थ नहीं होता है, नरक-वेदनीय कर्म

के क्षीण न होने से, वेदना के वेदित न होने से, निर्जरित न होने से ईच्छा करने पर भी मनुष्यलोक में आने में समर्थ नहीं होता है, इसी तरह नरकायुकर्म के क्षीण न होने से यावत्–आने में समर्थ नहीं होता है ।

**सूत्र - २६०**

साध्वी को चार साड़ियाँ धारण करने और पहनने के लिए कल्पती है, यथा–एक दो हाथ विस्तार वाली, दो तीन हाथ विस्तार वाली, एक चार हाथ विस्तार वाली ।

**सूत्र - २६१**

ध्यान चार प्रकार का है–आर्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्मध्यान, शुक्लध्यान ।

आर्तध्यान चार प्रकार का कहा गया है, यथा–अमनोज्ञ 'अनिष्ट' वस्तु की प्राप्ति होने पर उसे दूर करने की चिन्ता करना । मनोज्ञ वस्तु की प्राप्ति होने पर वह दूर न हो उसकी चिन्ता करना । बीमारी होने पर उसे दूर करने की चिन्ता करना । सेवित कामभोगों से युक्त होने पर उनके चले न जाने की चिन्ता करना । आर्तध्यान के चार लक्षण हैं, यथा–आक्रन्दन करना, शोक करना, आँसू गिराना, विलाप करना ।

रौद्रध्यान चार प्रकार का है–हिंसानुबन्धी, मृषानुबन्धी, स्तेयानुबन्धी, संरक्षणानुबन्धी । रौद्रध्यान के चार लक्षण कहे गए हैं, यथा–हिंसाद दोषों में से किसी एक में अत्यन्त प्रवृत्ति करना, हिंसादि सब दोषों में बहुविध प्रवृत्ति करना, हिंसादि अधर्मकार्य में धर्म-बुद्धि से या अभ्युदय के लिए प्रवृत्ति करना, मरण पर्यन्त हिंसादि कृत्यों के लिए पश्चात्ताप न होना आमरणान्त दोष है ।

चार प्रकार का धर्मध्यान स्वरूप, लक्षण, आलम्बन एवं अनुप्रेक्षा रूप चार पदों से चिन्तनीय है आज्ञा-विचय, अपायविचय, विपाकविचय, संस्थानविचय । धर्मध्यान के चार लक्षण कहे गए हैं, यथा–आज्ञारुचि, निसर्ग रुचि, सूत्ररुचि, अवगाढरुचि । धर्मध्यान के चार आलम्बन कहे गए हैं, यथा–वाचना, पृच्छना, परिवर्तना और अनुप्रेक्षा । धर्मध्यान की चार भावनाएं कही गई हैं, यथा–एकत्वानुप्रेक्षा, अनित्यानुप्रेक्षा, अशरणानुप्रेक्षा, संसारा-नुप्रेक्षा ।

शुक्लध्यान चार प्रकार का कहा गया है, यथा–पृथक्त्ववितर्क सविचारी, एकत्ववितर्क अविचारी, सूक्ष्म क्रिया अनिवृत्ति, समुच्छिन्नक्रिया अप्रतिपाती । शुक्लध्यान के चार लक्षण कहे गए हैं, यथा–अव्यथ, असम्मोह, विवेक, व्युत्सर्ग । शुक्लध्यान के चार आलम्बन हैं, यथा–क्षमा, निर्ममत्व, मृदुता और सरलता । शुक्लध्यान की चार भावनाएं कही गई हैं यथा–अनन्तवर्तितानुप्रेक्षा, विपरिणामानुप्रेक्षा, अशुभानुप्रेक्षा, अपायानुप्रेक्षा ।

**सूत्र - २६२**

देवों की स्थिति चार प्रकार की है, यथा–कोई सामान्य देव है, कोई देवों में स्नातक (प्रधान) है, कोई देव पुरोहित है, कोई स्तुति-पाठक है । चार प्रकार का संवास कहा गया है, यथा–कोई देव देवी के साथ संवास करता है, कोई देव मानुषी नारी या तिर्यंच स्त्री के साथ संवास करता है, कोई मनुष्य या तिर्यंच पुरुष देवी के साथ संवास करता है, कोई मनुष्य या तिर्यंच पुरुष मानुषी या तिर्यंची के साथ संवास करता है ।

**सूत्र - २६३**

चार कषाय कहे गए हैं, यथा–क्रोधकषाय, मानकषाय, मायाकषाय और लोभकषाय । ये चारों कषाय नारक यावत्–वैमानिकों मे पाए जाते हैं । क्रोध के चार आधार कहे गए हैं, यथा–आत्मप्रतिष्ठित, परप्रतिष्ठित, तदुभय प्रतिष्ठित, अप्रतिष्ठित । ये क्रोध के चार आधार नैरयिक यावत्–वैमानिक पर्यन्त सब में पाए जाते हैं ।

इसी प्रकार यावत्–लोभ के भी चार आधार हैं । मान, माया और लोभ के चार आधार वैमानिक पर्यन्त सब दण्डकों में पाए जाते हैं ।

चार कारणों से क्रोध की उत्पत्ति होती है, यथा–क्षेत्र के निमित्त से, वस्तु के निमित्त से, शरीर के निमित्त से, उपधि के निमित्त से । इस प्रकार नारक यावत्–वैमानिक में जानना चाहिए । इसी प्रकार यावत्–लोभ की उत्पत्ति भी चार प्रकार से होती है । यह मान, माया और लोभ की उत्पत्ति नारक-जीवों से लेकर वैमानिक पर्यन्त सब में होती है ।

चार प्रकार का क्रोध कहा गया है, यथा–अनन्तानुबन्धी क्रोध, अप्रत्याख्यान क्रोध, प्रत्याख्यानावरण क्रोध,

संज्वलन क्रोध । यह चारों प्रकार का क्रोध नारक यावत्-वैमानिकों में इसी तरह यावत्-लोभ भी वैमानिक पर्यन्त है । चार प्रकार का क्रोध कहा गया है, यथा-आभोगनिवर्तित, अनाभोगनिवर्तित, उपशान्तक्रोध, अनुपशान्त क्रोध । यह चारों प्रकार का क्रोध नैरयिक यावत्-वैमानिकों में होता है ।

इसी तरह यावत्-चार प्रकार का लोभ यावत्-वैमानिक में पाया जाता है ।

**सूत्र - २६४**

चार कारणों से जीवों ने आठ कर्म-प्रकृतियों का चयन किया है, यथा-क्रोध से, मान से, माया से और लोभ से इसी प्रकार वैमानिकों तक समझ लेना चाहिए । इसी प्रकार 'ग्रहण करते हैं' यह दण्डक भी जान लेना चाहिए। इसी प्रकार 'ग्रहण करेंगे' यह दण्डक भी समझ लेना चाहिए । इसी प्रकार चयन के तीन दण्डक हुए ।

इसी प्रकार उपचय किया, करते हैं और करेंगे । बन्ध किया, करते हैं और करेंगे । उदीरणा की, करते हैं और करेंगे । वेदन किया, करते हैं और करेंगे । निर्जरा की, करते हैं और करेंगे । यों वैमानिक पर्यन्त चौबीस दण्डक में 'उपचय यावत्-निर्जरा करेंगे' तीन-तीन दण्डक समझ लेने चाहिए ।

**सूत्र - २६५**

चार प्रकार की प्रतिमाएं कही गई हैं, यथा-समाधिप्रतिमा, उपधानप्रतिमा, विवेकप्रतिमा, व्युत्सर्गप्रतिमा । चार प्रकार की प्रतिमाएं कही गई हैं, यथा-भद्रा, सुभद्रा, महाभद्रा और सर्वतोभद्रा । चार प्रकार की प्रतिमाएं कही गई हैं, यथा-क्षुद्रामोकप्रतिमा, महतीमोकप्रतिमा, यवमध्याप्रतिमा, वज्रमध्याप्रतिमा ।

**सूत्र - २६६**

चार अजीव अस्तिकाय कहे हैं, यथा-धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्‌गलास्तिकाय ।

चार अरूपी अस्तिकाय कहे गए हैं, यथा-धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय

**सूत्र - २६७**

चार प्रकार के फल कहे गए हैं, यथा-कोई कच्चा होने पर भी थोड़ा मीठा होता हैं, कोई कच्चा होने पर भी अधिक मीठा होता है, कोई पक्का होने पर भी थोड़ा मीठा होता है, कोई पक्का होने पर ही अधिक मीठा होता है । इसी प्रकार चार प्रकार के पुरुष कहे गए हैं, यथा-श्रुत और वय से अल्प होते हुए भी थोड़े मीठे फल के समान अल्प उपशमादि गुण वाले होते हैं ।

**सूत्र - २६८**

चार प्रकार के सत्य कहे हैं, यथा-काया की सरलतारूप सत्य, भाषा की सरलतारूप सत्य, भावों की सरलतारूप सत्य, अविसंवाद योगरूप सत्य । चार प्रकार का मृषावाद कहा है, काया की वक्रतारूप मृषावाद, भाषा वक्रतारूप मृषावाद, भावों की वक्रतारूप मृषावाद, विसंवाद योगरूप मृषावाद ।

चार प्रकार के प्रणिधान हैं, मन-प्रणिधान, वचन-प्रणिधान, काय-प्रणिधान, उपकरण-प्रणिधान । ये चारों नारक यावत्-वैमानिक पर्यन्त पंचेन्द्रिय दण्डकों में जानना । चार प्रकार के सुप्रणिधान हैं, यथा-मन-सुप्रणिधान यावत् उपकरण-सुप्रणिधान । यह संयत मनुष्यों में ही पाए जाते हैं । चार प्रकार के दुष्प्रणिधान हैं, यथा-मन-दुष्प्रणिधान यावत्-उपकरण-दुष्प्रणिधान । यह पंचेन्द्रियों को यावत्-वैमानिकों को होता है ।

**सूत्र - २६९**

चार प्रकार के पुरुष कहे गए हैं, यथा-कोई प्रथम मिलन में वार्तालाप से भद्र लगते हैं, परन्तु सहवास से अभद्र मालूम होते हैं, कोई सहवास से भद्र मालूम होते हैं पर प्रथम मिलन में अभद्र लगते हैं, कोई प्रथम मिलन में भी भद्र होते हैं और सहवास से भी भद्र मालूम होते हैं, कोई प्रथम मिलन में भी भद्र नहीं लगते और सहवास से भी भद्र मालूम नहीं होते ।

चार प्रकार के पुरुष कहे गए हैं, कोई अपने दोष देखता है, दूसरों के नहीं, कोई दूसरों के दोष देखता है, अपने नहीं । इस प्रकार चौभंगी जाननी चाहिए ।

चार प्रकार के पुरुष कहे गए हैं । कोई अपने पाप की उदीरणा करता है किन्तु दूसरे के पाप की उदीरणा नहीं करता । इस प्रकार चार भंग जानना ।

चार प्रकार के पुरुष कहे गए हैं, यथा–कोई अपने पाप को शांत करता है, दूसरों के पाप को शान्त नहीं करता इसी तरह चौभंगी जानना ।

चार प्रकार के पुरुष हैं, कोई स्वयं तो अभ्युत्थान आदि से दूसरों का सम्मान करते हैं परन्तु दूसरों के अभ्यु-त्थान से अपना सम्मान नहीं कराते हैं । इत्यादि–चौभंगी । इसी तरह कोई स्वयं वन्दन करता है किन्तु दूसरों से वन्दन नहीं कराता है । इसी तरह सत्कार, सम्मान, पूजा, वाचना, सूत्रार्थ ग्रहण करना, सूत्रार्थ पूछना, प्रश्न का उत्तर देना, आदि जानें ।

चार प्रकार के पुरुष कहे गए हैं, यथा–कोई सूत्रधर होता है अर्थधर नहीं होता, कोई अर्थधर होता है, सूत्रधर नहीं होता । कोई सूत्रधर भी होता है और अर्थधर भी होता है, कोई सूत्रधर भी नहीं होता और अर्थधर भी नहीं होता ।

**सूत्र - २७०**

असुरेन्द्र, असुरकुमार-राज चमर के चार लोकपाल कहे गए हैं, यथा–सोम, यम, वरुण और वैश्रमण । इसी तरह बलीन्द्र के भी सोम, यम, वैश्रमण और वरुण चार लोकपाल हैं । धरणेन्द्र के कालपाल, कोलपाल, शैलपाल और शंखपाल । इसी तरह भूतानन्द के कालपाल, कोलपाल, शंखपाल और शैलपाल नामक चार लोकपाल हैं । वेणुदेव के चित्र, विचित्र, चित्रपक्ष और विचित्रपक्ष । वेणुदाली के चित्र, विचित्र, विचित्रपक्ष और चित्रपक्ष । हरिकांत के प्रभ, सुप्रभ, प्रभाकान्त और सुप्रभाकान्त । हरिस्सह के प्रभ, सुप्रभ, सुप्रभाकान्त और प्रभाकान्त । अग्निशिख के तेज, तेजशिख, तेजस्कान्त और तेजप्रभ । अग्निमानव के तेज, तेजशिख, तेजप्रभ और तेजस्कान्त । पूर्णइन्द्र के रूप, रूपांश, रूपकान्त और रूपप्रभ । विशिष्ट इन्द्र के रूप, रूपांश, रूपप्रभ और रूपकान्त । जलकान्त इन्द्र के जल, जलरत, जलकान्त और जलप्रभ । जलप्रभ के जल, जलरत, जलप्रभ और जलकान्त । अमितगत के त्वरितगति, क्षिप्रगति, सिंहगति और विक्रमगति । अमितवाहन के त्वरितगति, क्षिप्रगति, विक्रमगति और सिंहगति। वेलम्ब के काल, महाकाल, रिष्ट और अंजन । घोष के आवर्त, व्यावर्त, नंद्यावर्त और महानंद्यावर्त । महाघोष के आवर्त, व्यावर्त, महानंद्यावर्त और नंद्यावर्त । शक्र के सोम, यम, वरुण और वैश्रमण । ईशानेन्द्र के सोम, यम, वैश्रमण और वरुण ।

इस प्रकार एक के अन्तर से अच्युतेन्द्र तक चार-चार लोकपाल समझने चाहिए । वायुकुमार के लोकपाल चार प्रकार के हैं, यथा–काल, महाकाल, वेलम्ब और प्रभंजन ।

**सूत्र - २७१**

चार प्रकार के देव हैं, भवनवासी, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क, विमानवासी ।

**सूत्र - २७२**

चार प्रकार के प्रमाण हैं, द्रव्यप्रमाण, क्षेत्रप्रमाण, कालप्रमाण, भावप्रमाण ।

**सूत्र - २७३**

चार प्रकार की दिक्कुमारियाँ कही गई हैं–रूप, रूपांशा, सुरूपा और रूपावती । चार प्रधान विद्युत्-कुमारियाँ कही गई हैं, यथा–चित्रा, चित्रकनका, शतेरा और सौदामिनी ।

**सूत्र - २७४**

देवेन्द्र, देवराज शक्र की मध्यपरीषद् के देवों की चार पल्योपम की स्थिति कही गई है ।

देवेन्द्र देवराज ईशान की मध्यमपरीषद् की देवियों की चार पल्योपम की स्थिति कही गई है ।

**सूत्र - २७५**

संसार चार प्रकार का है, द्रव्यसंसार, क्षेत्रसंसार, कालसंसार, भावसंसार ।

**सूत्र - २७६**

चार प्रकार का दृष्टिवाद है, परिक्रम, सूत्र, पूर्वगत, अनुयोग ।

**सूत्र - २७७**

चार प्रकार के प्रायश्चित्त कहे गए हैं, यथा–ज्ञानप्रायश्चित्त, दर्शनप्रायश्चित्त, चारित्रप्रायश्चित्त, व्यक्तकृत्य-प्रायश्चित्त । चार प्रकार के प्रायश्चित्त कहे गए हैं, यथा–परिसेवना प्रायश्चित्त, संयोजना प्रायश्चित्त, आरोपण प्रायश्चित्त और परिकुंचन प्रायश्चित्त ।

**सूत्र - २७८**

चार प्रकार का काल कहा गया है, यथा–प्रमाणकाल, यथायुर्निवृत्तिकाल, मरणकाल, अद्धाकाल ।

**सूत्र - २७९**

पुद्‌गलों का चार प्रकार का परिणमन कहा है, यथा–वर्णपरिणाम, गंधपरिणाम, रसपरिणाम, स्पर्श-परिणाम ।

**सूत्र - २८०**

भरत और ऐरवत क्षेत्र में प्रथम और अन्तिम तीर्थंकर को छोड़कर मध्य के बाईस अर्हन्त भगवान चातुर्याम धर्म की प्ररूपणा करते हैं, यथा–सब प्रकार की हिंसा से निवृत्त होना, सब प्रकार के झूठ से निवृत्त होना, सब प्रकार के अदत्तादान से निवृत्त होना, सब प्रकार के बाह्य पदार्थों के आदान से निवृत्त होना ।

सब महाविदेहों में अर्हन्त भगवान चातुर्याम धर्म का प्ररूपण करते हैं, यथा–सब प्रकार के प्राणातिपात से यावत्–सब प्रकार के बाह्य पदार्थों के आदान से निवृत्त होना ।

**सूत्र - २८१**

चार प्रकार की दुर्गतियाँ कही गई हैं, यथा–नैरयिकदुर्गति, तिर्यंचयोनिक दुर्गति, मनुष्यदुर्गति, देवदुर्गति । चार प्रकार की सुगतियाँ कही गई हैं, यथा–सिद्ध सुगति, देव सुगति, मनुष्य सुगति, श्रेष्ठ कुल में जन्म ।

चार दुर्गतिप्राप्त कहे गए हैं, यथा–नैरयिक दुर्गतिप्राप्त, तिर्यंचयोनिक दुर्गतिप्राप्त, मनुष्य दुर्गतिप्राप्त, देव दुर्गतिप्राप्त । चार सुगतिप्राप्त कहे गए हैं, यथा–सिद्ध सुगति प्राप्त यावत्–श्रेष्ठ कुल में जन्म प्राप्त ।

**सूत्र - २८२**

प्रथम समय जिन के चार कर्म-प्रकृतियाँ क्षीण होती हैं, यथा–ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अंतराय । केवल ज्ञान-दर्शन जिन्हें उत्पन्न हुआ है, ऐसे अर्हन्, जिन केवल चार कर्मप्रकृतियों का वेदन करते हैं, यथा–वेदनीय, आयुष्य, नाम और गोत्र ।

प्रथम समय सिद्ध के चार कर्मप्रकृतियाँ एक साथ क्षीण होती हैं, यथा–वेदनीय, आयुष्य, नाम और गोत्र ।

**सूत्र - २८३**

चार कारणों से हास्य की उत्पत्ति होती है, यथा–देखकर, बोलकर, सूनकर और स्मरण कर ।

**सूत्र - २८४**

चार प्रकार के अन्तर कहे गए हैं, यथा–काष्ठान्तर, पक्ष्मान्तर, लोहान्तर, प्रस्तरान्तर । इसी तरह स्त्री-स्त्री में और पुरुष-पुरुष में भी चार प्रकार का अन्तर कहा गया है, काष्ठान्तर के समान, पक्ष्मान्तर के समान, लोहान्तर के समान, प्रस्तरान्तर के समान ।

**सूत्र - २८५**

चार प्रकार के कर्मकर कहे गए हैं, यथा–दिवसभृतक, यात्राभृतक, उच्चताभृतक, कब्बाडभृतक ।

**सूत्र - २८६**

चार प्रकार के पुरुष कहे गए हैं, यथा–कितनेक प्रकट रूप से दोष का सेवन करते हैं किन्तु गुप्त रूप से नहीं, कितनेक गुप्त रूप से दोष का सेवन करते हैं किन्तु प्रकट रूप से नहीं, कितनेक प्रकट रूप से भी और गुप्त रूप से भी दोष सेवन करते हैं, कितनेक न तो प्रकट रूप से और न गुप्त रूप में दोष का सेवन करते हैं ।

**सूत्र - २८७**

असुरेन्द्र असुरकुमारराज चमर के सोम महाराजा (लोकपाल) की चार अग्रमहिषियाँ कही गई हैं, यथा–

कनका, कनकलता, चित्रगुप्त और वसुंधरा । इसी तरह-यम, वरुण और वैश्रमण के भी इसी नाम की चार-चार अग्रमहिषियाँ हैं । वेरोचनेन्द्र वैरोचनराज बलि के सोम लोकपाल की चार अग्रमहिषियाँ हैं, यथा-मित्रता, सुभद्रा, विद्युता और अशनी । इसी तरह यम, वैश्रमण और वरुण की भी अग्रमहिषियाँ इन्हीं नाम वाली हैं । नागकुमारेन्द्र, नागकुमार-राज धरण के कालवाल, लोकपाल की चार अग्रमहिषियाँ हैं, यथा-अशोका, विमला, सुप्रभा और सुदर्शना इसी प्रकार यावत्-शंखवाल की अग्रमहिषियाँ हैं ।

नागकुमारेन्द्र, नागकुमार-राज भूतानन्द के कालवाल लोकपाल की चार अग्रमहिषियाँ हैं, यथा-सुनन्दा, सुभद्रा, सुजाता और सुमना । इसी प्रकार यावत्-शैलपाल की अग्रमहिषियाँ समझनी चाहिए । जिस प्रकार धरणेन्द्र के लोकपालों का कथन किया उसी प्रकार सब दाक्षिणात्य-यावत्-घोष नामक इन्द्र के लोकपालों की अग्रमहिषियाँ जाननी चाहिए । जिस प्रकार भूतानन्द का कथन किया उसी प्रकार उत्तर के सब इन्द्र यावत्-महाघोष इन्द्र के लोकपालों की अग्रमहिषियाँ समझनी चाहिए ।

पिशाचेन्द्र पिशाचराज काल की चार अग्रमहिषियाँ हैं, यथा-कमला, कमलप्रभा, उत्पला और सुदर्शना । इसी तरह महाकाल की भी । भूतेन्द्र भूतराज सुरूप के भी चार अग्रमहिषियाँ हैं, यथा-रूपवती, बहुरूपा, सुरूपा और सुभगा । इसी तरह प्रतिरूप के भी । यक्षेन्द्र यक्षराज पूर्णभद्र के चार अग्रमहिषियाँ हैं, यथा-पुत्रा, बहुपुत्रा, उत्तमा और तारका । इस प्रकार यक्षेन्द्र मणिभद्र की चार अग्रमहिषियों के नाम भी ये ही हैं । राक्षसेन्द्र, राक्षसराज भीम की अग्रमहिषियाँ चार हैं, उनके नाम ये हैं-पद्मा, वसुमती, कनका और रत्नप्रभा । इसी प्रकार राक्षसेन्द्र महाभीम की चार अग्रमहिषियों के नाम भी ये ही हैं ।

किन्नरेन्द्र किन्नर की अग्रमहिषियाँ चार हैं, उनके नाम ये हैं-१. वडिंसा, २. केतुमती, ३. रतिसेना, और ४. रतिप्रभा । किन्नरेन्द्र किंपुरुष की चार अग्रमहिषियों के नाम भी ये ही हैं । किंपुरुषेन्द्र सत्पुरुष की अग्रमहिषियाँ चार हैं-रोहिणी, नवमिता, ह्री और पुष्पवती । पुरुषेन्द्र महापुरुष की चार अग्रमहिषियों के नाम भी ये ही हैं । महो-रगेन्द्र अतिकाय की अग्रमहिषियाँ चार हैं-१. भुजगा, २. भुजगवती, ३. महाकच्छा और ४. स्फुटा । महोरगेन्द्र महाकाय की चार अग्रमहिषियों के नाम भी ये ही हैं । गंधर्वेन्द्र गीतरति की अग्रमहिषियाँ चार हैं । सुघोषा, विमला, सुसरा और सरस्वती । गंधर्वेन्द्र गीतयश की चार अग्रमहिषियों के नाम भी ये ही हैं । ज्योतिष्केन्द्र, ज्योतिष्कराज चन्द्र की अग्रमहिषियाँ चार हैं । चन्द्रप्रभा, ज्योत्स्नाभा, अर्चिमाली और प्रभंकरा । इसी प्रकार सूर्य की चार अग्र-महिषियों में प्रथम अग्रमहिषी का नाम सूर्यप्रभा और शेष तीन के नाम चन्द्र के समान है । इंगाल महाग्रह की अग्र-महिषियाँ चार हैं । विजया, वैजयंती, जयंती और अपराजिता । सभी महाग्रहों की यावत्-भावकेतु की चार-चार अग्रमहिषियों के नाम भी ये ही हैं ।

शक्र देवेन्द्र देवराज के सोम (लोकपाल) महाराज की अग्रमहिषियाँ चार हैं । उनके नाम ये हैं-रोहिणी, मदना, चित्रा और सोमा । शेष लोकपालों की यावत् वैश्रमण की चार-चार अग्रमहिषियों के नाम भी ये ही हैं । ईशानेन्द्र देवेन्द्र देवराज के सोम (लोकपाल) महाराज की अग्रमहिषियाँ चार हैं । उनके नाम ये हैं-पृथ्वी, राजी, रतनी और विद्युत् । शेष लोकपालों की यावत्-वरुण की चार-चार अग्रमहिषियों के नाम भी ये ही हैं ।

**सूत्र - २८८**

गोरस विकृतियाँ चार हैं । उनके नाम ये हैं-१. दूध, २. दधि, ३. घृत और ४. नवनीत । स्निग्ध विकृतियाँ चार हैं उनके नाम ये हैं-तैल, घृत, चर्बी और नवनीत । महाविकृतियाँ चार हैं । उनके नाम ये हैं-मधु, मांस, मद्य और नवनीत

**सूत्र - २८९**

कूटागार गृह चार प्रकार के हैं-गुप्त प्राकार से आवृत्त और गुप्त द्वार वाला, गुप्त-प्राकार से आवृत्त किन्तु अगुप्त द्वार वाला, अगुप्त-प्राकार रहित किन्तु गुप्त द्वार वाला है । अगुप्त-प्राकार रहित है और अगुप्त द्वार वाला है। इसी प्रकार पुरुष वर्ग भी चार प्रकार का है । एक पुरुष गुप्त (वस्त्रावृत) है और गुप्तेन्द्रिय भी है । एक पुरुष गुप्त है किन्तु अगुप्तेन्द्रिय है । एक पुरुष अगुप्त है किन्तु गुप्तेन्द्रिय है । और एक पुरुष अगुप्त भी है और अगुप्तेन्द्रिय भी है ।

कूटागारशाला चार प्रकार की है । वे इस प्रकार है–गुप्त है और गुप्त द्वारवाली है । गुप्त है किन्तु गुप्त द्वार वाली नहीं है । अगुप्त है किन्तु गुप्त द्वारवाली है । अगुप्त भी है और गुप्त द्वारवाली भी नहीं है । इसी प्रकार स्त्री समुदाय चार प्रकार का है । एक गुप्ता है–वस्त्रावृता है और गुप्तेन्द्रिया है । एक गुप्ता है–वस्त्रावृता है किन्तु गुप्तेन्द्रिया नहीं है । एक अगुप्ता है–वस्त्रादि से अनावृत है किन्तु गुप्तेन्द्रिया है । एक अगुप्ता भी है और अगुप्तेन्द्रिया भी है ।

**सूत्र - २९०**

अवगाहना (शरीर का प्रमाण) चार प्रकार की हैं, यह इस प्रकार की हैं–

द्रव्यावगाहना-अनंतद्रव्ययुता, क्षेत्रावगाहना-असंख्यप्रदेशागाढ़ा, कालावगाहना-असंख्यसमय-स्थितिका, भावावगाहना-वर्णादिअनंतगुणयुता ।

**सूत्र - २९१**

चार प्रज्ञप्तियाँ अङ्गबाह्य हैं । उनके नाम ये हैं–चंद्रप्रज्ञप्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, द्वीपसारणप्रज्ञप्ति

## स्थान-४ – उद्देशक-२

**सूत्र - २९२**

प्रतिसंलीन पुरुष चार प्रकार के हैं । क्रोधप्रतिसंलीत-क्रोध का निरोध करने वाला । मानप्रतिसंलीत-मान का निरोध करने वाला । मायाप्रतिसंलीत-माया का निरोध करने वाला । लोभप्रतिसंलीत-लोभ का निरोध करने वाला ।

अप्रतिसंलीन (कषाय का निरोध न करने वाला) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं । क्रोध अप्रतिसंलीन, मान अप्रतिसंलीन, माया अप्रतिसंलीन और लोभ अप्रतिसंलीन ।

प्रतिसंलीन (प्रशस्त प्रवृत्तियों में प्रवृत्त और अप्रशस्त प्रवृत्तियों से निवृत्त) पुरुष वर्ग चार प्रकार का है । मन प्रतिसंलीन, वचन प्रतिसंलीन, काय प्रतिसंलीन और इन्द्रिय प्रतिसंलीन ।

अप्रतिसंलीन (अप्रशस्त कार्यों में प्रवृत्त और प्रशस्त कार्यों से उदासीन) पुरुष वर्ग चार प्रकार का है । मन अप्रतिसंलीन, वचन अप्रतिसंलीन, काय अप्रतिसंलीन और इन्द्रिय अप्रतिसंलीन ।

**सूत्र - २९३**

पुरुष वर्ग चार प्रकार का है । एक पुरुष दीन है (धनहीन है) और दीन है (हीनमना है) । एक पुरुष दीन है (धनहीन है) किन्तु अदीन है (महामना है) । एक पुरुष अदीन है (धनी है) किन्तु दीन है (हीनमना है) । एक पुरुष अदीन है (धनी है) और अदीन (महामना भी है) । पुरुष वर्ग चार प्रकार का है । पुरुष दीन है (प्रारम्भिक जीवन में भी निर्धन है) और दीन है (अंतिम जीवन में भी निर्धन है) । एक पुरुष दीन है (प्रारम्भिक जीवन में निर्धन है) किन्तु अदीन भी है (अंतिम जीवन में धनी हो जाता है) । एक पुरुष अदीन है (प्रारम्भिक जीवन में धनी है) किन्तु दीन भी है (अन्तिम जीवन में निर्धन हो जाता है) । एक पुरुष अदीन है (प्रारम्भिक जीवन में भी धनी है) और अदीन है (अन्तिम जीवन में भी धनी ही रहता है) ।

पुरुष वर्ग चार प्रकार का है । एक पुरुष दीन है (शरीर से कृश है) और दीन परिणति वाला है (कायर है) । एक पुरुष दीन है (शरीर से कृश है) किन्तु अदीन परिणति वाला है (शूरवीर है) । एक पुरुष अदीन है (हृष्ट-पुष्ट है) किन्तु दीन परिणतिवाला है (कायर है) । एक पुरुष अदीन भी (हृष्ट-पुष्ट है) और अदीन परिणीत वाला भी है (शूरवीर भी है) ।

पुरुष वर्ग चार प्रकार का है । एक पुरुष दीन है (शरीर से कृश है) और दीन रूप भी है (मलिन वस्त्र वाला है) । एक पुरुष दीन है (शरीर से कृश है) किन्तु अदीन रूप है (वस्त्र आदि से सुसज्जित है) । एक पुरुष अदीन है (शरीर से हृष्ट-पुष्ट है) किन्तु दीन रूप है (मलिन वस्त्र वाला है) । एक पुरुष अदीन है (शरीर से हृष्ट-पुष्ट है) और अदीन रूप भी है (वस्त्र आदि से सुसज्जित है) । इसी प्रकार दीनमन, दीनसंकल्प, दीनप्रज्ञा, दीनदृष्टि, दीनशीला-चार, दीनव्यवहार, दीनपराक्रम, दीनवृत्ति, दीन जाति, दीनभासी, दीनावभासी, दीनसेवी और दीनपरिवारी के चार-चार भंग जानें ।

**सूत्र - २९४**

पुरुष वर्ग चार प्रकार का है । एक पुरुष आर्य है (क्षेत्र से आर्य) और आर्य है (आचरण से भी आर्य है) । एक

पुरुष आर्य है (क्षेत्र से आर्य है) किन्तु अनार्य भी है (पापाचरण से अनार्य है) । एक पुरुष अनार्य है (क्षेत्र से अनार्य है) किन्तु आर्य भी है (आचरण से आर्य है), एक पुरुष अनार्य है (क्षेत्र से अनार्य है) और अनार्य है (आचरण से भी अनार्य है) । इसी प्रकार आर्यपरिणति, आर्यरूप, आर्यमन, आर्यसंकल्प, आर्यप्रज्ञा, आर्यदृष्टि, आर्यशीलाचार आर्यव्यवहार, आर्यपराक्रम, आर्यवृत्ति, आर्यजाति, आर्यभाषी, आर्याविभासी, आर्यसेवी, आर्यपर्याय, आर्यपरिवार और आर्यभाव वाले पुरुष के चार-चार भंग जानें ।

**सूत्र - २९५**

वृषभ चार प्रकार के हैं । जातिसंपन्न, कुलसंपन्न, बलसंपन्न और रूपसंपन्न हैं । पुरुषवर्ग भी चार प्रकार का है जातिसंपन्न यावत्-रूपसंपन्न ।

वृषभ चार प्रकार के हैं । १. एक जातिसंपन्न है किन्तु कुलसंपन्न नहीं है । २. एक कुलसंपन्न है किन्तु जातिसंपन्न नहीं है । ३. एक जातिसंपन्न भी है और कुलसंपन्न भी है । ४. एक जातिसंपन्न भी नहीं है और कुल-संपन्न भी नहीं है । इस प्रकार पुरुष वर्ग के भी चार भंग जानें ।

वृषभ चार प्रकार के हैं । वे इस प्रकार हैं-एक जातिसम्पन्न हैं किन्तु बलसंपन्न नहीं, एक बलसंपन्न है किन्तु जातिसंपन्न नहीं है । एक जातिसंपन्न भी है और बलसम्पन्न भी है । एक जातिसम्पन्न भी नहीं है और बलसम्पन्न भी नहीं है । इसी प्रकार पुरुष वर्ग के भी चार भंग जानें ।

वृषभ चार प्रकार के हैं । एक जातिसंपन्न है किन्तु रूपसम्पन्न नहीं है । एक रूपसंपन्न है किन्तु जाति-सम्पन्न नहीं है । एक जातिसम्पन्न भी है और रूपसम्पन्न भी है । एक जातिसम्पन्न भी नहीं है और रूपसम्पन्न भी नहीं है । इसी प्रकार पुरुष वर्ग के चार भेद जाने ।

कुलसम्पन्न और बलसम्पन्न वृषभ के चार भंग हैं । इसी प्रकार पुरुष वर्ग के भी चार भंग हैं । कुलसम्पन्न और रूपसम्पन्न वृषभ के चार भंग हैं । इस प्रकार पुरुष वर्ग के भी चार भंग हैं । बलसम्पन्न और रूपसम्पन्न वृषभ के चार भंग हैं । इसी प्रकार पुरुष वर्ग के भी चार भंग हैं ।

हाथी चार प्रकार के हैं । वे इस प्रकार हैं-भद्र, मंद, मृग और संकीर्ण । इसी प्रकार पुरुष वर्ग भी चार प्रकार का कहा गया है ।

हाथी चार प्रकार के हैं । वे इस प्रकार हैं-एक भद्र है और भद्रमन वाला है । एक भद्र है किन्तु मंदमन वाला है एक भद्र है किन्तु मृग (भीरु) मन वाला है । एक भद्र है किन्तु संकीर्ण मन वाला है । इसी प्रकार पुरुष वर्ग भी चार प्रकार का है ।

हाथी चार प्रकार के हैं । वे इस प्रकार हैं-एक मंद किन्तु भद्रमन वाला है । एक मंद है और मंदमन वाला है। एक मंद है किन्तु मृग (भीरु) मन वाला है । एक मंद है किन्तु संकीर्ण (विचित्र) मन वाला है । इसी प्रकार पुरुष वर्ग भी चार प्रकार का कहा गया है ।

हाथी चार प्रकार के हैं । वे इस प्रकार हैं-एक मृग (भीरु) है और भद्र (भीरु) मन वाला है । एक मृग है किन्तु मंद मन वाला है । एक मृग है और मृग मन वाला भी है । एक मृग है किन्तु संकीर्ण मन वाला है । इसी प्रकार पुरुष वर्ग भी चार प्रकार का है ।

हाथी चार प्रकार के हैं । वे इस प्रकार के हैं-एक संकीर्ण है किन्तु भद्रमन वाला है । एक संकीर्ण है किन्तु मंदमन वाला है । एक संकीर्ण है किन्तु मृगमन वाला है । इसी प्रकार पुरुष वर्ग भी चार प्रकार का कहा गया है ।

**सूत्र - २९६**

मधु की गोली के समान पिंगल नेत्र, क्रमशः पतली सुन्दर एवं लम्बी पूँछ, उन्नत मस्तक आदि से सर्वाङ्ग सुन्दर भद्र हाथी धीर प्रकृति का होता है ।

**सूत्र - २९७**

चंचल, स्थूल एवं कहीं पतली और कहीं मोटी चर्म वाला स्थूल मस्तक, पूँछ, नख, दाँत एवं केश वाला तथा

सिंह के समान पिंगल नेत्र वाला हाथी मंद प्रकृति का होता है ।

**सूत्र - २९८**

कृश शरीर और कृश ग्रीवा वाला, पतले चर्म, नख, दाँत एवं केश वाला, भयभीत, स्थिरकर्ण, उद्विग्नता पूर्वक गमन करने वाला स्वयं त्रस्त और अन्यों को त्रास देने वाला हाथी मृग प्रकृति का होता है ।

**सूत्र - २९९**

जिस हाथी में भद्र, मंद और मृग प्रकृति के हाथियों के थोड़े थोड़े लक्षण हों तथा विचित्र रूप और शील वाला हाथी संकीर्ण प्रकृति का होता है ।

**सूत्र - ३००**

भद्र जाति का हाथी शरद् ऋतु में मतवाला होता है, मंद जाति का हाथी वसंत ऋतु में मतवाला होता है, मृग जाति का हाथी हेमंत ऋतु में मतवाला होता है, और संकीर्ण जाति का हाथी किसी भी ऋतु में मतवाला हो सकता है ।

**सूत्र - ३०१**

विकथा चार प्रकार की हैं-यथा-स्त्रीकथा, भक्तकथा, देशकथा और राजकथा ।

स्त्रीकथा चार प्रकार की है-स्त्रियों की जाति सम्बन्धी कथा, स्त्रियों की कुल सम्बन्धी कथा, स्त्रियों की रूप सम्बन्धी कथा, स्त्रियों की नेपथ्य सम्बन्धी कथा ।

भक्तकथा चार प्रकार की हैं-यथा भोजन सामग्री की कथा, विवध प्रकार के पकवानों और व्यञ्जनों की कथा, भोजन बनाने की विधियों की कथा, भोजन निर्माण में होने वाले व्यय की कथा ।

देशकथा चार प्रकार की है-देश के विस्तार की कथा, देश में उत्पन्न होने वाले धान्य आदि की कथा, देश-वासियों के कर्तव्याकर्तव्य की कथा, देशवासियों के नेपथ्य की कथा ।

राजकथा चार प्रकार की है, यथा-राजा के नगर-प्रवेश की कथा, राजा के नगर-प्रयाण की कथा, राजा के बल-वाहन की कथा, राजा के कोठार की कथा ।

धर्मकथा चार प्रकार की है-आक्षेपणी, विक्षेपणी, संवेदनी और निर्वेदनी ।

आक्षेपणी कथा चार प्रकार की है, यथा-आचारआक्षेपणी-साधुओं का आचार बताने वाली कथा, व्यवहार आक्षेपणी-दोषनिवारणार्थ प्रायश्चित्त के भेद प्रभेद बताने वाली कथा, प्रज्ञप्ति आक्षेपणी-संशयनिवारणार्थ कही जाने वाली कथा । दृष्टिवाद आक्षेपणी-श्रोताओं को समझकर नयानुसार सूक्ष्म तत्त्वों का विवेचन करने वाली कथा।

विक्षेपणी कथा चार प्रकार की है, यथा-स्व सिद्धान्त के गुणों का कथन करके पर सिद्धान्त के दोष बताना, पर-सिद्धान्त का खण्डन करके स्व-सिद्धान्त की स्थापना करना, परसिद्धान्त की अच्छाईयाँ बताकर पर-सिद्धान्त की बूराईयाँ भी बताना, पर-सिद्धान्त की मिथ्या बातें बताकर सच्ची बातों की स्थापना करना ।

संवेदनी कथा चार प्रकार की है, यथा-इहलोक संवेदनी-मनुष्य देह की नश्वरता बताकर वैराग्य उत्पन्न करने वाली कथा, परलोक संवेदनी-मुक्ति की साधना में भोग-प्रधान देव जीवन की निरुपयोगिता बताने वाली कथा, आत्शरीर संवेदनी-स्वशरीर को अशुचिमय बताने वाली कथा, परशरीर संवेदनी-दूसरों के शरीर को नश्वर बताने वाली कथा ।

निर्वेदनी कथा चार प्रकार की है, इस जन्म में किये गए दुष्कर्मों का फल इसी जन्म में मिलता है-यह बताने वाली कथा, इस जन्म में किये गए दुष्कर्मों का फल परजन्म में मिलता है-यह बताने वाली कथा, परजन्म में किये गए दुष्कर्मों का फल इस जन्म में मिलता है-यह बताने वाली कथा, परजन्म में किये गए दुष्कर्मों का फल इस जन्म में मिलता है-यह बताने वाली कथा, परजन्म कृत दुष्कर्मों का फल परजन्म में मिलता है-यह बताने वाली कथा ।

इस जन्म में किये गए सत्कर्मों का फल इसी जन्म में मिलता है-यह बताने वाली कथा, इस जन्म में किये गए सत्कर्मों का फल परजन्म में मिलता है-यह बताने वाली कथा, परजन्म कृत सत्कर्मों का फल इस जन्म में मिलता है-यह बताने वाली कथा, परजन्म कृत सत्कर्मों का फल परजन्म में मिलता है-यह बताने वाली कथा ।

**सूत्र - ३०२**

पुरुष वर्ग चार प्रकार का है । वह इस प्रकार है–एक पुरुष पहले भी कृश था और वर्तमान में भी कृश है । एक पुरुष पहले कृश था किन्तु वर्तमान में सुर्दढ़ शरीर वाला है । एक पुरुष पहले भी सुद्रढ़ शरीर वाला था किन्तु वर्तमान में कृशकाय है । एक पहले सुद्रढ़ शरीर वाला था और वर्तमान में भी सुद्रढ़ शरीर वाला है ।

पुरुष वर्ग चार प्रकार का है । एक पुरुष हीनमन वाला है और कृशकाय भी है । एक पुरुष हीनमन वाला है किन्तु सुद्रढ़ शरीर वाला है । एक पुरुष महामना है किन्तु कृशकाय है । एक पुरुष महामना भी है और सुद्रढ़ शरीर वाला भी है ।

पुरुष वर्ग चार प्रकार का है । किसी कृशकाय पुरुष को ज्ञान-दर्शन उत्पन्न हो जाता है किन्तु सुद्रढ़ शरीर वाले पुरुष को ज्ञान-दर्शन उत्पन्न नहीं होता । किसी सुद्रढ़ शरीर वाले पुरुष को ज्ञान-दर्शन उत्पन्न हो जाता है किन्तु किसी कृशकाय पुरुष को ज्ञान-दर्शन उत्पन्न नहीं होता है । किसी कृशकाय पुरुष को भी ज्ञान-दर्शन उत्पन्न हो जाता है और किसी सुद्रढ़ शरीर वाले पुरुष को भी ज्ञान-दर्शन उत्पन्न हो जाता है । किसी कृशकाय पुरुष को भी ज्ञान-दर्शन उत्पन्न नहीं होता और किसी सुद्रढ़ शरीर वाले पुरुष को भी ज्ञान-दर्शन उत्पन्न नहीं होता ।

**सूत्र - ३०३**

चार कारणों से वर्तमान में निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थियों के चाहने पर भी उन्हें केवल ज्ञान-दर्शन उत्पन्न नहीं होता । जो बार-बार स्त्री-कथा, भक्त-कथा, देश-कथा और राज-कथा कहता है । जो विवेकपूर्वक कायोत्सर्ग करके आत्मा को समाधिस्थ नहीं करता है । जो पूर्वरात्रि में और अपररात्रि में धर्मजागरण नहीं करता है । जो प्रासुक आगमोक्त और एषणीय अल्प-आहार नहीं लेता तथा सभी घरों से आहार की गवेषणा नहीं करता है ।

चार कारणों से वर्तमान में भी निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थियों के चाहने पर उन्हें केवल ज्ञान, केवलदर्शन उत्पन्न होता है। जो स्त्रीकथा आदि चार कथा नहीं करते हैं । जो विवेकपूर्वक कायोत्सर्ग करके आत्मा को समाधिस्थ करते हैं । जो पूर्वरात्रि और अपररात्रि में धर्मजागरण करते हैं । जो प्रासुक और एषणीय अल्प आहार लेते हैं तथा सभी घरों से आहार की गवेषणा करते हैं ।

**सूत्र - ३०४**

चार महाप्रतिपदाओं में निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थियों को स्वाध्याय करना नहीं कल्पता है । वे चार प्रतिपदाएं ये हैं– श्रावण कृष्णा प्रतिपदा, कार्तिक कृष्णा प्रतिपदा, मार्गशीर्ष कृष्णा प्रतिपदा, वैशाख कृष्णा प्रतिपदा ।

चार संध्याओं में निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थियों को स्वाध्याय करना नहीं कल्पता है । वे चार संध्याएं ये हैं–दिन के प्रथम प्रहर में, दिन के अन्तिम प्रहर में, रात्रि के प्रथम प्रहर में और रात्रि के अंतिम प्रहर में ।

**सूत्र - ३०५**

लोकस्थिति चार प्रकार की है । वह इस प्रकार है–आकाश के आधार पर घनवायु और तनवायु प्रतिष्ठित है। वायु के आधार पर घनोदधि प्रतिष्ठित है । घनोदधि के आधार पर पृथ्वी प्रतिष्ठित है । और पृथ्वी के आधार पर त्रस-स्थावर प्राणी प्रतिष्ठित है ।

**सूत्र - ३०६**

पुरुष वर्ग चार प्रकार का है । वह इस प्रकार है–तथापुरुष-जो सेवक, स्वामी की आज्ञानुसार कार्य करे । नो तथापुरुष-जो सेवक स्वामी की आज्ञानुसार कार्य न करे । सौवस्थिक पुरुष-जो स्वस्तिक पाठ करे और प्रधान पुरुष - जो सबका आदरणीय हो ।

पुरुष वर्ग चार प्रकार का है । आत्मांतकर-एक पुरुष अपने भव का अंत करता है दूसरे के भव का अंत नहीं करता । परांतकर-एक पुरुष दूसरे के भव का अंत करता है अपने भव का अंत नहीं करता । उभयांतकरी-एक पुरुष अपने और दूसरे के भव का अंत करता है । न उभयांतकर-एक पुरुष अपने और दूसरे दोनों के भव का अंत नहीं करता ।

पुरुष वर्ग चार प्रकार का है । वह इस प्रकार है-एक पुरुष स्वयं चिंता करता है, किन्तु दूसरे को चिन्ता नहीं होने देता, एक पुरुष दूसरे को चिंतित करता है, किन्तु स्वयं चिन्ता नहीं करता । एक पुरुष स्वयं भी चिन्ता करता है और दूसरे को भी चिंतित करता है । एक पुरुष न स्वयं चिन्ता करता है और न दूसरे को चिंतित करता है ।

पुरुष वर्ग चार प्रकार का है । वह इस प्रकार है-एक पुरुष आत्मदमन करता है, किन्तु दूसरे का दमन नहीं करता । एक पुरुष दूसरे का दमन करता है किन्तु आत्मदमन नहीं करता । एक पुरुष आत्मदमन भी करता है और परदमन भी करता है । एक पुरुष न आत्मदमन करता है और न परदमन करता है ।

**सूत्र - ३०७**

गर्हा चार प्रकार की है, यथा-स्वकृत दोष की शुद्धि के लिए उचित प्रायश्चित्त लेने हेतु मैं स्वयं गुरु महाराज के समीप जाऊं यह एक गर्हा है । गर्हणीय दोषों का मैं निराकरण करूँ यह दूसरी गर्हा है । मैंने जो अनुचित किया है उसका मैं स्वयं मिथ्या दुष्कृत करूँ-यह तीसरी गर्हा है । स्वकृत दोषों की गर्हा करने से आत्म-शुद्धि होती है, यह जिन भगवान ने कहा है-इस प्रकार स्वीकार करना, यह चौथी गर्हा है ।

**सूत्र - ३०८**

पुरुष वर्ग चार प्रकार का है । एक पुरुष अपने आपको दुष्प्रवृत्तियों से बचाता है किन्तु दूसरे को नहीं बचाता । एक पुरुष दूसरों को दुष्प्रवृत्तियों से बचाता है, किन्तु स्वयं नहीं बचता । एक पुरुष स्वयं भी दुष्प्रवृत्तियों से बचता है और दूसरे को भी बचाता है । एक पुरुष न स्वयं दुष्प्रवृत्तियों से बचता है और न दूसरे को बचाता है ।

मार्ग चार प्रकार का है । एक मार्ग प्रारम्भ में भी सरल है और अन्त में भी सरल है । एक मार्ग प्रारंभ में सरल है किन्तु अन्त में वक्र है । एक मार्ग प्रारंभ में वक्र है किन्तु अन्त में सरल है । एक मार्ग प्रारम्भ में भी वक्र है और अन्त में भी वक्र है । इसी प्रकार पुरुष वर्ग भी चार प्रकार का है-मार्ग चार प्रकार का है । एक मार्ग प्रारम्भ में भी उपद्रवरहित है और अन्त में भी उपद्रवरहित है । एक मार्ग प्रारम्भ में उपद्रवरहित है अन्त में उपद्रवरहित नहीं है। एक मार्ग प्रारम्भ में उपद्रवसहित है अन्त में उपद्रवरहित है । एक मार्ग प्रारम्भ में और अन्त में उपद्रवसहित है । इसी प्रकार पुरुष वर्ग भी चार प्रकार का है ।

मार्ग चार प्रकार का है, यथा-एक मार्ग उपद्रवरहित है और सुन्दर है । एक मार्ग उपद्रवरहित है किन्तु सुन्दर नहीं है । एक मार्ग उपद्रवसहित है किन्तु सुन्दर है । एक मार्ग उपद्रवसहित भी है और सुन्दर भी नहीं है । इसी प्रकार पुरुष वर्ग भी चार प्रकार का है । यथा-एक पुरुष शांत स्वभाव वाला है और अच्छी वेशभूषा वाला है । एक पुरुष शांत स्वभाव वाला है किन्तु वेशभूषा अच्छी नहीं है । एक पुरुष खराब वेशभूषा वाला तो है किन्तु शांत स्वभावी है । एक पुरुष खराब वेशभूषा वाला भी है और क्रूर स्वभाव वाला भी है ।

शंख चार प्रकार के हैं । एक शंख वाम है और वामावर्त भी है । एक शंख वाम है किन्तु दक्षिणावर्त है । एक शंख दक्षिण है किन्तु वामावर्त है । एक शंख दक्षिण है और दक्षिणावर्त भी है । इसी प्रकार पुरुष वर्ग भी चार प्रकार का है । एक पुरुष प्रतिकूल स्वभाव वाला और प्रतिकूल व्यवहार वाला भी है । एक पुरुष प्रतिकूल स्वभाव वाला है किन्तु अनुकूल व्यवहार वाला है । एक पुरुष अनुकूल स्वभाव वाला है किन्तु प्रतिकूल व्यवहार वाला है । एक पुरुष अनुकूल स्वभाव वाला और अनुकूल व्यवहार वाला है ।

धूमशिखा चार प्रकार की है । यथा-एक धूमशिखा वामा है (बांयी और जाने वाली है) और वामावर्त भी है। एक धूमशिखा वामा है किन्तु दक्षिणावर्त है । एक धूमशिखा दक्षिणा है किन्तु वामावर्त है । एक धूमिशिखा दक्षिणा है और दक्षिणावर्त भी है । इसी प्रकार स्त्रियाँ भी चार प्रकार की हैं-अग्निशिखा, और स्त्रियों के चार भांगे । वायु-मंडल, और स्त्रियों के चार भांगे । वनखंड, और पुरुषों के चार भांगे जानना ।

**सूत्र - ३०९**

चार कारणों से अकेला साधु अकेली साध्वी से बातचीत करे तो मर्यादा का उल्लंघन नहीं करता है । मार्ग पूछे, मार्ग बतावे, अशनादि चार प्रकार का आहार दे, और अशनादि चार प्रकार का आहार दिलावे ।

**सूत्र - ३१०**

तमस्काय के चार नाम हैं । यथा–तम, तमस्काय, अंधकार और महांधकार । तमस्काय के चार नाम हैं– लोकांधकार, लोकतमस, देवांधकार और देवतमस । तमस्काय के चार नाम हैं, यथा–वातपरिध-वायु को रोकने के लिए अर्गला समान । वातपरिध क्षोभ-वायु को क्षुब्ध करने के लिए अर्गला समान । देवारण्य-देवताओं के छिपने का स्थान । देवव्यूह-जिस प्रकार मानव का सैन्यव्यूह में प्रवेश पाना कठिन है उसी प्रकार देवों का तमस्काय में प्रवेश पाना कठिन है । तमस्काय से चार कल्प ढके हुए हैं, यथा–सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार और माहेन्द्र ।

**सूत्र - ३११**

पुरुष चार प्रकार के हैं । यथा–संप्रगट प्रतिसेवी-साधु समुदाय में रहने वाला एक साधु अगीतार्थ के समक्ष दोष सेवन करते हैं । प्रच्छन्नप्रतिसेवी–एक साधु प्रच्छन्न दोष सेवन करता है । प्रत्युत्पन्न नंदी–एक साधु वस्त्र या शिष्य के लाभ से आनन्द मनाता है । निःसरण नंदी–एक साधु गच्छ में से स्वयं के या शिष्य के नीकलने से आनन्द मनाता है।

सेनाएं चार प्रकार की हैं । यथा–एक सेना शत्रु को जीतने वाली है किन्तु हराने वाली नहीं है । एक सेना हराने वाली है किन्तु जीतने वाली नहीं है । एक सेना शत्रुओं को जीतने वाली भी है और हराने वाली भी है । एक सेना शत्रुओं को न जीतने वाली है और न हराने वाली । इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के हैं । यथा–एक साधु परीषहों को जीतने वाला है किन्तु परीषहों को सर्वथा परास्त करने वाला नहीं है । एक साधु परीषहों से हारने वाला है किन्तु उन्हें जीतने वाला नहीं है । एक साधु शैलक राजर्षि के समान परीषहों से हारने वाला भी है और उन्हें जीतने वाला भी है । एक साधु न परीषहों से हारने वाला है और न उन्हें जीतने वाला है । क्योंकि साधनाकाल में उसे परीषह आये ही नहीं ।

सेनाएं चार प्रकार की हैं । यथा–एक सेना युद्ध के आरम्भ में भी शत्रु सेना को जीतती है और युद्ध के अन्त में भी शत्रु सेना को जीतती है । एक सेना युद्ध के आरम्भ में शत्रु सेना को जीतती है किन्तु युद्ध के अन्त में पराजित हो जाती है । एक सेना युद्ध के आरम्भ में पराजित होती है किन्तु युद्ध के अन्त में विजय प्राप्त करती है । एक सेना युद्ध के आरम्भ में भी और अन्त में भी पराजित होती है । इसी प्रकार परीषहों से विजय और पराजय प्रकार करने वाले पुरुष वर्ग के चार भांगे हैं ।

**सूत्र - ३१२**

वक्र वस्तुएं चार प्रकार की हैं । यथा–बाँस की जड़ समान वक्रता, घेटे के सींग समान वक्रता, गोमूत्रिका के समान वक्रता, बाँस की छाल समान वक्रता । इसी प्रकार माया भी चार प्रकार की है । बाँस की जड़ समान वक्रता वाली माया करनेवाला जीव मरकर नरकमें उत्पन्न होता है । घेटे के सींग समान वक्रता वाली माया करने वाला जीव मरकर तिर्यंचयोनि में उत्पन्न होता है । गोमूत्रिका के समान वक्रता वाली माया करने वाला जीव मरकर मनुष्ययोनि में जन्म लेता है । बाँस की छाल के समान वक्रता वाली माया करने वाला जीव मरकर देवयोनि में उत्पन्न होता है ।

स्तम्भ चार प्रकार का है । यथा–शैलस्तम्भ, अस्थिस्तम्भ, दारुस्तम्भ और तिनिसलतास्तम्भ । इसी प्रकार मान चार प्रकार का है । यथा–शैलस्तम्भ समान, अस्थिस्तम्भ समान, दारुस्तम्भ समान और तिनिसलतास्तम्भ समान । शैलस्तम्भ समान मान करने वाला जीव मरकर नरक में उत्पन्न होता है । अस्थिस्तम्भ समान मान करने वाला जीव मरकर तिर्यंचयोनि में उत्पन्न होता है । दारुस्तम्भ समान मान करने वाला जीव मरकर मनुष्य योनि में उत्पन्न होता है । तिनिसलतास्तम्भ मान करने वाला जीव मरकर देवयोनि में उत्पन्न होता है ।

वस्त्र चार प्रकार के हैं । यथा–कृमिरंग से रंगा हुआ, कीचड़ से रंगा हुआ, खंजन से रंगा हुआ, हरिद्रा से रंगा हुआ । इसी प्रकार लोभ चार प्रकार का है । यथा–कृमिरंग से रंगे हुए वस्त्र के समान, कीचड़ से रंगे हुए वस्त्र के समान, खंजन से रंगे हुए वस्त्र के समान, हरिद्रा से रंगे हुए वस्त्र के समान । कृमिरंग से रंगे हुए वस्त्र के समान लोभ करने वाला जीव मरकर नरक में उत्पन्न होता है । कीचड़ से रंगे हुए वस्त्र के समान लोभ करने वाला जीव मरकर तिर्यंच में उत्पन्न होता है । खंजन से रंगे हुए वस्त्र के समान लोभ करने वाला जीव मरकर मनुष्य में उत्पन्न होता है । हल्दी से रंगे हुए वस्त्र के समान लोभ करने वाला जीव मरकर देवताओं में उत्पन्न होता है ।

**सूत्र - ३१३**

संसार चार प्रकार का है । यथा–नैरयिक संसार, तिर्यंच संसार, मानव संसार और देव संसार ।

आयु चार प्रकार का है । यथा–नैरयिकायु, तिर्यंचायु, मनुजायु, देवायु ।

भव चार प्रकार का है । यथा–नैरयिक भव, तिर्यंच भव, मानव भव और देव भव ।

**सूत्र - ३१४**

आहार चार प्रकार का है । यथा–अशन, पान, खादिम और स्वादिम । अथवा आहार चार प्रकार का है । यथा–उपस्करसंपन्न-हींग वगैरह से संस्काररहित आहार । उपस्कृत संपन्न-अग्निपक्व आहार, स्वभाव संपन्न-स्वतः पक्व आहार-द्राक्ष आदि, पर्युषित संपन्न-रात भर रखकर बनाया हुआ आहार-दहींबड़ा आदि ।

**सूत्र - ३१५**

बंध चार प्रकार का है । यथा–प्रकृतिबंध, स्थितिबंध, अनुभागबंध और प्रदेशबंध । कर्मप्रकृतियों का बंध–प्रकृतिबंध है, कर्मप्रकृतियों की जघन्य उत्कृष्ट स्थिति का बंध–स्थितिबंध है । कर्मप्रकृतियों में तीव्र-मंद रस का बंध – रसबंध है । आत्मप्रदेशों के साथ शुभाशुभ विपाक वाले अनंतानंत कर्मप्रदेशों का बंध–प्रदेश बंध ।

उपक्रम चार प्रकार का है । यथा–बंधनोपक्रम, उदीरणोपक्रम, उपशमनोपक्रम और विपरिणामनोपक्रम । बंधनोपक्रम चार प्रकार का है । यथा–प्रकृतिबंधनोपक्रम, स्थितिबंधनोपक्रम, अनुभागबंधनोपक्रम और प्रदेशबंध-नोपक्रम । उदीरणोपक्रम चार प्रकार का है । यथा–प्रकृतिउदीरणोपक्रम, स्थितिउदीरणोपक्रम, अनुभावउदीरणो-पक्रम और प्रदेशउदीरणोपक्रम । उपशमनोपक्रम चार प्रकार का है । यथा–प्रकृतिउपशमनोपक्रम, स्थितिउपशम-नोपक्रम, अनुभावउपशमनोपक्रम और प्रदेशउपशमनोपक्रम । विपरिणामनोपक्रम चार प्रकार का है । यथा–प्रकृति विपरिणामनोपक्रम, स्थितिविपरिणामनोपक्रम, अनुभावविपरिणामनोपक्रम और प्रदेशविपरिणामनोपक्रम ।

अल्प-बहुत्व चार प्रकार का है । यथा–प्रकृति अल्पबहुत्व, स्थिति अल्पबहुत्व, अनुभाव अल्पबहुत्व और प्रदेश अल्पबहुत्व ।

संक्रम चार प्रकार का है–प्रकृतिसंक्रम, स्थितिसंक्रम, अनुभावसंक्रम, प्रदेशसंक्रम ।

निधत्त चार प्रकार का है । यथा–प्रकृति निधत्त, स्थिति निधत्त, अनुभाव निधत्त और प्रदेश निधत्त । निकाचित चार प्रकार का है । यथा–प्रकृति निकाचित, स्थिति निकाचित, अनुभाव निकाचित और प्रदेश निकाचित।

**सूत्र - ३१६**

एक संख्या वाले चार हैं । यथा–द्रव्य एक, मातृकापद एक, पर्याय एक, संग्रह एक ।

**सूत्र - ३१७**

कितने चार हैं ? यथा–द्रव्य कितने हैं, मातृकापद कितने हैं, पर्याय कितने हैं और संग्रह कितने हैं ?

**सूत्र - ३१८**

सर्व चार हैं । नाम सर्व, स्थापना सर्व, आदेश सर्व और निश्वशेष सर्व ।

**सूत्र - ३१९**

मानुषोत्तर पर्वत की चार दिशाओं में चार कूट हैं । यथा–रत्न, रत्नोच्चय, सर्वरत्न और रत्नसंचय ।

**सूत्र - ३२०**

जम्बूद्वीप के भरत ऐरवत क्षेत्र में अतीत उत्सर्पिणी का सुषमसुषमाकाल चार क्रोड़ाक्रोड़ी सागरोपम था । जम्बूद्वीप के भरत ऐरवत क्षेत्र में इस अवसर्पिणी का सुषमसुषमा काल चार क्रोड़ाक्रोड़ी सागरोपम था । जम्बूद्वीप के भरत ऐरवत क्षेत्र में आगामी उत्सर्पिणी का सुषमसुषमाकाल चार क्रोड़ाक्रोड़ी सागरोपम होगा ।

**सूत्र - ३२१**

जम्बूद्वीप में देवकुरु और उत्तरकुरु को छोड़कर चार अकर्मभूमियाँ हैं । यथा–हेमवंत, हैरण्यवत, हरिवर्ष और रम्यक्वर्ष ।

वृत्त वैताढ्य पर्वत चार हैं । यथा–शब्दापाति, विकटापाति, गंधापाति और माल्यवंत पर्याय । उन वृत्त वैताढ्य पर्वतों पर पल्योपम स्थिति वाले चार महर्धिक देव रहते हैं । यथा–स्वाति, प्रभास, अरुण और पद्म ।

जम्बूद्वीप में चार महाविदेह हैं । यथा–पूर्वविदेह, अपरविदेह, देवकुरु और उत्तरकुरु ।

सभी निषध और नीलवंत वर्षधर पर्वत चार सो योजन ऊंचे और चार सो गाऊ भूमि में गहरे हैं ।

जम्बूद्वीपवर्ती मेरु पर्वत के पूर्व में रहने वाली सीता महानदी के उत्तर किनारे पर चार वक्षस्कार पर्वत हैं । यथा–चित्रकूट, पद्मकूट, नलिनकूट और एकशैल । जम्बूद्वीपवर्ती मेरु पर्वत के पूर्व में रहने वाली सीता महानदी के दक्षिण किनारे पर चार वक्षस्कार पर्वत हैं । यथा–चित्रकूट, वैश्रमणकूट, अंजन और मातंजन । जम्बूद्वीपवर्ती मेरु पर्वत के पश्चिम में बहने वाली सीता महानदी के दक्षिण किनारे पर चार वक्षस्कार पर्वत हैं । यथा–अंकावती, पद्मावती, आशिविष और सुखावह । जम्बूद्वीपवर्ती मेरु पर्वत के पश्चिम में बहने वाली सीता महानदी के उत्तर किनारे पर चार वक्षस्कार पर्वत हैं । चन्द्रपर्वत, सूर्यपर्वत, देवपर्वत और नागपर्वत । जम्बूद्वीपवर्ती मेरु पर्वत के चार विदिशाओं में चार वक्षस्कार हैं । यथा–सोमनस, विद्युत्प्रभ, गंधमादन और माल्यवंत ।

जम्बूद्वीप के महाविदेह में जघन्य चार अरिहंत, चार चक्रवर्ती, चार बलदेव, चार वासुदेव उत्पन्न हुए, उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे । जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत पर चार वन हैं । यथा–भद्रसाल वन, नन्दन वन, सोमनस वन और पंडग वन ।

जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत पर पंडग वन में चार अभिषेक शिलाएं हैं । यथा–पंडुकंबल शिला, अतिपंडुकंबल शिला, रक्तकंबल शिला और अतिरक्तकंबल शिला ।

मेरु पर्वत की चूलिका ऊपर से चार सौ योजन चौड़ी है ।

इसी प्रकार धातकी खण्ड द्वीप के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध में काल सूत्र से लेकर यावत्–मेरुचूलिका पर्यन्त कहें इसी प्रकार पुष्करार्ध द्वीप के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध में भी काल सूत्र से लेकर यावत्–मेरुचूलिका पर्यन्त कहें ।

**सूत्र - ३२२**

जम्बूद्वीप में शास्वत पदार्थकाल यावत्–मेरुचूलिका तक जो कहे हैं वे धातकीखण्ड और पुष्करवरद्वीप के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध में भी कहें ।

**सूत्र - ३२३**

जम्बूद्वीप के चार द्वार हैं । विजय, वेजयंत, जयंत और अपराजित ।

जम्बूद्वीप के द्वार चार सौ योजन चौड़े हैं और उनका उतना ही प्रवेशमार्ग है । जम्बूद्वीप के उन द्वारों पर पल्योपम स्थिति वाले चार महर्द्धिक देव रहते हैं । उनके नाम ये हैं–विजय, विजयन्त, जयन्त और अपराजित ।

**सूत्र - ३२४**

जम्बूद्वीपवर्ती मेरु पर्वत के दक्षिण में और चुल्ल (लघु) हिमवंत वर्षधर पर्वत के चार विदिशाओं में लवण समुद्र तीन सौ तीन सौ योजन जाने पर चार-चार अन्तरद्वीप हैं । यथा–एकोरुक द्वीप, आभाषिक द्वीप, वेषाणिक द्वीप और लांगोलिक द्वीप । उन द्वीपों में चार प्रकार के मनुष्य रहते हैं । यथा–एकोरुक, आभाषिक, वैषाणिक और लाँगुलिक ।

उन द्वीपों के चार विदिशाओं में लवण समुद्र में चार सौ-चा रसौ योजन जाने पर चार अन्तरद्वीप हैं । यथा–हयकर्णद्वीप, गजकर्ण द्वीप, गोकर्णद्वीप और संकुलिकर्णद्वीप । उन द्वीपों में चार प्रकार के मनुष्य रहते हैं । यथा–हयकर्ण, गजकर्ण, गोकर्ण और शष्कुलीकर्ण ।

उन द्वीपों की चार विदिशाओं में लवण समुद्र में पाँच सौ-पाँच सौ योजन जाने पर चार अंतरद्वीप हैं । यथा – आदर्शमुखद्वीप, मेंढ़मुखद्वीप, अयोमुखद्वीप और गोमुखद्वीप । उन द्वीपों में चार प्रकार के मनुष्य हैं । यथा–आदर्शमुख, मेंढ़मुख, अयोमुख और गोमुख ।

उन द्वीपों की चार विदिशाओं में लवण समुद्र में छःसो-छःसो योजन जाने पर चार अन्तरद्वीप हैं । यथा–

अश्वमुखद्वीप, हस्तिमुखद्वीप, सिंहमुखद्वीप और व्याघ्रमुखद्वीप । उन द्वीपों में मनुष्य चार प्रकार के हैं–अश्वमुख, हस्तिमुख, सिंहमुख और व्याघ्रमुख ।

जम्बूद्वीपों की चार विदिशाओं में लवण समुद्र में सात सौ-सात सौ योजन जाने पर चार अन्तरद्वीप हैं । यथा– अश्वकर्ण द्वीप, हस्तिकर्ण द्वीप, अकर्ण द्वीप और कर्णप्रवारण द्वीप । उन द्वीपों में चार प्रकार के मनुष्य हैं । यथा– अश्वकर्ण, हस्तिकर्ण, अकर्ण और कर्ण प्रावरण ।

उन द्वीपों की चार विदिशाओं में लवण समुद्र में आठ सौ-आठ सौ योजन जाने पर चार अन्तर द्वीप हैं । यथा– उल्कामुखद्वीप, मेघमुखद्वीप, विद्युन्मुखद्वीप और विद्युद्दन्तद्वीप । उन द्वीपों में चार प्रकार के मनुष्य रहते हैं । उल्कामुख, मेघमुख, विद्युन्मुख और विद्युद्दन्तमुख ।

उन द्वीपों की चार विदिशाओं में लवण समुद्र में नौसो-नौसो योजन जाने पर चार द्वीप हैं । यथा–घनदन्त द्वीप, लष्टदन्त द्वीप, मूढ़दन्त द्वीप और शुद्धदन्त द्वीप । उन द्वीपों में चार प्रकार के मनुष्य हैं । यथा–घनदन्त, लष्ट-दन्त, गूढ़दन्त, शुद्धदन्त ।

जम्बूद्वीपवर्ती मेरु पर्वत के उत्तर में और शिखरी वर्षधर पर्वत की चार विदिशाओं में लवण समुद्र में तीनसौ - तीनसौ योजन जाने पर चार अन्तरद्वीप हैं । अन्तरद्वीपों के नाम इसी सूत्र के उपसूत्र के समान समझें ।

**सूत्र - ३२५**

जम्बूद्वीप की बाह्य वेदिकाओं से (पूर्वादि) चार दिशाओं में लवण समुद्र में ९५००० योजन जाने पर महा-घटाकार चार महापातालकलश हैं । यथा–वलयामुख, केतुक, यूपक और ईश्वर । इन चार महापाताल कलशों में पल्योपम स्थिति वाले चार महर्धिक देव रहते हैं । यथा–काल, महाकाल, वेलम्ब और प्रभंजन ।

जम्बूद्वीप की बाह्य वेदिकाओं से (पूर्वादि) चार दिशाओं में लवण समुद्र में ४२,००० योजन जाने पर चार वेलंधर नागराजाओं के चार आवास पर्वत हैं । यथा–गोस्तुभ, उदकभास, शंख, दकसीम । इन चार आवास पर्वतों पर पल्योपम स्थिति वाले चार महर्धिक देव रहते हैं । यथा–गोस्तूप, शिवक, शंख और मनशील ।

जम्बूद्वीप की बाह्य वेदिकाओं से चार विदिशाओं में लवण समुद्र में ४२,००० योजन जाने पर अनुवेलंधर नागराजाओं के चार आवास पर्वत हैं । यथा–कर्कोटक, कर्दमक, केलाश और अरुणप्रभ । उन चार आवास पर्वतों पर पल्योपम स्थिति वाले चार महर्धिक देव रहते हैं । यथा–इन देवों के नाम पर्वतों के समान हैं ।

लवण समुद्र में चार चन्द्रमा अतीत में प्रकाशित हुए थे वर्तमान में प्रकाशित होते हैं और भविष्य में प्रकाशित होंगे । लवण समुद्र में सूर्य अतीत में तपे थे वर्तमान में तपते हैं और भविष्य में तपेंगे । इसी प्रकार चार कृतिका-यावत्– चारभाव केतु पर्यन्त सूत्र कहें ।

लवण समुद्र के चार द्वार हैं–इनके नाम जम्बूद्वीप के द्वारों के समान हैं । इस द्वारों पर पल्योपम स्थिति वाले चार महर्धिक देव रहते हैं । उनके नाम भी जम्बूद्वीप समान हैं ।

**सूत्र - ३२६**

धातकीखण्ड द्वीप का वलयाकार विष्कम्भ चार लाख योजन का है ।

जम्बूद्वीप के बाहर चार भरत क्षेत्र और चार ऐरवत क्षेत्र है । इसी प्रकार पुष्करार्धद्वीप के पूर्वार्ध पर्यन्त द्वीतिय स्थान उद्देशक तीन में उक्त मेरुचूलिका तक के पाठ की पुनरावृत्ति करें, और उसमें सर्वत्र चार की संख्या कहें ।

**सूत्र – ३२७, ३२८**

वलयाकार विष्कम्भ वाले नन्दीश्वर द्वीप के मध्य चारों दिशाओं में चार अंजनक पर्वत हैं । यथा–पूर्व में, दक्षिण में, पश्चिम में और उत्तर में । वे अंजनक पर्वत ८४,००० योजन ऊंचे हैं और एक हजार योजन भूमि में गहरे हैं । उन पर्वतों के मूल का विष्कम्भ दस हजार योजन का है । फिर क्रमशः कम होते होते ऊपर का विष्कम्भ एक हजार योजन का है । उन पर्वतों की परिधि मूल में इकतीस हजार छसो तेईस योजन की है । फिर क्रमशः कम होते होते ऊपर की परिधि तीन हजार एक सौ छासठ योजन की है । वे पर्वत मूल में विस्तृत, मध्य में संकरे और ऊपर पतले

अर्थात् गो पुच्छ की आकृति वाले हैं । सभी अंजनक पर्वत अंजन रत्नमय हैं, स्वच्छ हैं, कोमल हैं, घुटे हुए और घिसे हुए हैं । रज, मल और कर्दम रहित हैं । अनिन्द्य सुषमा वाले हैं, स्वतः चमकने वाले हैं । उनसे किरणें नीकल रही हैं, अतः उद्योतित हैं । वे प्रासादीय, दर्शनीय हैं, मनोहर एवं रमणीय हैं ।

उन अंजनक पर्वतों का ऊपरीतल समतल है । उन समतल उपरीतलों के मध्य भाग में चार सिद्धायतन हैं । उन सिद्धायतनों की लम्बाई एक सौ योजन की है, चौड़ाई पचास योजन की है और ऊंचाई बहत्तर योजन की है ।

उन सिद्धायतनों की चार दिशाओं यथा-देवद्वार, असुरद्वार, नागद्वार और सुपर्णद्वार । उन द्वारों पर चार प्रकार के देव रहते हैं । यथा-देव, असुर, नाग और सुपर्ण ।

उन द्वारों के आगे चार मुखमण्डप हैं । उन मुखमण्डपों के आगे चार प्रेक्षाधर मण्डप हैं । उन प्रेक्षाघर मण्डपों के मध्य भाग में चार वज्रमय अखाड़े हैं । उन वज्रमय अखाड़ों के मध्य भाग में चार मणिपीठिकाएं हैं । उन मणिपीठिकाओं के ऊपर चार सिंहासन हैं । उन सिंहासनों पर चार विजयदूष्य हैं । उन विजयदूष्यों के मध्यभाग में चार वज्रमय अंकुश हैं । उन वज्रमय अंकुशों पर लघु कुंभाकार मोतीयों की चार मालाएं हैं । प्रत्येक माला अर्ध-प्रमाण वाली चार-चार मुक्तामालाओं से घिरी हुई हैं ।

उन प्रेक्षाघर मण्डपों के आगे चार मणिपीठिकाएं हैं । उन मणिपीठिकाओं पर चार चैत्य स्तूप हैं । प्रत्येक चैत्य स्तूपों की चारों दिशाओं में चार-चार मणिपीठिकाएं हैं । प्रत्येक मणिपीठिका पर पल्यंकासन वाली स्तूपा-भिमुख सर्व रत्नमय चार जिनप्रतिमाएं हैं । उनके नाम-रिषभ, वर्धमान, चन्द्रानन और वारिषेण । उन चैत्यस्तूपों के आगे चार मणिपीठिकाओं पर चार चैत्यवृक्ष हैं । उन चैत्यवृक्षों के सामने चार मणिपीठिकाएं हैं । उन मणिपीठि-काओं पर चार महेन्द्र ध्वजाएं हैं । उन महेन्द्र ध्वजाओं के सामने चार नंदा पुष्करणियाँ हैं । प्रत्येक पुष्करिणी की चारों दिशाओं में चार वन खंड हैं ।

पूर्व में अशोक वन, दक्षिण में सप्तपर्ण वन, पश्चिम में चम्पक वन और उत्तर में आम्रवन ।

**सूत्र - ३२९**

पूर्व दिशावर्ती अंजनक पर्वत की चारों दिशाओं में चार नंदा पुष्करणियाँ हैं । उनके नाम इस प्रकार है-नंदुत्तरा, नंदा, आनंदा और नंदिवर्धना । उन पुष्करणियों की लम्बाई एक लाख योजन है । चौड़ाई पचास हजार योजन है और गहराई एक हजार योजन है । प्रत्येक पुष्करिणी की चारों दिशाओं में त्रिसोपान प्रतिरुपक हैं । उन त्रिसोपान प्रतिरूपकों के सामने पूर्वादि चार दिशाओं में चार तोरण हैं । प्रत्येक तोरण की पूर्वादि चार दिशाओं में चार वन खण्ड हैं । वन खण्डों के नाम इसी सूत्र के पूर्वोक्त है ।

उन पुष्करणियों के मध्यभाग में चार दधिमुख पर्वत है । इनकी ऊंचाई ६४,००० योजन, भूमि में गहराई एक हजार योजन की है । वे पर्वत सर्वत्र पल्यंक के समान आकार वाले हैं । इनकी चौड़ाई दस हजार योजन की है और परिधि इकतीस हजार छसो तेईस योजन की है । ये सभी रत्नमय यावत्-रमणीय है । उन दधिमुख पर्वत के ऊपर का भाग समतल है । शेष समग्र कथन अंजनक पर्वतों के समान यावत्-उत्तर में आम्रवन तक कहना ।

दक्षिण दिशा में अंजनक पर्वत की चार दिशाओं में चार नन्दा पुष्करणियाँ हैं । उनके नाम हैं-भद्रा, विसाला, कुमुद और पोंडरिकिणी । पुष्करणियों का शेष वर्णन यावत्-दधिमुखपर्वत वनखण्ड पर्यन्त तक कहें । पश्चिम दिशा के अंजनक पर्वत की चारों दिशाओं में चार नन्दा पुष्करणियाँ हैं । उनके नाम हैं-नन्दिसेना, अमोघा, गोस्तूपा और सुदर्शना । शेष वर्णन पूर्ववत् । उत्तर दिशा के अंजनक पर्वत की चारों दिशाओं में चार नन्दा पुष्क-रिणियाँ हैं । उनके नाम हैं-विजया, वेजयन्ती, जयन्ती और अपराजिता । शेष वर्णन पूर्ववत् ।

वलयाकार विष्कम्भ वाले नन्दीश्वर द्वीप के मध्य भाग में चार विदिशाओं में चार रतिकर पर्वत हैं । उत्तर पूर्व में, दक्षिण पूर्व में, दक्षिण पश्चिम में और उत्तर पश्चिम में । वे रतिकर पर्वत एक हजार योजन ऊंचे हैं, एक हजार गाउ भूमि में गहरे हैं । झालर के समान सर्वत्र सम संस्थान वाले हैं । दस हजार योजन की उनकी चौड़ाई है । इकतीस हजार छह सौ तेईस योजन उनकी परिधि है । सभी रत्नमय, यावत्-रमणीय हैं ।

उत्तर पूर्व में स्थिति रतिकर पर्वत की चारों दिशाओं में देवेन्द्र देवराज ईशानेन्द्र की चार अग्रमहिषियों की जम्बूद्वीप जितनी बड़ी चार राजधानियाँ हैं । उनके नाम ये हैं-नंदुत्तरा, नंदा, उत्तरकुरा और देवकुरा । चार अग्रमहिषियों के नाम-कृष्णा, कृष्णराजी, रामा और रामरक्षिता । इन अग्रमहिषियों की उक्त राजधानियाँ हैं । दक्षिण पूर्व में स्थित रतिकर पर्वत की चारों दिशाओं में देवेन्द्र देवराज शक्रेन्द्र की चार अग्रमहिषियों की जम्बूद्वीप जितनी बड़ी चार राजधानियाँ हैं । उनके नाम ये हैं-समणा, सोमणसा, अर्चिमाली और मनोरमा । चार अग्रमहिषियों के नाम-पद्मा, शिवा, शची और अंजू । इन अग्रमहिषियों की उक्त राजधानियाँ हैं । दक्षिण-पश्चिम स्थित रतिकर पर्वत की चारों दिशाओं में देवेन्द्र देवराज शक्र की चार अग्रमहिषियों की जम्बूद्वीप जितनी बड़ी चार राजधानियाँ हैं । उनके नाम ये हैं-भूता, भूतवडिंसा, गोस्तूपा और सुदर्शना । अग्रमहिषियों के नाम-अमला, अप्सरा, नवमिका और रोहिणी । इन अग्रमहिषियों की उक्त राजधानियाँ हैं । उत्तर-पश्चिम में स्थित रतिकर पर्वत की चारों दिशाओं में देवेन्द्र देवराज ईशानेन्द्र की जम्बूद्वीप जितनी बड़ी चार राजधानियाँ हैं । उनके नाम ये हैं-रत्ना, रत्नोच्चया, सर्व-रत्ना और रत्नसंचया अग्रमहिषियों के नाम-वसु, वसुगुप्ता, वसुमित्रा और वसुंधरा इन अग्रमहिषियों की उक्त राजधानियाँ हैं ।

**सूत्र - ३३०**

सत्य चार प्रकार का है । यथा-नाम सत्य, स्थापना सत्य, द्रव्य सत्य और भाव सत्य ।

**सूत्र - ३३१**

आजीविका (गोशालक) मत वालों का तप चार प्रकार का है । यथा-उग्र तप, घोर तप, रसनिर्यूह तप, जिह्वेन्द्रिय प्रतिसंलीनता ।

**सूत्र - ३३२**

संयम चार प्रकार का है । यथा-मन संयम, वचन संयम, काय संयम और उपकरण संयम ।

त्याग चार प्रकार का है । मनत्याग, वचनत्याग, कायत्याग, उपकरण त्याग ।

अकिंचनता चार प्रकार की है ।-मन अकिंचनता, वचन अकिंचनता, काय अकिंचनता, उपकरण अकिंचनता

## स्थान-४ – उद्देशक-३

**सूत्र - ३३३**

रेखाएं चार प्रकार की हैं । यथा-पर्वत की रेखा, पृथ्वी की रेखा, वालु की रेखा और पानी की रेखा । इसी प्रकार क्रोध चार प्रकार का है । यथा-पर्वत की रेखा समान, पृथ्वी की रेखा समान, वालु की रेखा समान, पानी की रेखा समान । पर्वत की रेखा के समान क्रोध करने वाला जीव मरकर नरक में उत्पन्न होता है । पृथ्वी की रेखा के समान क्रोध करने वाला जीव मरकर तिर्यंच योनि में उत्पन्न होता है । वालु की रेखा के समान क्रोध करने वाला जीव मरकर मनुष्य योनि में उत्पन्न होता है । पानी की रेखा के समान क्रोध करने वाला जीव मरकर देव योनि में उत्पन्न होता है ।

उदक चार प्रकार का होता है । यथा-कर्दमोदक, खंजनोदक, वालुकोदक और शैलोदक । इसी प्रकार भाव चार प्रकार का है । यथा-कर्दमोदक समान, खंजनोदक समान, वालुकोदक समान और शैलोदक समान । कर्दमो-दक समान भाव रखने वाला जीव मरकर नरक में यावत् शैलोदक समान भाव रखने वाला जीव मरकर देवयोनि में उत्पन्न होता है ।

**सूत्र - ३३४**

पक्षी चार प्रकार के हैं । यथा-एक पक्षी रुत सम्पन्न (मधुर स्वर वाला) है, किन्त रूप सम्पन्न नहीं है । एक पक्षी रूप सम्पन्न है किन्तु रुत सम्पन्न (मधुर स्वर वाला) नहीं है । एक पक्षी रूप सम्पन्न भी है और रुत सम्पन्न भी है । एक पक्षी रुत सम्पन्न भी नहीं है और रूप सम्पन्न भी नहीं है । इसी प्रकार पुरुष वर्ग भी चार प्रकार का है ।

पुरुष वर्ग चार प्रकार का है । यथा-एक पुरुष ऐसा सोचता है कि मैं अमुक के साथ प्रीति करूँ और उसके साथ प्रीति करता भी है । एक पुरुष ऐसा सोचता है कि मैं अमुक के साथ प्रीति करूँ किन्तु उसके साथ प्रीति नहीं

करता है । एक पुरुष ऐसा सोचता है कि अमुक के साथ प्रीति न करूँ किन्तु उसके साथ प्रीति कर लेता है । एक पुरुष ऐसा सोचता है कि अमुक के साथ प्रीति न करूँ और उसके साथ प्रीति करता भी नहीं है ।

पुरुष वर्ग चार प्रकार का है । यथा–एक पुरुष स्वयं भोजन आदि से तृप्त होकर आनन्दित होता है किन्तु दूसरे को तृप्त नहीं करता । एक पुरुष दूसरे को भोजन आदि से तृप्त कर प्रसन्न होता है किन्तु स्वयं को तृप्त नहीं करता । एक पुरुष स्वयं भी भोजन आदि से तृप्त होता है और अन्य को भी भोजन आदि से तृप्त करता है । एक पुरुष स्वयं भी तृप्त नहीं होता और अन्य को भी तृप्त नहीं करता ।

पुरुष वर्ग चार प्रकार का है । एक पुरुष ऐसा सोचता है कि मैं अपने सद्‌व्यवहार से अमुक में विश्वास उत्पन्न करूँ और विश्वास उत्पन्न करता भी है । एक पुरुष ऐसा सोचता है कि मैं अपने सद्‌व्यवहार से अमुक में विश्वास उत्पन्न करूँ किन्तु विश्वास उत्पन्न नहीं करता । एक पुरुष ऐसा सोचता है कि मैं अमुक में विश्वास उत्पन्न नहीं कर सकूँगा किन्तु विश्वास उत्पन्न करने में सफल हो जाता है । एक पुरुष ऐसा सोचता है कि मैं अमुक में विश्वास उत्पन्न नहीं कर सकूँगा और विश्वास उत्पन्न कर भी नहीं सकता है ।

एक पुरुष स्वयं विश्वास करता है किन्तु दूसरे में विश्वास उत्पन्न नहीं कर पाता । एक पुरुष दूसरे में विश्वास उत्पन्न कर देता है, किन्तु स्वयं विश्वास नहीं करता । एक पुरुष स्वयं भी विश्वास करता है और दूसरे में भी विश्वास उत्पन्न करता है । एक पुरुष स्वयं भी विश्वास नहीं करता और न दूसरे में विश्वास उत्पन्न करता है ।

**सूत्र - ३३५**

वृक्ष चार प्रकार के हैं । यथा–पत्रयुक्त, पुष्पयुक्त, फलयुक्त और छायायुक्त । इसी प्रकार पुरुष वर्ग चार प्रकार का है । यथा–पत्ते वाले वृक्ष के समान, पुष्प वाले वृक्ष के समान, फल वाले वृक्ष के समान, छाया वाले वृक्ष के समान ।

**सूत्र - ३३६**

भारवहन करने वाले के चार विश्राम स्थल हैं । यथा–एक भारवाहक मार्ग में चलता हुआ एक खंधे से दूसरे खंधे पर भार रखता है । एक भारवाहक कहीं पर भार रखकर मल-मूत्रादि का त्याग करता है । एक भारवाहक नागकुमार या सुपर्णकुमार के मंदिर में रात्रि विश्राम लेता है । एक भारवाहक अपने घर पहूँच जाता है ।

इसी प्रकार श्रमणोपासक के चार विश्राम हैं । यथा–जो श्रमणोपासक शीलव्रत, गुणव्रत, विरमणव्रत या प्रत्याख्यान-पौषधोपवास करते हैं । जो श्रमणोपासक सामायिक या देशावगासिक धारण करता है । जो श्रमणोपासक चौदस अष्टमी, अमावास्या या पूर्णिमा के दिन पौषध करता है । जो श्रमणोपासक भक्त-पान का प्रत्याख्यान करता है और पादप के समान शयन करके मरण की कामना नहीं करता है ।

**सूत्र - ३३७**

पुरुष वर्ग चार प्रकार का है । यथा–उदितोदित-यहाँ भी उदय (समृद्ध) और आगे भी उदय (परम सुख) है । उदितास्तमित-यहाँ उदय है किन्तु आगे उदय नहीं । अस्तमितोदित-यहाँ उदय नहीं है किन्तु आगे उदय है । अस्तमितास्तमित-यहाँ भी और आगे भी उदय नहीं है । भरत चक्रवर्ती उदितोदित है; ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती उदितास्तमित हैं; हरिकेशबल अणगार अस्तमितोदित हैं; कालशौकरिक अस्तमितास्तमित है ।

**सूत्र - ३३८**

युग्म चार प्रकार का है । यथा–कृतयुग्म-एक ऐसी संख्या जिसके चार का भाग देने पर शेष चार रहे । त्र्योज-एक ऐसी संख्या जिसके तीन का भाग देने पर शेष तीन रहे । द्वापर-एक ऐसी संख्या जिसके दो भाग देने पर शेष दो रहे । कल्योज-एक ऐसी संख्या जिसके एक का भाग देने पर शेष एक रहे । नारक जीवों के चार युग्म हैं। इसी प्रकार २४ दण्डकवर्ती जीवों के चार युग्म हैं ।

**सूत्र - ३३९**

शूर चार प्रकार के हैं । यथा–क्षमासूर, तपशूर, दानशूर और युद्धशूर । क्षमाशूर अरिहंत हैं, तपशूर अणगार हैं, दानशूर वैश्रमण हैं और युद्धशूर वासुदेव हैं ।

**सूत्र - ३४०**

पुरुष वर्ग चार प्रकार का है । यथा–एक पुरुष उच्च है (लौकिक वैभव से श्रेष्ठ है) और उच्छंद है (श्रेष्ठ अभिप्राय वाला है), एक पुरुष उच्च है किन्तु नीच छंद है (नीच अभिप्राय वाला है), एक पुरुष नीच है (वैभवहीन है) किन्तु उच्चछंद है, एक पुरुष नीच है और नीच छंद है (नीच अभिप्राय वाला) है ।

**सूत्र - ३४१**

असुरकुमारों की चार लेश्या हैं । कृष्णलेश्या, नील लेश्या, कापोत लेश्या और तेजोलेश्या । इसी प्रकार शेष भवनवासी देवों की, पृथ्वीकाय, अप्काय, वनस्पतिकाय और वाणव्यन्तरों की चार लेश्याएं हैं ।

**सूत्र - ३४२**

यान चार प्रकार के हैं । एक यान युक्त है (वृषभ आदि से युक्त है) और युक्त है (सामग्री से भी युक्त है), एक यान युक्त है (वृषभ आदि से युक्त है) किन्तु अयुक्त है (सामग्री रहित है), एक यान अयुक्त है (वृषभ आदि से रहित है) किन्तु युक्त है (सामग्री से युक्त है), एक यान अयुक्त (वृषभ आदि से रहित है) और अयुक्त है (सामग्री से भी रहित है) । इसी प्रकार पुरुष वर्ग चार प्रकार का है । यथा–एक पुरुष युक्त है (धनादि से युक्त है) और युक्त है (उचित अनुष्ठान से भी युक्त है), एक पुरुष युक्त है (धनादि से युक्त है) किन्तु अयुक्त है (उचित अनुष्ठान से अयुक्त है), एक पुरुष अयुक्त है (धनादि से अयुक्त है) किन्तु युक्त है (उचित अनुष्ठान से युक्त है), एक पुरुष अयुक्त है (धनादि से रहित है) और अयुक्त है (उचित अनुष्ठान से भी रहित है) ।

यान चार प्रकार के हैं । यथा–एक यान युक्त है (वृषभ आदि से युक्त है) और युक्त परिणत है (चलने के लिए तैयार है), एक यान युक्त है किन्तु अयुक्त परिणत है (चलने योग्य नहीं है), एक यान अयुक्त है (वृषभ आदि से रहित है) किन्तु युक्त है, एक यान अयुक्त है और अयुक्त परिणत है । इसी प्रकार पुरुष चार प्रकार के हैं । यथा–एक पुरुष युक्त है (धनधान्य से परिपूर्ण है) और युक्त परिणत है (उचित प्रवृत्ति वाला है) शेष तीन भांगे पूर्वोक्त क्रम से कहे ।

यान चार प्रकार के हैं । यथा–एक यान युक्त है (वृषभ आदि से युक्त है) और युक्त रूप है (सुन्दरकार है) । शेष तीन भांगे पूर्वोक्त क्रम से कहे । इसी प्रकार पुरुष चार प्रकार का है । यथा–एक पुरुष युक्त है और युक्त रूप है। शेष पूर्ववत् जाने ।

यान चार प्रकार के हैं । एक यान युक्त है (वृषभ आदि से युक्त है) और शोभा युक्त है । शेष तीन भांगे पूर्वोक्त क्रम से कहे । इसी प्रकार पुरुष चार प्रकार के हैं । एक पुरुष युक्त है (धन से युक्त है) और शोभा युक्त है । शेष तीन भांगे पूर्वोक्त कहे ।

वाहन चार प्रकार के हैं । यथा–एक वाहन बैठने की सामग्री (मंच आदि) से युक्त है और वेग युक्त है । एक वाहन बैठने की सामग्री (मंच आदि) से युक्त है किन्तु वेग युक्त नहीं है । एक वाहन बैठने की सामग्री युक्त नहीं है किन्तु वेग युक्त है । एक वाहन बैठने की सामग्री युक्त भी नहीं है और वेग युक्त भी नहीं है ।

इसी प्रकार पुरुष चार प्रकार के हैं यथा–एक पुरुष धनधान्य सम्पन्न है और उत्साही है । एक पुरुष धनधान्य सम्पन्न है किन्तु उत्साही नहीं है । एक पुरुष उत्साही है किन्तु धन धान्य सम्पन्न नहीं है । एक पुरुष धनधान्य सम्पन्न भी नहीं है और उत्साही भी नहीं है । यान के चार सूत्रों के समान युग्म के चार सूत्र भी कहें और पुरुष सूत्र भी पूर्ववत् कहे ।

सारथी चार प्रकार के हैं । यथा–एक सारथी रथ के अश्व जोतता है किन्तु खोलता नहीं है । एक सारथी रथ के अश्व खोलता है किन्तु जोतता नहीं है । एक सारथी रथ में अश्व जोतता भी है और खोलता भी है । एक सारथी रथ में अश्व जोतता भी नहीं है और खोलता भी नहीं है । इसी प्रकार पुरुष (श्रमण) चार प्रकार के हैं । यथा–एक श्रमण (किसी व्यक्ति को) संयम साधना में लगाता है किन्तु अतिचारों से मुक्त नहीं करता । एक श्रमण संयमी को अतिचारों से मुक्त करता है किन्तु संयम साधना में नहीं लगाता । एक श्रमण संयम साधना में भी लगाता है और अतिचारों से मुक्त भी करता है । एक श्रमण संयम साधना में भी नहीं लगाता और अतिचारों से भी मुक्त नहीं करता

हय (अश्व) चार प्रकार के हैं । एक अश्व पलाण युक्त है और वेग युक्त है । यान के चार सूत्रों के समान हय के चार सूत्र कहे और पुरुष सूत्र भी पूर्ववत कहे । हय के चार सूत्रों के समान गज के चार सूत्र कहें और पुरुष सूत्र भी पूर्ववत कहे ।

युग्यचर्या (अश्व आदि की चर्या) चार प्रकार की है । यथा–एक अश्व मार्ग में चलता है किन्तु उन्मार्ग में नहीं चलता है । एक अश्व उन्मार्ग में चलता है किन्तु मार्ग में नहीं चलता है । एक अश्व मार्ग में भी चलता है और उन्मार्ग में भी चलता है । एक अश्व मार्ग में भी नहीं चलता और उन्मार्ग में भी नहीं चलता । इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के हैं यथा–एक पुरुष संयम मार्ग में चलता है किन्तु उन्मार्ग में नहीं चलता । शेष तीन भांगे पूर्वोक्त क्रम से कहे ।

पुष्प चार प्रकार के हैं । यथा–एक पुष्प सुन्दर है किन्तु सुगन्धित नहीं है । एक पुष्प सुगन्धित है किन्तु सुन्दर नहीं है । एक पुष्प सुन्दर भी है और सुगन्धित भी है । एक पुष्प सुन्दर भी नहीं है और सुगन्धित भी नहीं है । इसी प्रकार पुरुष चार प्रकार के हैं । यथा–एक पुरुष सुन्दर है किन्तु सदाचारी नहीं है । शेष तीन भांगे पूर्ववत् कहे ।

जाति सम्पन्न और कुल सम्पन्न, जाति सम्पन्न और बल सम्पन्न । जाति सम्पन्न और रूप सम्पन्न, जाति सम्पन्न और श्रुत सम्पन्न । जाति सम्पन्न और शील सम्पन्न, जाति सम्पन्न और चारित्र सम्पन्न । कुल सम्पन्न और बल सम्पन्न, कुल सम्पन्न और रूप सम्पन्न । कुल सम्पन्न और श्रुत सम्पन्न, कुल सम्पन्न और शील सम्पन्न । कुल सम्पन्न और चारित्र सम्पन्न, बल सम्पन्न और रूप सम्पन्न । बल सम्पन्न और श्रुत सम्पन्न । बल सम्पन्न और शील सम्पन्न । बल सम्पन्न और चारित्र सम्पन्न । रूप सम्पन्न और शील सम्पन्न, रूप सम्पन्न और चारित्र सम्पन्न । श्रुत सम्पन्न और चारित्र सम्पन्न, श्रुत सम्पन्न और चारित्र सम्पन्न । शील सम्पन्न और चारित्र सम्पन्न । इनके चार-चार भांगे पूर्वोक्त क्रम से कहे ।

फल चार प्रकार के हैं । यथा–आंबले जैसा मधुर, दाख जैसा मधुर, दूध जैसा मधुर, खांड जैसा मधुर । इसी प्रकार आचार्य चार प्रकार के हैं । यथा–मधुर आंवले के समान जो आचार्य है वे मधुर-भाषी हैं और उपशान्त है । मधुर दाख समान जो आचार्य है वे अधिक मधुरभाषी है और अधिक उपशान्त है । मधुर दूध के समान जो आचार्य है वे विशेष मधुरभाषी है और अत्यधिक उपशान्त है । मधुर शर्करा समान जो आचार्य है वे अधिकतम मधुरभाषी है और अधिक उपशान्त है ।

पुरुष चार प्रकार के हैं । यथा–एक पुरुष अपनी सेवा करता है किन्तु दूसरे की नहीं करता । एक पुरुष दूसरे की सेवा करता है अपनी नहीं करता । एक पुरुष अपनी सेवा भी करता है और दूसरे की भी करता है । एक पुरुष अपनी सेवा भी नहीं करता और दूसरे की भी नहीं करता ।

पुरुष चार प्रकार के हैं । यथा–एक पुरुष दूसरे की सेवा करता है किन्तु अपनी सेवा नहीं करवाता । एक पुरुष दूसरे से सेवा करवाता है किन्तु स्वयं सेवा नहीं करता । एक पुरुष दूसरे की सेवा भी करता है और दूसरे से सेवा करवाता है । एक पुरुष न दूसरे की सेवा करता है और न दूसरे से सेवा करवाता है ।

पुरुष चार प्रकार के हैं । यथा–एक पुरुष कार्य करता है किन्तु मान नहीं करता । एक पुरुष मान करता है किन्तु कार्य नहीं करता । एक कार्य भी करता है और मान भी करता है । एक कार्य भी नहीं करता है और मान भी नहीं करता है ।

पुरुष चार प्रकार के हैं । यथा–एक पुरुष (श्रमण) गण के लिए आहारादि का संग्रह करता है किन्तु मान नहीं करता, एक पुरुष गण के लिए संग्रह नहीं करता किन्तु मान करता है । एक पुरुष गण के लिए भी संग्रह करता है और मान भी करता है । एक पुरुष गण के लिए संग्रह भी नहीं करता और अभिमान भी नहीं करता है ।

पुरुष चार प्रकार के होते हैं । यथा–एक पुरुष निर्दोष साधु समाचारी का पालन करके गण की शोभा बढ़ाता है और मान नहीं करता । एक पुरुष मान करता है किन्तु गण की शोभा नहीं बढ़ाता है । एक पुरुष गण की शोभा भी बढ़ाता है और मान भी करता है । एक पुरुष गण की शोभा भी नहीं बढ़ाता और मान भी नहीं करता ।

पुरुष चार प्रकार के हैं । यथा–एक पुरुष (श्रमण) गण की शुद्धि (यथायोग्य प्रायश्चित्त देकर) करता है किन्तु मान नहीं करता । शेष तीन भांगे पूर्वोक्त कहे ।

पुरुष चार प्रकार के हैं । यथा-एक पुरुष साधु वेष छोड़ता है किन्तु चारित्र धर्म नहीं छोड़ता । एक पुरुष चारित्र धर्म छोड़ता है किन्तु साधु वेष नहीं छोड़ता । एक पुरुष साधु वेष भी छोड़ता है और चारित्र धर्म भी छोड़ता है । एक पुरुष साधु वेष भी नहीं छोड़ता और चारित्र धर्म भी नहीं छोड़ता ।

पुरुष चार प्रकार के हैं । यथा-एक पुरुष (श्रमण) सर्वज्ञ धर्म को छोड़ता है किन्तु गण की मर्यादा को नहीं छोड़ता है । एक पुरुष सर्वज्ञ कथित धर्म को नहीं छोड़ता है किन्तु गण की मर्यादा को छोड़ देता है । एक पुरुष सर्वज्ञ कथित धर्म भी छोड़ देता है और गण की मर्यादा भी छोड़ देता है । एक पुरुष सर्वज्ञ कथित धर्म भी नहीं छोड़ता है और गण की मर्यादा भी नहीं छोड़ता है ।

पुरुष चार प्रकार के हैं । यथा-एक पुरुष है उसे धर्म प्रिय है किन्तु वह धर्म में दृढ़ नहीं है । एक पुरुष है वह धर्म में दृढ़ है किन्तु उसे धर्म प्रिय नहीं है । एक पुरुष है उसे धर्म प्रिय भी है और वह धर्म में दृढ़ भी है । एक पुरुष है उसे धर्म भी प्रिय नहीं है और वह धर्म में दृढ़ भी नहीं है ।

आचार्य चार प्रकार के हैं । यथा-एक आचार्य दीक्षा देते हैं किन्तु महाव्रतों की प्रतिज्ञा नहीं कराते हैं । एक आचार्य महाव्रतों की प्रतिज्ञा कराते हैं किन्तु दीक्षा नहीं देते । एक आचार्य दीक्षा भी देते हैं और महाव्रत भी धारण कराते हैं । एक आचार्य न दीक्षा देते हैं और न महाव्रत धारण कराते हैं ।

आचार्य चार प्रकार के हैं । यथा-एक आचार्य शिष्य को आगम ज्ञान प्राप्त करने योग्य बना देते हैं । किन्तु स्वयं आगमों का अध्ययन नहीं कराते । एक आचार्य आगमों का अध्ययन कराते हैं किन्तु शिष्य को आगम ज्ञान प्राप्त करने योग्य नहीं बनाते । एक आचार्य शिष्य को योग्य भी बनाते हैं और वाचना भी देते हैं । एक आचार्य न शिष्य को योग्य बनाते हैं और न वाचना देते हैं ।

अन्तेवासी (शिष्य) चार प्रकार के हैं । एक प्रव्रजित शिष्य है किन्तु उपस्थापित शिष्य नहीं है । एक उपस्थापित शिष्य है किन्तु प्रव्रजित शिष्य नहीं है । एक शिष्य प्रव्रजित भी है और उपस्थापित भी है । एक शिष्य प्रव्रजित और उपस्थापित भी नहीं है ।

शिष्य चार प्रकार के हैं । एक उद्देशना शिष्य है किन्तु वाचना शिष्य नहीं है । एक वाचना शिष्य है किन्तु उद्देशना शिष्य नहीं है । एक उद्देशना शिष्य भी है और वाचना शिष्य भी है । एक उद्देशना शिष्य भी नहीं है और वाचना शिष्य भी नहीं है ।

निर्ग्रन्थ चार प्रकार के हैं । यथा-एक निर्ग्रन्थ दीक्षा में ज्येष्ठ है किन्तु महापाप कर्म और महापाप क्रिया करता है । न कभी आतापना लेता है और न पंचसमितियों का पालन ही करता है । अतः वह धर्म का आराधक नहीं है । एक निर्ग्रन्थ दीक्षा में ज्येष्ठ है किन्तु पापकर्म और पाप क्रिया कदापि नहीं करता है । आतापना लेता है और समितियों का पालन भी करता है । अतः वह धर्म का आराधक होता है । एक निर्ग्रन्थ दीक्षा में लघु है किन्तु महापाप कर्म और महापाप क्रिया करता है, न कभी आतापना लेता है और न समितियों का पालन करता है । अतः वह धर्म का आराधक नहीं होता है । एक निर्ग्रन्थ दीक्षा में लघु है किन्तु कदापि पाप कर्म और पाप क्रिया नहीं करता है, आतापना लेता है और समितियों का पालन भी करता है । अतः वह धर्म का आराधक होता है । इसी प्रकार निर्ग्रन्थियों, श्रावकों और श्राविकाओं के भांगे कहें ।

**सूत्र - ३४३**

श्रमणोपासक चार प्रकार के हैं । यथा-१. माता-पिता के समान, २. भाई के समान, ३. मित्र के समान और ४. शौक के समान । श्रमणोपासक चार प्रकार के हैं । यथा-१. आदर्श समान । २. पताका समान । ३. स्थाणु समान । ४. तीक्ष्ण काँटे के समान ।

**सूत्र - ३४४**

भगवान महावीर के जो श्रमणोपासक सौधर्मकल्प के अरुणाभ विमान में उत्पन्न हुए हैं उनकी चार पल्यो की स्थिति है ।

**सूत्र - ३४५**

देवलोक में उत्पन्न होते ही कोई देवता मनुष्य लोक में आना चाहता है किन्तु चार कारणों से वह नहीं आ सकता । यथा-१. देवलोक में उत्पन्न होते ही एक देवता दिव्य कामभोगों में मूर्च्छित, गृद्ध, बद्ध एवं आसक्त हो जाता है, अतः वह मानव कामभोगों को न प्राप्त करना चाहता है और न उन्हें श्रेष्ठ मानता है । मानव कामभोगों से मुझे कोई लाभ नहीं है-ऐसा निश्चय कर लेता है । मुझे मानव कामभोग मिले ऐसी कामना भी नहीं करता और मानव कामभोगों में मैं कुछ समय लगा रहूँ-ऐसा विकल्प भी मन में नहीं लाता । २. देवलोक में उत्पन्न होते ही एक देवता दिव्य कामभोगों में मूर्च्छित यावत्-आसक्त हो जाता है, अतः उसका मानव प्रेम दैवी प्रेम में परिणत हो जाता है । ३. देवलोक में उत्पन्न होते ही एक देवता दिव्य कामभोगों में मूर्च्छित यावत्-आसक्त हो जाता है, अतः उसके मन में यह विकल्प आता है कि ''मैं अभी जाऊंगा या एक मुहूर्त्त पश्चात् जाऊंगा'' ऐसा सोचते-सोचते उसके पूर्व जन्म के प्रेमी कालधर्म को प्राप्त हो जाते हैं । ४. देवलोक में उत्पन्न होते हुए ही एक देवता दिव्य कामभोगों में मूर्च्छित यावत्-आसक्त हो जाता है, अतः उसे मनुष्य लोक की गन्ध भी अच्छी नहीं लगती । क्योंकि मनुष्य लोक की गन्ध चारसो पाँच योजन तक जाती है ।

देवलोक से उत्पन्न होते ही देवता मनुष्य लोक में आना चाहता है और इन चार कारणों से आ भी सकता है। १. देवलोक में उत्पन्न होते ही देवता दिव्य कामभोगों में मूर्च्छित यावत्-आसक्त नहीं होता क्योंकि उसके मन में यह विकल्प आता है कि मेरे मनुष्य भव क आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्तक, स्थविर, गणी, गणधर और गणावच्छेदक है उनकी कृपा से मुझे यह दिव्य देवसृष्टि, दिव्य देवद्युति प्राप्त हुई है, अतः मैं जाऊं और उन्हें वन्दना करूँ-यावत् पर्युपासना करूँ । २. देवलोक में उत्पन्न होते ही देवता दिव्य कामभोगों में मूर्च्छित यावत् आसक्त नहीं होता, क्योंकि मन में यह विकल्प आता है कि इस मनुष्य में जो ज्ञानी या दुष्कर तप करने वाले तपस्वी हैं उन भगवंतों की वन्दना करूँ-यावत् पर्युपासना करूँ । ३. देवलोक में उत्पन्न होते ही देवता दिव्य कामभोगों में मूर्च्छित यावत्-आसक्त नहीं होता क्योंकि उसके मन में यह विकल्प आता है कि-मेरे मनुष्य भव के माता-पिता यावत्-पुत्रवधू है, उनके समीप जाऊं और उन्हें दिखाऊं कि मुझे ऐसी दिव्य देवसृष्टि और दिव्य देवद्युति प्राप्त हुई है । ४. देवलोक में उत्पन्न होते ही देवता दिव्य कामभोगों में मूर्च्छित यावत् आसक्त नहीं होता क्योंकि उसके मन में यह विकल्प आता है कि-मेरे मनुष्यभव के मित्र, सखी, सुहृत, सखा या संगी हैं उनके और मेरे साथ यह वादा हो चूका है कि-जो पहले मरेगा वह कहने के लिए आयेगा । इन चार कारणों से देवता देवलोक में उत्पन्न होते ही मूर्च्छित यावत्-आसक्त नहीं होता है और मनुष्य लोक में आ सकता है ।

**सूत्र - ३४६**

लोक में अन्धकार चार कारणों से होता है । यथा-अर्हन्तों के मोक्ष जाने पर, अर्हन्त कथित धर्म के लुप्त होने पर, पूर्वों का ज्ञान नष्ट होने पर, अग्नि न रहने पर ।

लोक में उद्योत चार कारणों से होता है । यथा-अर्हन्तों के जन्म समय में, अर्हन्तों के प्रव्रजित होते समय, अर्हन्तों के केवलज्ञान महोत्सव में, अर्हन्तों के निर्वाण महोत्सव में ।

''इसी प्रकार देवलोक में अन्धकार, उद्योत, देव समुदाय का एकत्र होना, उत्साहित होना और आनन्दजन्य कोलाहल होना'' के चार-चार भांगे कहें ।

देवेन्द्र-यावत् लोकान्तिक देव चार कारणों से मनुष्य लोक में आते हैं । तीसरे स्थान में कथित तीन कारणों में ''अरिहंतों के निर्वाणमहोत्सव का एक कारण बढ़ाए ।''

**सूत्र - ३४७**

दुखशय्या चार प्रकार की है । उनमें यह प्रथम दुख शय्या है । यथा-एक व्यक्ति मुण्डित होकर यावत् प्रव्रजित होकर निर्ग्रन्थ प्रवचन में शंका, कांक्षा, विचिकित्सा करता है तो वह मानसिक दुविधा में धर्म विपरीत विचारों से निर्ग्रन्थ प्रवचन में श्रद्धा, प्रतीति एवं रुचि नहीं रखता है । निर्ग्रन्थ प्रवचन में अश्रद्धा, अप्रतीति और अरुचि रखने पर

श्रमण का मन सदा ऊंचा नीचा रहता है अतः वह धर्म भ्रष्ट हो जाता है । यह दूसरी सुख शय्या है । यथा-''एक व्यक्ति मुण्डित यावत्-प्रव्रजित होकर स्वयं को जो आहार आदि प्राप्त है, उससे सन्तुष्ट नहीं होता है और दूसरे को जो आहार आदि प्राप्त है, उनकी ईच्छा करता है'' ऐसे श्रमण का मन सदा ऊंचा-नीचा रहता है अतः वह धर्म भ्रष्ट हो जाता है । यह तीसरी दुख शय्या है-एक व्यक्ति मुण्डित यावत्-प्रव्रजित होकर जो दिव्य मानवी कामभोगों का आस्वादन-यावत् -अभिलाषा करता है । उस श्रमण का मन सदा डांवाडोल रहता है अतः वह धर्मभ्रष्ट हो जाता है । यह चौथी दुःख शय्या है-एक व्यक्ति मुण्डित यावत् प्रव्रजित होकर ऐसा सोचता है कि मैं जब घर पर था तब मालिश, मर्दन, स्नान आदि नियमित करता था और जब से मैं मुण्डित यावत् प्रव्रजित हुआ हूँ तब से मैं मालिश, मर्दन आदि नहीं कर पाता हूँ-इस प्रकार श्रमण जो मालिश यावत् स्नान आदि की ईच्छा यावत् अभिलाषा करता है उसका मन सदा डांवाडोल रहता है अतः वह धर्म भ्रष्ट हो जाता है ।

सुखशय्या चार प्रकार की है उनमें से यह प्रथम सुख शय्या है । यथा-एक व्यक्ति मुण्डित होकर यावत्-प्रव्रजित होकर निर्ग्रन्थ प्रवचन में शंका, कांक्षा, विचिकित्सा नहीं करता है तो वह न दुविधा में पड़ता है और न धर्म विपरीत विचार रखता है । निर्ग्रन्थ प्रवचन में श्रद्धा, प्रतीति एवं रुचि रखने पर श्रमण का मन डांवाडोल नहीं होता, अतः वह धर्म भ्रष्ट भी नहीं होता । यह दूसरी सुख शय्या है-एक व्यक्ति मुण्डित यावत् प्रव्रजित होकर स्वयं को प्राप्त आहार आदि से संतुष्ट रहता है और अन्य को प्राप्त आहार आदि की अभिलाषा नहीं रखता है-ऐसे श्रमण का मन कभी ऊंचा नीचा नहीं होता और न वह धर्म-भ्रष्ट होता है । यह तीसरी सुख शय्या है-एक व्यक्ति मुण्डित यावत् प्रव्रजित होकर दिव्य मानवी कामभोगों का आस्वादन-यावत् अभिलाषा नहीं करता है उसका मन डांवाडोल नहीं होता है, अतः धर्म भ्रष्ट भी नहीं होता । यह चौथी सुख शय्या है-एक व्यक्ति मुण्डित यावत् प्रव्रजित होकर ऐसा सोचता है कि-'अरिहंत भगवंत आरोग्यशाली, बलवान शरीर के धारक, उदार कल्याण विपुल कर्मक्षयकारी तपःकर्म को अंगीकार करते हैं, तो मुझे तो जो वेदना आदि उपस्थित हुई है उसे सम्यक् प्रकार से सहन करना चाहिए । यदि मैं आगत वेदनी कर्मों को सम्यक् प्रकार से सहन नहीं करूँगा तो एकान्त पापकर्म का भागी होऊंगा। यदि सम्यक् प्रकार से सहन करूँगा तो एकान्त कर्म निर्जरा कर सकूँगा।' इस प्रकार धर्म में स्थिर रहता है ।

**सूत्र - ३४८**

चार प्रकार के व्यक्ति आगम वाचना के अयोग्य होते हैं । यथा-अविनयी, दूध आदि पौष्टिक आहारों का अधिक सेवन करने वाला, अनुपशांत अर्थात् अति क्रोधी मायावी ।

चार प्रकार के आगम वाचना के योग्य होते हैं । यथा-विनयी, दूध आदि पौष्टिक आहारों का अधिक सेवन न करने वाला, उपशान्त-क्षमाशील, कपट रहित ।

**सूत्र - ३४९**

पुरुष वर्ग चार प्रकार का है । यथा-एक अपना भरण-पोषण करता है किन्तु दूसरे का भरण-पोषण नहीं करता । एक अपना भरण-पोषण नहीं करता किन्तु दूसरों का भरण-पोषण करता है । एक अपना भी और दूसरे का भी भरण-पोषण करता है । एक अपना भी भरण-पोषण नहीं करता और दूसरे का भी भरण-पोषण नहीं करता है ।

पुरुष वर्ग चार प्रकार का है । यथा-एक पुरुष पहले भी दरिद्री होता है और पीछे भी दरिद्री रहता है । एक पुरुष पहले दरिद्री होता है किन्तु पीछे धनवान हो जाता है । एक पुरुष पहले धनवान होता है किन्तु पीछे दरिद्री हो जाता है । एक पुरुष पहले भी धनवान होता है और पीछे भी धनवान रहता है ।

पुरुष वर्ग चार प्रकार का है । यथा-एक पुरुष दरिद्री होता है और दुराचारी भी होता है । एक पुरुष दरिद्री होता है किन्तु सदाचारी होता है । एक पुरुष धनवान होता है किन्तु दुराचारी होता है । एक पुरुष धनवान भी होता है और सदाचारी भी होता है ।

पुरुष वर्ग चार प्रकार का है । यथा-एक दरिद्री है किन्तु दुष्कृत्यों में आनन्द मानने वाला है । एक दरिद्री किन्तु सत्कार्यों में आनन्द मानने वाला है । एक धनी है किन्तु दुष्कृत्यों में आनन्द मानने वाला है । एक धनी भी है और

सत्कार्यों में भी आनन्द मानने वाला है ।

पुरुष वर्ग चार प्रकार का है । यथा-एक पुरुष दरिद्री है और दुर्गति में जाने वाला है । एक पुरुष दरिद्री है और सुगति में जाने वाला है । एक पुरुष धनवान है और दुर्गति में जाने वाला है । एक पुरुष धनवान है और सुगति में जाने वाला है ।

पुरुष वर्ग चार प्रकार का है । यथा-एक पुरुष दरिद्री है और दुर्गति में गया है । एक पुरुष दरिद्र है और सुगति में गया है । एक पुरुष धनवान है और दुर्गति में गया है । एक पुरुष धनवान है और सुगति में गया है ।

पुरुष वर्ग चार प्रकार का है । एक पुरुष पहले अज्ञानी है और पीछे भी अज्ञानी है । एक पुरुष पहले अज्ञानी है पीछे ज्ञानवान हो जाता है । एक पुरुष पहले ज्ञानी है बाद में अज्ञानी बन जाता है । एक पुरुष पहले भी ज्ञानी है और पीछे भी ज्ञानी है ।

पुरुष वर्ग चार प्रकार का है । यथा-एक पुरुष मलिन स्वभाव वाला है और उसके पास अज्ञान का बल है । एक पुरुष मलिन स्वभाव वाला है और उसके पास ज्ञान का बल है । एक पुरुष निर्मल स्वभाव वाला है किन्तु उसके पास अज्ञान का बल है । एक पुरुष निर्मल स्वभाव वाला है और उसके पास ज्ञान का बल है ।

पुरुष वर्ग चार प्रकार का है । यथा-एक पुरुष मलिन स्वभाव वाला है और अज्ञान बल में आनन्द मानने वाला है । एक पुरुष मलिन स्वभाव वाला है किन्तु ज्ञान बल में आनन्द मानने वाला है । एक पुरुष निर्मल स्वभाव वाला है किन्तु अज्ञान बल में आनन्द मानने वाला है । एक पुरुष निर्मल स्वभाव वाला है और ज्ञान बल में आनन्द मानता है ।

पुरुष वर्ग चार प्रकार का है । यथा-एक पुरुष ने कृषि आदि सावद्य कर्मों का तो परित्याग कर दिया है किन्तु सदोष आहार आदि का परित्याग नहीं किया है । एक पुरुष ने सदोष आहार आदि का तो परित्याग कर दिया है किन्तु कृषि आदि सावद्यकर्मों का परित्याग नहीं किया है । एक पुरुष ने कृषि आदि सावद्य कर्मों का भी परि-त्याग कर दिया है और सदोष आहार आदि का भी परित्याग कर दिया है । एक पुरुष ने कृषि आदि सावद्य कर्मों का भी परित्याग नहीं किया है और सदोष आहार आदि का भी परित्याग नहीं किया है ।

पुरुष वर्ग चार प्रकार का है । यथा-एक पुरुष ने कृषि आदि कर्मों का परित्याग कर दिया है, किन्तु गृहवास का परित्याग नहीं किया है । शेष तीन भांगे पूर्वोक्त क्रम से कहें । एक पुरुष ने सदोष आहार आदि का तो परित्याग कर दिया है किन्तु गृहवास का परित्याग नहीं किया है । शेष तीन भांगे पूर्वोक्त क्रम से कहें ।

पुरुषवर्ग चार प्रकार का है । एक पुरुष इहभव के सुख की कामना करता है, परभव के सुख की कामना नहीं करता । एक पुरुष परभव के सुख की कामना करता है इहभव के सुख की कामना नहीं करता । एक पुरुष इहभव और परभव दोनों के सुख की कामना करता है । एक पुरुष इहभव और परभव दोनों के सुख की कामना नहीं करता ।

पुरुष वर्ग चार प्रकार का है । यथा-एक पुरुष एक (श्रुतज्ञान) से बढ़ता है और एक (सम्यग्दर्शन) से हीन होता है । एक पुरुष एक (श्रुतज्ञान) से बढ़ता है और दो (सम्यग्दर्शन और विनय) से हीन होता है । एक पुरुष दो (श्रुतज्ञान और सम्यकचारित्र) से बढ़ता है और सम्यग्दर्शन से हीन होता है । एक पुरुष दो (श्रुतज्ञान और सम्यग-नुष्ठान) से बढ़ता है और दो (सम्यग्दर्शन और विनय) से हीन होता है ।

अश्व चार प्रकार के हैं । यथा-एक अश्व पहले शीघ्रगति होता है और पीछे भी शीघ्रगति रहता है । एक अश्व पहले शीघ्रगति होता है किन्तु पीछे मन्द गति हो जाता है । एक अश्व पहले मंदगति होता है किन्तु पीछे शीघ्रगति हो जाता है । एक अश्व पहले भी मंदगति होता है और पीछे भी मंदगति रहता है । इसी प्रकार पुरुष चार प्रकार के हैं । यथा-एक पुरुष पहले सद्‌गुणी है और पीछे भी सद्‌गुणी है । एक पुरुष पहले सद्‌गुणी है किन्तु पीछे अवगुणी हो जाता है । एक पुरुष पहले अवगुणी है किन्तु पीछे सद्‌गुणी हो जाता है । एक पुरुष पहले भी और पीछे भी अवगुणी होता है ।

अश्व चार प्रकार के हैं । यथा-एक अश्व शीघ्रगति है और संकेतानुसार चलता है । एक अश्व शीघ्रगति है किन्तु संकेतानुसार नहीं चलता है । एक अश्व मंदगति है किन्तु संकेतानुसार चलता है । एक अश्व मंदगति है और

संकेतानुसार भी नहीं चलता है । इसी प्रकार पुरुष चार प्रकार के हैं । यथा–एक पुरुष विनय गुणसम्पन्न और व्यवहार में भी विनम्र हैं । शेष तीन भांगे पूर्वोक्त क्रम से कहें ।

अश्व चार प्रकार के हैं । यथा–एक अश्व जातिसम्पन्न है किन्तु कुलसम्पन्न नहीं है । शेष तीन भांगे पूर्वोक्त सूत्र अनुसार । इसी प्रकार पुरुष चार प्रकार के हैं । भांगे पूर्ववत् ।

अश्व चार प्रकार के हैं । यथा–एक अश्व जातिसम्पन्न है किन्तु बलसम्पन्न नहीं है । शेष तीन भांगे पूर्वोक्त सूत्र समान । इसी प्रकार पुरुष चार प्रकार के हैं । भांगे पूर्ववत् ।

अश्व चार प्रकार के हैं । यथा–एक अश्व जातिसम्पन्न है किन्तु युद्ध में वह विजय प्राप्त नहीं कर पाता । शेष तीन भांगे पूर्वोक्त क्रम से कहें । इसी प्रकार पुरुष चार प्रकार के हैं । एक पुरुष जातिसम्पन्न है । किन्तु युद्ध में वह विजयी नहीं होता । शेष भांगे पूर्ववत् ।

इसी प्रकार कुल सम्पन्न और बल सम्पन्न, कुल सम्पन्न और रूप सम्पन्न, कुल सम्पन्न और जय सम्पन्न, बल सम्पन्न और रूप सम्पन्न, बल सम्पन्न और जय सम्पन्न, रूप सम्पन्न और बल सम्पन्न, रूप सम्पन्न और जय सम्पन्न, अश्व के चार-चार भांगे तथा इसी प्रकार पुरुष के चार-चार भांगे पूर्वोक्त क्रम से कहें ।

पुरुष वर्ग चार प्रकार का है । यथा–एक पुरुष सिंह की तरह प्रव्रजित होता है और सिंह की तरह ही विचरण करता है । एक पुरुष सिंह की तरह प्रव्रजित होता है किन्तु शृंगाल की तरह विचरण करता है । एक पुरुष शृंगाल की तरह प्रव्रजित होता है किन्तु सिंह की तरह विचरण करता है । एक पुरुष शृंगाल की तरह प्रव्रजित होता है और शृंगाल की तरह ही विचरण करता है ।

**सूत्र - ३५०**

लोक में समान स्थान चार हैं । यथा–अप्रतिष्ठान नरकावास, जम्बूद्वीप, पालकयान विमान, सर्वार्थसिद्ध महाविमान । लोक में सर्वथा समान स्थान चार हैं । सीमंतकनरकावास, समयक्षेत्र, उडुनामकविमान, इषत्प्राग्भारा पृथ्वी ।

**सूत्र - ३५१**

ऊर्ध्वलोक में दो देह धारण करने के पश्चात् मोक्ष में जाने वाले जीव चार प्रकार के हैं । यथा–पृथ्वीकायिक जीव, अप्कायिक जीव, वनस्पतिकायिक जीव, स्थूल त्रसकायिक जीव, अधोलोक और तिर्यग्लोक सम्बन्धी सूत्र इसी प्रकार कहें ।

**सूत्र - ३५२**

पुरुष चार प्रकार के हैं । यथा–एक पुरुष लज्जा से परीषह सहन करता है, एक पुरुष लज्जा से मन दृढ़ रखता है, एक पुरुष परीषह से चलचित्त हो जाता है, एक पुरुष परीषह आने पर भी निश्चलमन रहता है ।

**सूत्र - ३५३**

शय्या प्रतिमाएं (प्रतिज्ञाएं) चार हैं । वस्त्र प्रतिमाएं चार हैं । पात्र प्रतिमाएं चार हैं । स्थान प्रतिमाएं चार हैं ।

**सूत्र - ३५४**

जीव से व्याप्त शरीर चार हैं । यथा–१. वैक्रियक शरीर, २. आहार शरीर, ३. तेजस शरीर और ४. कार्मण शरीर

कार्मण शरीर से व्याप्त शरीर चार हैं । यथा–१. औदारिक शरीर, २. वैक्रियक शरीर, ३. आहारक शरीर और ४. तेजस शरीर ।

**सूत्र - ३५५**

लोक में व्याप्त अस्तिकाय चार हैं ।–धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, जीवास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय ।

उत्पद्यमान चार बादरकाय लोक में व्याप्त हैं । यथा–पृथ्वीकाय, अप्काय, वायुकाय और वनस्पतिकाय ।

**सूत्र - ३५६**

समान प्रदेश वाले द्रव्य चार हैं । यथा–धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, लोकाकाश और एक जीव ।

**सूत्र - ३५७**

चार प्रकार के जीवों का एक शरीर आँखों से नहीं देखा जा सकता । यथा–पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय और वनस्पतिकाय ।

**सूत्र - ३५८**

चार इन्द्रियों से ज्ञान पदार्थों का सम्बन्ध होने पर ही होता है । यथा–श्रोत्रेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, जिह्वेन्द्रिय और स्पर्शेन्द्रिय ।

**सूत्र - ३५९**

जीव और पुद्‌गल चार कारणों से लोक के बाहर नहीं जा सकते । यथा–गति का अभाव होने से, सहायता का अभाव होने से, रुक्षता से, लोक की मर्यादा होने से ।

**सूत्र - ३६०**

ज्ञात (दृष्टान्त) चार प्रकार के हैं । यथा–जिस दृष्टान्त से अव्यक्त अर्थ व्यक्त किया जाए । जिस दृष्टान्त से वस्तु के एकदेश का प्रतिपादन किया जाए । जिस दृष्टान्त से सदोष सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जाए । जिस दृष्टान्त से वादी द्वारा स्थापित सिद्धान्त का निराकरण किया जाए ।

अव्यक्त अर्थ को व्यक्त करने वाले दृष्टान्त चार प्रकार के हैं । यथा–द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव । विघ्न-बाधा बताने वाले दृष्टान्त । द्रव्यादि से कार्यसिद्धि बताने वाले दृष्टान्त । जिस दृष्टान्त से परमत को दूषित सिद्ध करके स्वमत को निर्दोष सिद्ध किया जाए । जिस दृष्टान्त से तत्काल उत्पन्न वस्तु का विनाश सिद्ध किया जाए ।

वस्तु के एक देश का प्रतिपादन करने वाले दृष्टान्त चार प्रकार के हैं । यथा–सद्‌गुणों की स्तुति से गुणवान के गुणों की प्रशंसा करना । असत्कार्य में प्रवृत्त मुनि को दृष्टान्त द्वारा उपालम्भ देना । किसी जिज्ञासु का दृष्टान्त द्वारा प्रश्न पूछना । एक व्यक्ति का उदाहरण देकर दूसरे को प्रतिबोध देना ।

सदोष सिद्धान्त का प्रतिपादन करने वाले दृष्टान्त चार प्रकार के हैं । यथा–जिस दृष्टान्त से पाप कार्य करने का संकल्प पैदा हो । जिस दृष्टान्त ''जैसे को तैसा करना'' सिखाया जाए । परमत को दूषित सिद्ध करने के लिए जो दृष्टान्त दिया जाए, उसी दृष्टान्त से स्वमत भी दूषित सिद्ध हो जाए । जिस दृष्टान्त में दुर्वचनों का या अशुद्ध वाक्यों का प्रयोग किया जाए ।

वादी के सिद्धान्त का निराकरण करने वाले दृष्टान्त चार प्रकार के हैं । यथा–वादी जिस दृष्टान्त से अपने पक्ष की स्थापना करे, प्रतिवादी भी उसी दृष्टान्त से अपने पक्ष की स्थापना करे । वादी दृष्टान्त से जिस वस्तु को सिद्ध करे प्रतिवादी उस दृष्टान्त से भिन्न वस्तु सिद्ध करे । वादी जैसा दृष्टान्त कहे प्रतिवादी को भी वैसा ही दृष्टान्त देने के लिए कहे । प्रश्नकर्ता जिस दृष्टान्त का प्रयोग करता है उत्तरदाता भी उसी दृष्टान्त का प्रयोग करता है ।

हेतु चार प्रकार के हैं । यथा–वादी का समय बिताने वाला हेतु । वादी द्वारा स्थापित हेतु के सदृश हेतु की स्थापना करने वाला हेतु । शब्द छल से दूसरे को व्यामोह पैदा करने वाला हेतु । धूर्त द्वारा अपहृत वस्तु को पुनः प्राप्त कर सके ऐसा हेतु ।

हेतु चार प्रकार के हैं । यथा–जो हेतु आत्मा द्वारा जाना जाए और जो हेतु इन्द्रियों द्वारा माना जाए । जिसके देखने से व्याप्ति का बोध हो ऐसा हेतु । यथा–धूआं देखने से अग्नि और धूएं की व्याप्ति का स्मरण होना । उपमा द्वारा समानता का बोध कराने वाला हेतु । आप्त-पुरुष कथित वचन ।

हेतु चार प्रकार के हैं । यथा–धूम के अस्तित्व से अग्नि का अस्तित्व सिद्ध करने वाला हेतु । अग्नि के अस्तित्व से विरोधी शीत का नास्तित्व सिद्ध करने वाला हेतु । अग्नि के अभाव में शीत का सद्‌भाव सिद्ध करने वाला हेतु । वृक्ष के अभाव में शाखा का अभाव सिद्ध करने वाला हेतु ।

**सूत्र - ३६१**

गणित चार प्रकार का है । यथा–पाहुड़ों का गणित (पाटि गणित) । व्यवहार गणित–तोल-माप आदि । लम्बाई

नापने का गणित । राशि मापने का गणित ।

अधोलोक में अंधकार करने वाली चार वस्तुएं हैं । यथा–नरकावास, नैरयिक, पाप कर्म और अशुभ पुद्‌गल तिर्यक्‌लोक में उद्योत करने वाले चार हैं । चन्द्र, सूर्य, मणि और ज्योति ।

ऊर्ध्वलोक में उद्योत करने वाले चार हैं । यथा–देव, देवियाँ, विमान और आभरण ।

## स्थान-४ – उद्देशक-४

**सूत्र - ३६२**

विदेश जाने वाले पुरुष चार प्रकार के हैं । यथा–एक पुरुष जीवन निर्वाह के लिए विदेश जाता है । एक पुरुष संचित सम्पत्ति की सुरक्षा के लिए विदेश जाता है । एक पुरुष सुख-सुविधा के लिए विदेश जाता है । एक पुरुष प्राप्त सुख-सुविधा की सुरक्षा के लिए विदेश जाता है ।

**सूत्र - ३६३**

नैरयिकों का आहार चार प्रकार का है । यथा–अंगारों जैसा अल्पदाहक । प्रज्वलित अग्नि कणों जैसा अति दाहक । शीतकालीन वायु के समान शीतल । बर्फ के समान अतिशीतल । तिर्यंचों का आहार चार प्रकार का है । यथा–कंक पक्षी के आहार जैसा अर्थात्‌ दुष्पच आहार भी तिर्यंचों को सुपच होता है । बिल में जो भी डालें सब तुरन्त अन्दर चला जाता है उसी प्रकार तिर्यंच स्वाद लिए बिना सीधा उदरस्थ कर लेते हैं । चाण्डाल के माँस समान अभक्ष्य भी तिर्यंच खा लेते हैं । पुत्र माँस के समान तीव्र क्षुधा के कारण अनिच्छापूर्वक खाते हैं । मनुष्यों का आहार चार प्रकार का है । यथा–अशन-पान-खादिम-स्वादिम । देवताओं का आहार चार प्रकार का है । सुवर्ण, सुगन्धित, स्वादिष्ट और सुखद स्पर्श वाला ।

**सूत्र - ३६४**

आशि-विष चार प्रकार का है । यथा–वृश्चिक जाति का आशिविष, मंडूक जाति का आशिविष, सर्प जाति का आशिविष, मनुष्य जाति का आशिविष ।

हे भगवन्‌ ! बिच्छु जाति का आशिविष कितना प्रभावशाली है ? आधे भरत क्षेत्र जितने बड़े शरीर को एक बिच्छु का विष प्रभावित कर देता है । यह केवल विष का प्रभावमात्र बताया है । अब तक न इतने बड़े शरीर को प्रभावित किया है, न वर्तमान में भी प्रभावित करता है और न भविष्य में भी प्रभावित कर सकेगा । हे भगवन्‌ ! मंडूक जाति का आशिविष कितना प्रभावशाली है ? भरत क्षेत्र जितने बड़े शरीर को एक मंडूक का विष प्रभावित कर देता है शेष पूर्ववत्‌ । हे भगवन्‌ ! सर्प जाति का आशिविष कितना प्रभावशाली है ? जम्बूद्वीप जितने बड़े शरीर को एक सर्प का विष प्रभावित कर देता है । शेष पूर्ववत्‌ । हे भगवन्‌ ! मनुष्य जाति का आशिविष कितना प्रभावशाली है ? समय क्षेत्र जितने बड़े शरीर को एक मनुष्य का विष प्रभावित कर देता है । शेष पूर्ववत्‌ ।

**सूत्र - ३६५**

व्याधियाँ चार प्रकार की हैं । यथा–वातजन्य, पित्तजन्य, कफजन्य और सन्निपातजन्य । चिकित्सा चार प्रकार की है । वैद्य, औषध, रोगी और परिचारक ।

**सूत्र - ३६६**

चिकित्सक चार प्रकार के हैं । एक चिकित्सक स्वयं की चिकित्सा करता है किन्तु दूसरे की चिकित्सा नहीं करता है । एक चिकित्सक दूसरे की चिकित्सा करता है किन्तु स्वयं की चिकित्सा नहीं करता है । एक चिकित्सक स्वयं की भी चिकित्सा करता है और अन्य की भी चिकित्सा करता है । एक चिकित्सक न स्वयं की चिकित्सा करता है और न अन्य की चिकित्सा करता है । पुरुष चार प्रकार के हैं । एक पुरुष व्रण (शल्य चिकित्सा) करता है किन्तु व्रण को स्पर्श नहीं करता । एक पुरुष व्रण को स्पर्श करता है किन्तु व्रण नहीं करता । एक पुरुष व्रण भी करता है और व्रण का स्पर्श भी करता है । एक पुरुष व्रण भी नहीं करता और व्रण का स्पर्श भी नहीं करता ।

पुरुष चार प्रकार के हैं । एक पुरुष व्रण करता है किन्तु व्रण की रक्षा नहीं करता । एक पुरुष व्रण की रक्षा

करता है किन्तु व्रण नहीं करता है । एक पुरुष व्रण भी करता है और व्रण की रक्षा भी करता है । एक पुरुष व्रण भी नहीं करता और व्रण की रक्षा भी नहीं करता । पुरुष चार प्रकार के हैं । यथा–एक पुरुष व्रण करता है किन्तु व्रण को औषधि आदि से मिलाता नहीं है । एक पुरुष व्रण को औषधि से ठीक करता है किन्तु व्रण नहीं करता है । एक पुरुष व्रण भी करता है और व्रण की रक्षा भी करता है । एक पुरुष व्रण भी नहीं करता है, व्रण को ठीक भी नहीं करता है ।

व्रण चार प्रकार के हैं । यथा–एक व्रण के अन्दर शल्य है किन्तु बाहर शल्य नहीं है । एक व्रण के बाहर शल्य है किन्तु अन्दर शल्य नहीं है । एक व्रण के अन्दर भी शल्य है और बाहर भी शल्य है । एक व्रण के अन्दर भी शल्य नहीं है और बाहर भी शल्य नहीं है । इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार का है । एक पुरुष मन में शल्य रखता है किन्तु व्यवहार में शल्य नहीं रखता है । एक पुरुष व्यवहार में शल्य रखता है किन्तु मन में शल्य नहीं रखता है । एक पुरुष मन में भी शल्य रखता है और व्यवहार में भी शल्य रखता है । एक पुरुष मन में भी शल्य नहीं रखता है और व्यवहार में भी शल्य नहीं रखता है ।

व्रण चार प्रकार के हैं । यथा–एक व्रण अन्दर से सड़ा हुआ है किन्तु बाहर से सड़ा हुआ नहीं है । एक व्रण बाहर से सड़ा हुआ है किन्तु अन्दर से सड़ा हुआ नहीं है । एक व्रण अन्दर से भी सड़ा हुआ है और बाहर से भी सड़ा हुआ है । एक व्रण अन्दर से भी सड़ा हुआ नहीं है और बाहर से भी सड़ा हुआ नहीं है । इसी प्रकार पुरुष चार प्रकार के हैं । यथा–एक पुरुष का हृदय श्रेष्ठ है किन्तु उसका व्यवहार श्रेष्ठ नहीं है । एक पुरुष का व्यवहार श्रेष्ठ है किन्तु दुष्ट हृदय है । एक पुरुष दुष्ट हृदय भी है और उसका व्यवहार भी श्रेष्ठ नहीं है । एक पुरुष दुष्ट हृदय भी नहीं है और व्यवहार भी उसका श्रेष्ठ है ।

पुरुष चार प्रकार के हैं । यथा–एक पुरुष सद्विचार वाला है और सत्कार्य करने वाला भी है । एक पुरुष सद् विचार वाला है किन्तु सत्कार्य करने वाला नहीं है । एक पुरुष सत्कार्य करने वाला तो है किन्तु सद्विचार वाला नहीं है एक पुरुष सद्विचार वाला भी नहीं है और सत्कार्य करने वाला भी नहीं है । पुरुष चार प्रकार के हैं । यथा –एक पुरुष भाव से श्रेयस्कर है और द्रव्य से श्रेयस्कर सदृश है । एक पुरुष भाव से श्रेयस्कर है किन्तु द्रव्य से पापी सदृश है । एक पुरुष भाव से पापी है किन्तु द्रव्य से श्रेयस्कर सदृश है । एक पुरुष भाव से भी पापी है और द्रव्य से भी पापी सदृश है

पुरुष चार प्रकार के हैं । यथा–एक पुरुष श्रेष्ठ है और अपने को श्रेष्ठ मानता है । एक पुरुष श्रेष्ठ है किन्तु अपने को पापी मानता है । एक पुरुष पापी है किन्तु अपने को श्रेष्ठ मानता है । एक पुरुष पापी है और अपने को पापी मानता है ।

पुरुष चार प्रकार के हैं । यथा–एक पुरुष श्रेष्ठ है और लोगों में श्रेष्ठ सदृश माना जाता है । एक पुरुष श्रेष्ठ है किन्तु लोगों में पापी सदृश माना जाता है । एक पुरुष पापी है किन्तु लोगों में श्रेष्ठ सदृश माना जाता है । एक पुरुष पापी है और लोगों में पापी सदृश माना जाता है । पुरुष चार प्रकार के हैं । यथा–एक पुरुष जिन प्रवचनों का प्ररूपक है किन्तु प्रभावक नहीं है । एक पुरुष शासन का प्रभावक है किन्तु जिन प्रवचनों का प्ररूपक नहीं है । एक पुरुष शासन का प्रभावक भी है और जिन वचनों का प्ररूपक भी है । एक पुरुष शासन का प्रभावक भी नहीं है और जिन प्रवचनों का प्ररूपक भी नहीं है ।

पुरुष चार प्रकार के हैं । यथा–एक पुरुष सूत्रार्थ का प्ररूपक है किन्तु शुद्ध आहारादि की एषणा में तत्पर नहीं है । एक पुरुष शुद्ध आहारादि की एषणा में तत्पर नहीं है किन्तु सूत्रार्थ का प्ररूपक है । एक पुरुष सूत्रार्थ का प्ररूपक भी है और शुद्ध आहारादि की एषणा में भी तत्पर है । एक पुरुष सूत्रार्थ का प्ररूपक भी नहीं है और शुद्ध आहारादि की एषणा में भी तत्पर नहीं है ।

वृक्ष की विकुर्वणा चार प्रकार की है । यथा–नई कोंपले आना, पत्ते आना, पुष्प आना, फल आना ।

**सूत्र - ३६७**

वाद करने वालों के समोसरण चार हैं । यथा–क्रियावादी, अक्रियावादी, अज्ञानवादी और विनयवादी ।

विकलेन्द्रियों को छोड़कर शेष सभी दण्डकों में वादियों के चार समवसरण हैं ।

सूत्र - ३६८

मेघ चार प्रकार के हैं । यथा-एक मेघ गरजता है किन्तु बरसता नहीं है । एक मेघ बरसता है किन्तु गरजता नहीं है । एक मेघ गरजता भी है और बरसता भी है । एक मेघ गरजता भी नहीं है और बरसता भी नहीं है । इसी प्रकार पुरुष चार प्रकार के हैं । यथा-एक पुरुष बोलता बहुत है किन्तु देता कुछ भी नहीं है । एक पुरुष देता है किन्तु बोलता कुछ भी नहीं है । एक पुरुष बोलता भी है और देता भी है । एक पुरुष बोलता भी नहीं है और देता भी नहीं है ।

मेघ चार प्रकार के हैं । यथा-एक मेघ गरजता है किन्तु उसमें बिजलियाँ नहीं चमकती है । एक मेघ में बिजलियाँ चमकती है किन्तु गरजता नहीं है । एक मेघ गरजता है और उसमें बिजलियाँ भी चमकती है । एक मेघ गरजता भी नहीं है और उसमें बिजलियाँ भी चमकती नहीं है । इसी प्रकार पुरुष चार प्रकार के हैं । यथा-एक पुरुष प्रतिज्ञा करता है किन्तु अपनी बड़ाई नहीं हाँकता । एक पुरुष अपनी बड़ाई हाँकता है किन्तु प्रतिज्ञा नहीं करता है । एक पुरुष प्रतिज्ञा भी करता है और अपनी बड़ाई भी हाँकता है । एक पुरुष प्रतिज्ञा भी नहीं करता है और अपनी बड़ाई भी नहीं हाँकता है ।

मेघ चार प्रकार के हैं । यथा-एक मेघ बरसता है किन्तु उसमें बिजलियाँ नहीं चमकती हैं । एक मेघ में बिजलियाँ हैं किन्तु बरसता नहीं है । एक मेघ बरसता भी है और उसमें बिजलियाँ भी चमकती हैं । एक मेघ बरसता भी नहीं है और उसमें बिजलियाँ भी चमकती नहीं हैं । इसी प्रकार पुरुष चार प्रकार के हैं । यथा-एक पुरुष दानादि सत्कार्य करता है किन्तु अपनी बड़ाई नहीं करता है । एक पुरुष अपनी बड़ाई करता है किन्तु दानादि सत्कार्य नहीं करता है । एक पुरुष दानादि सत्कार्य भी करता है और अपनी बड़ाई भी करता है । एक पुरुष दानादि सत्कार्य भी नहीं करता और अपनी बड़ाई भी नहीं करता है ।

मेघ चार प्रकार के हैं । एक मेघ समय पर बरसता है किन्तु असमय नहीं बरसता । एक मेघ असमय बरसता है किन्तु समय पर नहीं बरसता । एक मेघ समय पर भी बरसता है और असमय पर भी बरसता है । एक मेघ समय पर भी नहीं बरसता और असमय भी नहीं बरसता । इसी प्रकार पुरुष चार प्रकार के हैं । एक पुरुष समय पर दानादि सत्कार्य करता है, किन्तु असमय नहीं करता । एक पुरुष असमय दानादि सत्कार्य करता है किन्तु समय पर नहीं करता । एक पुरुष समय पर भी दानादि सत्कार्य करता है और असमय भी । एक पुरुष समय पर भी दानादि सत्कार्य नहीं करता और असमय भी नहीं करता ।

मेघ चार प्रकार के हैं । एक मेघ क्षेत्र में बरसता है किन्तु अक्षेत्र में नहीं बरसता । एक मेघ अक्षेत्र में बरसता है किन्तु क्षेत्र में नहीं बरसता । एक मेघ क्षेत्र में भी बरसता है और अक्षेत्र में भी बरसता है । एक मेघ क्षेत्र में भी नहीं बरसता और अक्षेत्र में भी नहीं बरसता । इसी प्रकार पुरुष चार प्रकार के हैं । यथा-एक पुरुष पात्र को दान देता है किन्तु अपात्र को नहीं । एक पुरुष अपात्र को दान देता है किन्तु पात्र को नहीं । एक पुरुष पात्र को भी दान देता है और अपात्र को भी । एक पुरुष पात्र को भी दान नहीं देता और अपात्र को भी नहीं देता ।

मेघ चार प्रकार के हैं । यथा-एक मेघ धान्य के अंकुर उत्पन्न करता है किन्तु धान्य को पूर्ण नहीं पकाता । एक मेघ धान्य को पूर्ण पकाता है किन्तु धान्य के अंकुर उत्पन्न नहीं करता । एक मेघ धान्य के अंकुर भी उत्पन्न करता है और धान्य को पूर्ण भी पकाता है । एक मेघ धान्य के अंकुर भी उत्पन्न नहीं करता है और धान्य को पूर्ण भी नहीं पकाता है । इसी प्रकार माता-पिता भी चार प्रकार के हैं । यथा-एक माता-पिता पुत्र को जन्म देते हैं किन्तु उसका पालन नहीं करते । एक माता-पिता पुत्र का पालन करते हैं किन्तु पुत्र को जन्म नहीं देते हैं । एक माता-पिता पुत्र को जन्म भी देते हैं और उसका पालन भी करते हैं । एक माता-पिता पुत्र को जन्म भी नहीं देते और उसका पालन भी नहीं करते हैं ।

मेघ चार प्रकार के हैं । यथा-एक मेघ एक देश में बरसता है किन्तु सर्वत्र नहीं बरसता है । एक मेघ सर्वत्र बरसता है किन्तु एक देश में नहीं बरसता । एक मेघ एक देश में भी बरसता है और सर्वत्र भी बरसता है । एक मेघ न एक देश में बरसता है और न सर्वत्र बरसता है । इसी प्रकार राजा भी चार प्रकार के हैं । यथा-एक राजा एक देश का

अधिपति है किन्तु सब देशों का नहीं । एक राजा सब देशों का स्वामी है किन्तु एक देश का नहीं । एक राजा एक देश का अधिपति भी है और सब देशों का अधिपति भी है । एक राजा न एक देश का अधिपति है और न सब देशों का अधिपति है ।

**सूत्र - ३६९**

मेघ चार प्रकार के हैं । पुष्कलावर्त, प्रद्युम्न, जीमूत और जिम्ह । पुष्कलावर्त महामेघ की एक वर्षा से पृथ्वी दस हजार वर्ष तक गीली रहती है । प्रद्युम्न महामेघ की एक वर्षा से पृथ्वी एक हजार वर्ष तक गीली रहती है । जीमूत महामेघ की एक वर्षा से पृथ्वी दस वर्ष तक गीली रहती है । जिम्ह महामेघ की अनेक वर्षाएं भी पृथ्वी को एक वर्ष तक गीली नहीं रख पाती ।

**सूत्र - ३७०**

करंडक चार प्रकार के हैं । श्वपाक का करंडक, वेश्याओं का करंडक, समृद्ध गृहस्थ का करंडक, राजा का करंडक । इसी प्रकार आचार्य चार प्रकार के हैं । श्वपाक करंडक समान आचार्य केवल लोकरंजक ग्रन्थों का ज्ञाता होता है किन्तु श्रमणाचार का पालक नहीं होता । वेश्याकरंड समान आचार्य जिनागमों का सामान्य ज्ञाता होता है किन्तु लोकरंजक ग्रन्थों का व्याख्यान करते अधिक से अधिक जनता को अपनी ओर आकर्षित करता है । गाथापति के करंडक समान आचार्य स्वसिद्धान्त और पर-सिद्धान्त का ज्ञाता होता है और श्रमणाचार का पालक भी होता है । राजा के करंडिये समान आचार्य जिनागमों के मर्मज्ञ एवं आचार्य के समस्तगुण युक्त होते हैं ।

**सूत्र - ३७१**

वृक्ष चार प्रकार के हैं । यथा–एक वृक्ष शाल (महान्) है और शाल के (छायादि) गुण युक्त हैं । एक वृक्ष शाल (महान्) है किन्तु गुणों में एरण्ड समान है । एक वृक्ष एरण्ड समान (अत्यल्प विस्तार वाला) है किन्तु गुणों में शाल (महावृक्ष) के समान है । एक वृक्ष एरण्ड है और गुणों से भी एरण्ड जैसा ही है । इसी प्रकार आचार्य चार प्रकार के हैं । एक आचार्य शाल समान महान् (उत्तम जाति कुल) हैं और ज्ञानक्रियादि महान् गुणयुक्त हैं । एक आचार्य महान् है किन्तु ज्ञान-क्रियादि गुणहीन है । एक आचार्य एरण्ड समान (जाति-कुल-गुरु आदि से सामान्य) है किन्तु ज्ञानक्रियादि महान् गुणयुक्त है । एक आचार्य एरण्ड समान है और ज्ञान-क्रियादि गुणहीन है ।

वृक्ष चार प्रकार के हैं । यथा–एक वृक्ष शाल (महान्) है और शालवृक्ष समान महान् वृक्षों से परिवृत्त है । एक वृक्ष शाल समान महान् है किन्तु एरण्ड समान तुच्छ वृक्षों से परिवृत्त है । एक वृक्ष एरण्ड समान तुच्छ है किन्तु शाल समान महान् वृक्षों से परिवृत्त है । एक वृक्ष एरण्ड समान तुच्छ है और एरण्ड समान वृक्षों से परिवृत्त है । इसी प्रकार आचार्य भी चार प्रकार हैं । एक आचार्य शाल वृक्ष समान महान् गुणयुक्त है और शाल परिवार समान श्रेष्ठ शिष्य परिवारयुक्त है । एक आचार्य शालवृक्ष समान उत्तम गुणयुक्त है किन्तु एरण्ड परिवार समान कनिष्ठ शिष्य परिवारयुक्त है । एक आचार्य एरण्ड परिवार समान कनिष्ठ शिष्य परिवारयुक्त है किन्तु स्वयं शाल वृक्ष समान महान् उत्तम गुणयुक्त है । एक आचार्य एरण्ड समान कनिष्ठ और एरण्ड समान परिवार समान कनिष्ठ शिष्यपरिवार युक्त है ।

**सूत्र - ३७२**

महावृक्षों के मध्य में जिस प्रकार वृक्षराज शाल सुशोभित होता है उसी प्रकार श्रेष्ठ शिष्यों के मध्य में उत्तम आचार्य सुशोभित होते हैं ।

**सूत्र - ३७३**

एरण्ड वृक्षों के मध्य में जिस प्रकार वृक्षराज शाल दिखाई देता है उसी प्रकार कनिष्ठ शिष्यों के मध्य में उत्तम आचार्य मालुम पड़ते हैं ।

**सूत्र - ३७४**

महावृक्षों के मध्य में जिस प्रकार एरण्ड दिखाई देता है उसी प्रकार श्रेष्ठ शिष्यों के मध्य में कनिष्ठ आचार्य दिखाई देता है ।

**सूत्र - ३७५**

एरण्ड वृक्षों के मध्य में जिस प्रकार एक एरण्ड प्रतीत होता है उसी प्रकार कनिष्ठ शिष्यों के मध्य में कनिष्ठ आचार्य प्रतीत होते हैं ।

**सूत्र - ३७६**

मत्स्य चार प्रकार के हैं । यथा–एक मत्स्य नदी के प्रवाह के अनुसार चलता है । एक मत्स्य नदी के प्रवाह के सन्मुख चलता है । एक मत्स्य नदी के प्रवाह के किनारे चलता है । एक मत्स्य नदी के प्रवाह के मध्य में चलता है । इसी प्रकार भिक्षु (श्रमण) चार प्रकार के हैं । यथा–एक भिक्षु उपाश्रय के समीप गृह से भिक्षा लेना प्रारम्भ करता है । एक भिक्षु किसी अन्य गृह से भिक्षा लेता हुआ उपाश्रय तक पहुँचता है । एक भिक्षु घरों की अन्तिम पंक्तियों से भिक्षा लेता हुआ उपाश्रय तक पहुँचता है । एक भिक्षु गाँव के मध्य भाग से भिक्षा लेता है ।

गोले चार प्रकार के होते हैं । यथा–मीण का गोला, लाख का गोला, काष्ठ का गोला, मिट्टी का गोला । इसी प्रकार पुरुष चार प्रकार के हैं । एक पुरुष मीण के गोले के समान कोमल हृदय होता है । एक पुरुष लाख के गोले के समान कुछ कठोर हृदय होता है । एक पुरुष काष्ठ के गोले के समान कुछ अधिक कठोर हृदय होता है । एक पुरुष मिट्टी के गोले के समान कुछ और अधिक कठोर हृदय होता है ।

गोले चार प्रकार के होते हैं । यथा–लोहे का गोला, जस्ते का गोला, तांबे का गोला और शीशे का गोला । इसी प्रकार पुरुष चार प्रकार के हैं । यथा–लोहे के गोले के समान एक पुरुष के कर्म भारी होते हैं । जस्ते के गोले के समान एक पुरुष के कर्म कुछ अधिक भारी होते हैं । तांबे के गोले के समान एक पुरुष के कर्म और अधिक भारी होते हैं । शीशे के गोले के समान एक पुरुष के कर्म अत्याधिक भारी होते हैं ।

गोले चार प्रकार के होते हैं । यथा–चाँदी का गोला, सोने का गोला, रत्नों का गोला और हीरों का गोला । उसी प्रकार पुरुष चार प्रकार के हैं । यथा–चाँदी के गोले के समान एक पुरुष ज्ञानादि श्रेष्ठ गुणयुक्त होता है । सोने के गोले के समान एक पुरुष कुछ अधिक श्रेष्ठ ज्ञानादि गुणयुक्त होता है । रत्नों के गोले के समान एक पुरुष और अधिक श्रेष्ठ ज्ञानादि गुणयुक्त होता है । हीरों के गोले के समान एक पुरुष अत्याधिक श्रेष्ठ गुणयुक्त होता है ।

पत्ते चार प्रकार के होते हैं । तलवार की धार के समान तीक्ष्ण धार वाले पत्ते । करवत की धार के समान तीक्ष्ण दाँत वाले पत्ते । उस्तरे की धार के समान तीक्ष्ण धार वाले पत्ते । कदंबचीरिका की धार के समान तीक्ष्ण धार वाले पत्ते । इसी प्रकार पुरुष चार प्रकार के हैं । यथा–एक पुरुष तलवार की धार के समान तीक्ष्ण वैराग्यमय विचार धारा से मोहपाश का शीघ्र छेदन करता है । एक पुरुष करवत की धार के समान वैराग्यमय विचारों से मोहपाश को शनैः शनैः काटता है । एक पुरुष उस्तरे की धार के समान वैराग्यमय विचारधारा से मोहपाश का विलम्ब से छेदन करता है । एक पुरुष कदंबचीरिका की धार के समान वैराग्यमय विचारों से मोहपाश का अतिविलम्ब से विच्छेद करता है ।

कट चार प्रकार के हैं । घास की चटाई, बाँस की सलियों की चटाई, चर्म की चटाई और कंबल की चटाई । इसी प्रकार पुरुष चार प्रकार के हैं । यथा–घास की चटाई के समान एक पुरुष अल्प राग वाला होता है । बाँस की चटाई के समान एक पुरुष विशेष रागभाव वाला होता है । चमड़े की चटाई के समान एक पुरुष विशेषतर रागभाव वाला होता है । कंबल की चटाई के समान एक पुरुष विशेषतम रागभाव वाला होता है ।

**सूत्र - ३७७**

चतुष्पद चार प्रकार के हैं । एक खुरवाले, दो खुरवाले, कठोर चर्ममय गोल पैरवाले, तीक्ष्ण नखयुक्त पैरवाले ।

पक्षी चार प्रकार के होते हैं । चमड़े की पांखों वाले, रुएं वाली पांखों वाले, सिमटी हुई पांखों वाले, फैली हुई पांखों वाले ।

क्षुद्र प्राणी चार प्रकार के होते हैं । यथा–दो इन्द्रियों वाले, तीन इन्द्रियों वाले, चार इन्द्रियों वाले और सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंच ।

**सूत्र - ३७८**

पक्षी चार प्रकार के हैं । यथा–एक पक्षी घोंसले से बाहर नीकलता है किन्तु बाहर फिरने व उड़ने में समर्थ नहीं है । एक पक्षी फिरने में समर्थ है किन्तु घोंसले से बाहर नहीं नीकलता है । एक पक्षी घोंसले से बाहर भी नीकलता है और फिरने में समर्थ भी है । एक पक्षी न घोंसले से बाहर नीकलता है और न फिरने में समर्थ होता है ।

इसी प्रकार भिक्षु (श्रमण) भी चार प्रकार के हैं । यथा–एक श्रमण भिक्षार्थ उपाश्रय से बाहर जाता है किन्तु फिरता नहीं है । एक श्रमण फिरने में समर्थ है किन्तु भिक्षा के लिए नहीं जाता है । एक श्रमण भिक्षार्थ जाता है और फिरता भी है । एक श्रमण भिक्षार्थ जाता भी नहीं है और फिरता भी नहीं है ।

**सूत्र - ३७९**

पुरुष चार प्रकार के हैं । एक पुरुष पहले भी कृश है और पीछे भी कृश रहता है । एक पुरुष पहले कृश है किन्तु पीछे स्थूल हो जाता है । एक पुरुष पहले स्थूल है किन्तु पीछे कृश हो जाता है । एक पुरुष पहले भी स्थूल होता है और पीछे भी स्थूल ही रहता है । पुरुष चार प्रकार के हैं । एक पुरुष का शरीर कृश है और उसके कषाय भी कृश (अल्प) है । एक पुरुष का शरीर कृश है किन्तु उसके कषाय अकृश (अधिक) है । एक पुरुष के कषाय अल्प है किन्तु उसका शरीर स्थूल है । एक पुरुष के कषाय अल्प है और शरीर भी कृश है ।

पुरुष चार प्रकार के हैं । यथा–एक पुरुष बुध (सत्कर्म करने वाला) है और बुध विवेकी है । एक पुरुष बुध है किन्तु अबुध (विवेकरहित) है । एक पुरुष अबुध है किन्तु बुध (सत्कर्म करने वाला) है । एक पुरुष अबुध है (विवेकरहित) है और अबुध है (सत्कर्म करने वाला भी नहीं है) । पुरुष चार प्रकार के हैं । यथा–एक पुरुष बुध (शास्त्रज्ञ) है और बुध हृदय है (कार्यकुशल है), एक पुरुष बुध है किन्तु अबुध हृदय है (कार्यकुशल नहीं है), एक पुरुष अबुधहृदय है किन्तु बुध है (शास्त्रज्ञ है) एक पुरुष अबुध है (शास्त्रज्ञ नहीं है) और अबुध है (कार्यकुशल भी नहीं है) ।

पुरुष चार प्रकार के हैं । यथा–एक पुरुष अपने पर अनुकम्पा करने वाला है किन्तु दूसरे पर अनुकम्पा करने वाला नहीं है । एक पुरुष अपने पर अनुकम्पा नहीं करता है किन्तु दूसरे पर अनुकम्पा करता है । एक पुरुष अपने पर भी अनुकम्पा करता है और दूसरे पर भी अनुकम्पा करता है । एक पुरुष अपने पर भी अनुकम्पा नहीं करता है और दूसरे पर भी अनुकम्पा नहीं करता है ।

**सूत्र - ३८०**

संभोग चार प्रकार के हैं । देवताओं का, असुरों का, राक्षसों का और मनुष्यों का । संभोग चार प्रकार का है। एक देवता देवी के साथ संभोग करता है । एक देवता असुरी के साथ संभोग करता है । एक असुर देवी के साथ संभोग करता है । एक असुर असुरी के साथ संभोग करता है ।

संभोग चार प्रकार का है । एक देव देवी के साथ संभोग करता है । एक देव राक्षसी के साथ संभोग करता है एक राक्षस देवी के साथ संभोग करता है । एक राक्षस राक्षसी के साथ संभोग करता है । संभोग चार प्रकार का है । यथा–एक देव देवी के साथ संभोग करता है । एक देव मानुषी के साथ संभोग करता है । एक मनुष्य देवी के साथ संभोग करता है । एक मनुष्य मानुषी के साथ संभोग करता है ।

संभोग चार प्रकार का है । यथा–एक असुर असुरी के साथ संभोग करता है । एक असुर राक्षसी के साथ संभोग करता है । एक राक्षस असुरी के साथ संभोग करता है । एक राक्षस राक्षसी के साथ संभोग करता है । संभोग चार प्रकार के हैं । यथा–एक असुर असुरी के साथ संभोग करता है । एक असुर मानुषी के साथ संभोग करता है । एक मनुष्य असुरी के साथ संभोग करता है । एक मनुष्यणी के साथ संभोग करता है ।

संभोग चार प्रकार के हैं । यथा–एक राक्षस राक्षसी के साथ संभोग करता है । एक राक्षस मनुष्यणी के साथ संभोग करता है । एक मनुष्य राक्षसी के साथ संभोग करता है । एक मनुष्य मनुष्यणी के साथ संभोग करता है ।

**सूत्र - ३८१**

अपध्वंश (चारित्र के फल का नाश) चार प्रकार का है । यथा–आसुरी भावनाजन्य-आसुर भाव, अभियोग भावनाजन्य-अभियोग भाव, सम्मोह भावनाजन्य-सम्मोह भाव, किल्बिष भावनाजन्य-किल्बिष भाव ।

असुरायु का बंध चार कारणों से होता है । यथा–क्रोधी स्वभाव से, अतिकलह करने से, आहार में आसक्ति रखते हुए तप करने से, निमित्त ज्ञान द्वारा आजीविकोपार्जन करने से ।

अभियोगायु का बंध चार कारणों से होता है । यथा–अपने तप जप की महीमा अपने-मुँह करने से । दूसरों की निन्दा करने से । ज्वरादि के उपशमन हेतु अभिमन्त्रित राख देने से । अनिष्टकी शान्ति के लिए मंत्रोच्चार करते रहने से

संमोहायु बांधने के चार कारण हैं । यथा–उन्मार्ग का उपदेश देने से, सन्मार्ग में अन्तराय देने से, कामभोगों की तीव्र अभिलाषा से । अतिलोभ करके नियाणा करने से ।

देव किल्बिष आयु बांधने के चार कारण हैं । यथा–अरिहंतों की निन्दा करने से । अरिहंत कथित धर्म की निन्दा करने से । आचार्य-उपाध्याय की निन्दा करने से । चतुर्विध संघ की निन्दा करने से ।

**सूत्र - ३८२**

प्रव्रज्या चार प्रकार की है । यथा–इहलोक के सुख के लिए दीक्षा लेना । परलोक के सुख के लिए दीक्षा लेना इहलोक और परलोक के लिए दीक्षा लेना । किसी प्रकार की कामना न रखते हुए दीक्षा लेना । प्रव्रज्या चार प्रकार की है । यथा–शिष्यादि की कामना से दीक्षा लेना । पूर्व दीक्षित स्वजनों के मोह से दीक्षा लेना । उक्त दोनों कारणों से दीक्षा लेना । निष्काम भाव से दीक्षा लेना ।

प्रव्रज्या चार प्रकार की है । यथा–सद्‌गुरुओं की सेवा के लिए दीक्षा लेना । किसी के कहने से दीक्षा लेना । ''तू दीक्षा लेगा तो मैं भी दीक्षा लूँगा'' इस प्रकार वचनबद्ध होकर दीक्षा लेना । किसी वियोग से व्यथित होकर दीक्षा लेना । प्रव्रज्या चार प्रकार की है । किसी को उत्पीड़ित करके दीक्षा देना, किसी को अन्यत्र ले जाकर दीक्षा देना, किसी को ऋणमुक्त करके दीक्षा देना, किसी को भोजन आदि का लालच दिखाकर दीक्षा देना ।

प्रव्रज्या चार प्रकार की है । यथा–नटखादिता-नट की तरह वैराग्य रहित धर्म कथा करके आहारादि प्राप्त करना । सुभटखादिता-सुभट की तरह बल दिखाकर आहारादि प्राप्त करना । सिंहखादिता-सिंह की तरह दूसरे की अवज्ञा करके आहारादि प्राप्त करना । शृंगालखादिता-शृंगाल की तरह दीनता प्रदर्शित कर आहारादि प्राप्त करना।

कृषि चार प्रकार की है । यथा–एक कृषि में धान्य एक बार बोया जाता है । एक कृषि में धान्य आदि दो-तीन बार बोया जाता है । एक कृषि में एक बार निनाण की जाती है । एक कृषि में बार-बार निनाण की जाती है । इसी प्रकार प्रव्रज्या चार प्रकार की है । एक प्रव्रज्या में एक बार सामायिकचारित्र धारण किया जाता है । एक प्रव्रज्या में बार-बार सामायिकचारित्र धारण किया जाता है । एक प्रव्रज्या में एक बार अतिचारों की आलोयणा की जाती है । एक प्रव्रज्या में बार-बार अतिचारों की आलोयणा की जाती है ।

प्रव्रज्या चार प्रकार की है । यथा–खलिहान में शुद्ध की हुई धान्यराशि जैसी अतिचार रहित प्रव्रज्या । खलिहान में उफणे हुए धान्य जैसी अल्प अतिचार वाली प्रव्रज्या । गायटा किये हुए धान्य जैसी अनेक अतिचार वाली प्रव्रज्या । खेत में से लाकर खलिहान में रखे हुए धान्य जैसी प्रचुर अतिचार वाली प्रव्रज्या ।

**सूत्र - ३८३**

संज्ञा चार प्रकार की है । आहारसंज्ञा, भयसंज्ञा, मैथुनसंज्ञा, परिग्रहसंज्ञा ।

चार कारणों से आहार संज्ञा होती है । यथा–पेट खाली होने से । क्षुधावेदनीय कर्म के उदय से । खाद्य पदार्थों की चर्चा सूनने से । निरन्तर भोजन की ईच्छा करने से ।

चार कारणों से भय संज्ञा होती है । यथा–अल्पशक्ति होने से । भयवेदनीय कर्म के उदय से । भयावनी कहानीयाँ सूनने से । भयानक प्रसंगों के स्मरण से ।

चार कारणों से मैथुन संज्ञा होती है । यथा–रक्त और माँस के उपचय से । मोहनीय कर्म के उदय से । काम कथा सूनने से । भुक्त भोगों के स्मरण से ।

चार कारणों से परिग्रह संज्ञा होती है । यथा–परिग्रह होने से । लोभवेदनीय कर्म के उदय से । हिरण्य सुवर्ण आदि को देखने से । धन कंचन के स्मरण से ।

**सूत्र - ३८४**

काम (विषय-वासना) चार प्रकार के हैं । यथा–शृंगार, करुण, बीभत्स, रौद्र । देवताओं की कामवासना 'शृंगार' प्रधान है । मनुष्यों की कामवासना 'करुण' है । तिर्यंचों की कामवासना 'बीभत्स' है । नैरयिकों की काम-वासना 'रौद्र' है ।

**सूत्र - ३८५**

पानी चार प्रकार के हैं । यथा–एक पानी थोड़ा गहरा है किन्तु स्वच्छ है । एक पानी थोड़ा गहरा है किन्तु मलिन है । एक पानी बहुत गहरा है किन्तु स्वच्छ है । एक पानी बहुत गहरा है किन्तु मलिन है । इसी प्रकार पुरुष चार प्रकार के हैं । यथा–एक पुरुष बाह्य चेष्टाओं से तुच्छ है और तुच्छ हृदय है । एक पुरुष बाह्य चेष्टाओं से तो तुच्छ है किन्तु गम्भीर हृदय है । एक पुरुष बाह्य चेष्टाओं से तो गम्भीर प्रतीत होता है किन्तु तुच्छ हृदय है । एक पुरुष बाह्य चेष्टाओं से भी गम्भीर प्रतीत होता है और गम्भीर हृदय भी है ।

पानी चार प्रकार का है । यथा–एक पानी छीछरा है और छीछरा जैसा ही दिखता है । एक पानी छीछरा है किन्तु गहरा दिखता है । एक पानी गहरा है किन्तु छीछरा जैसा प्रतीत होता है । एक पानी गहरा है और गहरे जैसा ही प्रतीत होता है । इसी प्रकार पुरुष चार प्रकार के हैं । यथा–एक पुरुष तुच्छ प्रकृति है और वैसा ही दिखता भी है। एक पुरुष तुच्छ प्रकृति है किन्तु बाह्य व्यवहार में गम्भीर जैसा प्रतीत होता है । एक पुरुष गम्भीर प्रकृति है किन्तु बाह्य व्यवहार से तुच्छ प्रतीत होता है । एक पुरुष गम्भीर प्रकृति है और बाह्य व्यवहार से भी गम्भीर ही प्रतीत होता है ।

उदधि (समुद्र) चार प्रकार के हैं । यथा–समुद्र का एक देश छीछरा है और छीछरा जैसा दिखाई देता है । समुद्र का एक भाग छीछरा है किन्तु बहुत गहरे जैसा प्रतीत होता है । समुद्र का एक भाग बहुत गहरा है किन्तु छीछरे जैसा प्रतीत होता है । समुद्र का एक भाग बहुत गहरा है और गहरे जैसा ही प्रतीत होता है । इसी प्रकार पुरुष चार प्रकार के हैं । पूर्वोक्त उदक सूत्र के समान भांगे कहें ।

**सूत्र - ३८६**

तैराक चार प्रकार के हैं । एक तैराक ऐसा होता है जो समुद्र को तिरने का निश्चय करके समुद्र को ही तिरता है । एक तैराक ऐसा होता है जो समुद्र को तिरने का निश्चय करके गोपद ही तिरता है । एक तैराक ऐसा है जो गोपद तिरने का निश्चय करके समुद्र को तिरता है । एक तैराक ऐसा है जो गोपद तिरने का निश्चय करके गोपद ही तिरता है ।

तैराक चार प्रकार के हैं । यथा–एक तैराक एक बार समुद्र को तिरकर पुनः समुद्र को तिरने में असमर्थ होता है । एक तैराक एक बार समुद्र को तिरके दूसरी बार गोपद को तिरने में भी असमर्थ होता है । एक तैराक एक बार गोपद को तिरकर पुनः समुद्र को पार करने में असमर्थ होता है । एक तैराक एक बार गोपद को तिरकर पुनः गोपद को पार करने में भी असमर्थ होता है ।

**सूत्र - ३८७**

कुम्भ चार प्रकार के हैं । यथा–एक कुम्भ पूर्ण (टूटा-पूटा) नहीं है और पूर्ण (मधु से भरा हुआ) है । एक कुम्भ पूर्ण है, किन्तु खाली है । एक कुम्भ पूर्ण (मधु से भरा हुआ) है किन्तु अपूर्ण (टूटा-फूटा) है । एक कुम्भ अपूर्ण (टूटा-फूटा) है और अपूर्ण (खाली है) । इसी प्रकार पुरुष चार प्रकार के हैं । एक पुरुष जात्यादि गुण से पूर्ण है और ज्ञानादि गुण से भी पूर्ण है । एक पुरुष जात्यादि गुण से पूर्ण है किन्तु ज्ञानादि गुण से रहित । एक पुरुष ज्ञानादि गुण से सहित है किन्तु जात्यादि गुण से पूर्ण है । एक पुरुष जात्यादि गुण से भी रहित है और ज्ञानादि गुण से भी रहित है ।

कुम्भ चार प्रकार के हैं । यथा–एक कुम्भ पूर्ण है और देखने वाले को पूर्ण जैसा ही दिखता है । एक कुम्भ पूर्ण है किन्तु देखने वाले को अपूर्ण जैसा ही दिखता है । एक कुम्भ अपूर्ण है किन्तु देखने वाले को पूर्ण जैसा ही दिखता है एक कुम्भ अपूर्ण है और देखने वाले को अपूर्ण जैसा ही दिखता है । इसी प्रकार पुरुष चार प्रकार के हैं। यथा–एक पुरुष धन आदि से पूर्ण है और उस धन का उदारतापूर्वक उपभोग करता है अतः पूर्ण जैसा ही प्रतीत होता है । एक पुरुष पूर्ण है (धनादि से पूर्ण है) किन्तु उस धन का उपभोग नहीं करता अतः अपूर्ण (धन हीन) जैसा ही प्रतीत होता है

एक पुरुष अपूर्ण है (धनादि से परिपूर्ण नहीं है) किन्तु समय-समय पर धन का उपयोग करता है अतः पूर्ण (धनी) जैसा ही प्रतीत होता है । एक पुरुष अपूर्ण है (धनादि से परिपूर्ण भी नहीं है) और अपूर्ण (निर्धन) जैसा ही प्रतीत होता है ।

कुम्भ चार प्रकार के हैं । यथा-एक कुम्भ पूर्ण है (जल आदि से पूर्ण है) और पूर्ण रूप है (सुन्दर है) । एक कुम्भ पूर्ण है किन्तु अपूर्ण रूप है (सुन्दर) शेष भांगे पूर्वोक्त क्रम से कहें । इसी प्रकार पुरुष चार प्रकार के हैं । यथा - एक पुरुष पूर्ण है (ज्ञानादि से पूर्ण है) और पूर्ण रूप है (संयत वेशभूषा से युक्त है) । एक पुरुष पूर्ण है किन्तु पूर्ण रूप नहीं है (संयत वेशभूषा से युक्त नहीं है) शेष भांगे पूर्वोक्त क्रम से कहें ।

कुम्भ चार प्रकार के हैं । यथा-एक कुम्भ पूर्ण (जलादि से) है और (स्वर्णादि मूल्यवान धातु का बना हुआ होने से) प्रिय है । एक कुम्भ पूर्ण है किन्तु (मृत्तिका आदि तुच्छ द्रव्यों का बना हुआ होने से) अप्रिय है । एक कुम्भ अपूर्ण है किन्तु (स्वर्णादि मूल्यवान धातुओं का बना हुआ होने से) प्रिय है । एक कुम्भ अपूर्ण है और अप्रिय भी है। इसी प्रकार पुरुष चार प्रकार के हैं । यथा-एक पुरुष धन या श्रुत आदि से पूर्ण है और उदार हृदय है अतः प्रिय है । एक पुरुष पूर्ण है किन्तु मलिन हृदय होने से अप्रिय है । शेष भांगे पूर्वोक्त क्रम से कहें ।

कुम्भ चार प्रकार के हैं । यथा-एक कुम्भ (जल से) पूर्ण है किन्तु उसमें पानी झरता है । एक कुम्भ (जल से) पूर्ण है किन्तु उसमें से पानी झरता नहीं है । एक कुम्भ (जल से) अपूर्ण है किन्तु झरता है । एक कुम्भ अपूर्ण है किन्तु झरता नहीं है । इसी प्रकार पुरुष चार प्रकार के हैं यथा-एक पुरुष (धन या श्रुत से) पूर्ण है और धन या श्रुत देता भी है एक पुरुष पूर्ण है किन्तु देता नहीं है । एक पुरुष (धन या श्रुत से) अपरिपूर्ण है किन्तु यथाशक्ति या यथाज्ञान देता भी है एक पुरुष अपूर्ण है और देता भी नहीं है ।

कुम्भ चार प्रकार के हैं । यथा-खंडित, जोजरा, कच्चा और पक्का । इसी प्रकार पुरुष चार प्रकार के हैं । यथा-एक पुरुष मूल प्रायश्चित्त योग्य होता है । एक पुरुष छेदादि प्रायश्चित्त योग्य होता है । एक पुरुष सूक्ष्म अतिचार युक्त होता है । एक पुरुष निरतिचार चारित्र युक्त होता है ।

कुम्भ चार प्रकार के हैं, एक मधु कुम्भ है और उसका ढक्कन भी मधु पूरित है । एक मधु कुम्भ है किन्तु उसका ढक्कन विष पूरित है । एक विष कुम्भ है किन्तु उसका ढक्कन मधु पूरित है । एक विष कुम्भ है और उसका ढक्कन भी विष पूरित है । इसी प्रकार पुरुष चार प्रकार के हैं । यथा-एक पुरुष सरल हृदय है और मधुर भाषी है । एक पुरुष सरल हृदय है किन्तु कटुभाषी है । एक पुरुष मायावी है किन्तु मधुरभाषी भी नहीं है । एक पुरुष मायावी है किन्तु मधुरभाषी भी है ।

**सूत्र - ३८८**

जिस पुरुष का हृदय निष्पाप एवं निर्मल है और जिसकी जिह्वा भी सदा मधुर भाषिणी है उस पुरुष को मधु ढक्कन वाले मधु कुम्भ की उपमा दी जाती है ।

**सूत्र - ३८९**

जिस पुरुष का हृदय निष्पाप एवं निर्मल है किन्तु उसकी जिह्वा सदा कटुभाषिणी है तो उस पुरुष को विष पूरित ढक्कन वाले मधु कुम्भ की उपमा दी जाती है ।

**सूत्र - ३९०**

जो पापी एवं मलिन हृदय है और जिसकी जिह्वा सदा मधुर भाषिणी है उस पुरुष को मधुपूरित ढक्कन वाले विष कुम्भ की उपमा दी जाती है ।

**सूत्र - ३९१**

जो पापी एवं मलिन हृदय है और जिसकी जिह्वा सदा कटुभाषिणी है उस पुरुष को विषपूरित ढक्कन वाले विष कुम्भ की उपमा दी जाती है ।

**सूत्र - ३९२**

उपसर्ग चार प्रकार के हैं । देवकृत, मनुष्यकृत, तिर्यंचकृत, आत्मकृत ।

देवकृत उपसर्ग चार प्रकार के हैं । यथा–उपहास करके उपसर्ग करता है । द्वेष करके उपसर्ग करता है । परीक्षा के बहाने उपसर्ग करता है । विविध प्रकार के उपसर्ग करता है । मनुष्य कृत उपसर्ग चार प्रकार के हैं । पूर्ववत् एवं मैथुन सेवन की ईच्छा से उपसर्ग करता है । तिर्यंच कृत उपसर्ग चार प्रकार के हैं । यथा –भयभीत होकर उपसर्ग करता है । द्वेष भाव से उपसर्ग करता है । आहार के लिए उपसर्ग करता है । स्वस्थान की रक्षा के लिए उपसर्ग करता है । आत्मकृत उपसर्ग चार प्रकार के हैं । यथा–संघट्टन से-आँख में पड़ी हुई रज आदि को नीकालने पर पीड़ा होती है । गिर पड़ने से । अधिक देर तक एक आसन से बैठने पर पीड़ा होती है । पैर संकुचित कर अधिक देर तक बैठने से पीड़ा होती है ।

**सूत्र - ३९३**

कर्म चार प्रकार के हैं । यथा–एक कर्म प्रकृति शुभ है और उसका हेतु भी शुभ है । एक कर्म प्रकृति शुभ है किन्तु उसका हेतु अशुभ है । एक कर्म प्रकृति अशुभ है किन्तु उसका हेतु शुभ है । एक कर्म प्रकृति अशुभ है और उसका हेतु भी अशुभ है ।

कर्म चार प्रकार के हैं । यथा–एक कर्म प्रकृति का बंध शुभ रूप में हुआ और उसका उदय भी शुभ रूप में हुआ । एक कर्म प्रकृति का बंध शुभ रूप में हुआ किन्तु संक्रमकरण से उसका उदय अशुभ रूप में हुआ । एक कर्म प्रकृति का बंध अशुभरूप में हुआ किन्तु संक्रमकरण से उसका उदय शुभ रूप में हुआ । एक कर्म प्रकृति का बंध अशुभ रूप में हुआ और उसका उदय भी अशुभ रूप में हुआ ।

कर्म चार प्रकार के हैं । प्रकृति कर्म, स्थिति कर्म, अनुभाव कर्म, प्रदेश कर्म ।

**सूत्र - ३९४**

संघ चार प्रकार के हैं । यथा–श्रमण, श्रमणियाँ, श्रावक और श्राविकाएं ।

**सूत्र - ३९५**

बुद्धि चार प्रकार की है । उत्पातिया, वैनयिकी, कार्मिकी, पारिणामिकी ।

मति चार प्रकार की है । यथा–अवग्रहमति, ईहामति, अवायमति और धारणामति ।

मति चार प्रकार की है । यथा–१. घड़े के पानी जैसी, २. नाले के पानी जैसी, ३. तालाब के पानी जैसी और ४. समुद्र के पानी जैसी ।

**सूत्र - ३९६**

संसारी जीव चार प्रकार के हैं । यथा–नैरयिक, तिर्यंच, मनुष्य और देव ।

सभी जीव चार प्रकार के हैं । मनयोगी, वचनयोगी, काययोगी, अयोगी ।

सभी जीव चार प्रकार के हैं । यथा–स्त्री वेदी, पुरुष वेदी, नपुंसक वेदी और अवेदी ।

सभी जीव चार प्रकार के हैं । यथा–चक्षुदर्शन वाले, अचक्षुदर्शन वाले, अवधि दर्शन वाले, केवलदर्शन वाले

सभी जीव चार प्रकार के हैं । संयत, असंयत, संयतासंयत, नोसंयत-नोअसंयत ।

**सूत्र - ३९७**

पुरुष चार प्रकार के हैं । यथा–एक पुरुष इहलोक का भी मित्र है और परलोक का भी मित्र है । एक पुरुष इहलोक का तो मित्र है किन्तु परलोक का मित्र नहीं है । एक पुरुष परलोक का तो मित्र है किन्तु इहलोक का मित्र नहीं है । एक पुरुष इहलोक का भी मित्र नहीं है और परलोक का भी मित्र नहीं है ।

पुरुष चार प्रकार के हैं । यथा–एक पुरुष अन्तरंग मित्र है और बाह्य स्नेह भी पूर्ण मित्रता का है । एक पुरुष अन्तरंग मित्र तो है किन्तु बाह्य स्नेह प्रदर्शित नहीं करता है । एक पुरुष बाह्य स्नेह तो प्रदर्शित करता है किन्तु अन्तरंग में शत्रुभाव है । एक पुरुष अन्तरंग भी शत्रुभाव रखता है और बाह्य व्यवहार से भी शत्रु है ।

पुरुष चार प्रकार के हैं । यथा–एक पुरुष द्रव्य (बाह्य व्यवहार) से भी मुक्त है और भाव (आसक्ति) से भी मुक्त है । एक पुरुष द्रव्य से तो मुक्त है किन्तु भाव से मुक्त नहीं है । एक पुरुष भाव से तो मुक्त है किन्तु द्रव्य से मुक्त नहीं है

एक पुरुष द्रव्य से भी मुक्त नहीं है और भाव से भी मुक्त नहीं है ।

पुरुष चार प्रकार के हैं । यथा–एक पुरुष (आसक्ति से) मुक्त है और (संयत वेष का धारक होने से) मुक्त रूप है एक पुरुष मुक्त है किन्तु मुक्त रूप नहीं है । एक पुरुष मुक्त रूप तो है किन्तु आसक्ति होने से मुक्त नहीं है। एक पुरुष मुक्त भी नहीं है और संयत वेशभूषा का धारक न होने से मुक्त रूप भी नहीं है ।

**सूत्र - ३९८**

पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीव मरकर चारों गतियों में उत्पन्न होते हैं और चारों गतियों में से आकर पंचेन्द्रिय तिर्यंचों में उत्पन्न होते हैं । यथा–नैरयिकों से, तिर्यंचों से, मनुष्यों से और देवताओं से । मनुष्य मरकर चारों गतियों में उत्पन्न होते हैं और चारों गतियों में से आकर मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं ।

**सूत्र - ३९९**

द्वीन्द्रिय जीवों की हिंसा न करने वाला चार प्रकार का संयम करता है, यथा–जिह्वेन्द्रिय के सुख को नष्ट नहीं करता । जिह्वेन्द्रिय सम्बन्धी दुःख नहीं देता । स्पर्शेन्द्रिय के सुख को नष्ट नहीं करता । स्पर्शेन्द्रिय सम्बन्धी दुःख नहीं देता ।

द्वीन्द्रिय जीवों की हिंसा करने वाला चार प्रकार का असंयम करता है । यथा–

जिह्वेन्द्रिय के सुख को नष्ट करता है । जिह्वेन्द्रिय सम्बन्धी दुःख देता है । स्पर्शेन्द्रिय के सुख को नष्ट करता है स्पर्शेन्द्रिय सम्बन्धी दुःख देता है ।

**सूत्र - ४००**

सम्यग्दृष्टि नैरयिक चार क्रियाएं करते हैं । आरम्भिकी, पारिग्रहिकी, मायाप्रत्यया और अप्रत्याख्यान क्रिया ।

विकलेन्द्रिय छोड़कर शेष सभी दण्डकों के जीव चार क्रियाएं करते हैं पूर्ववत् ।

**सूत्र - ४०१**

चार कारणों से पुरुष दूसरे के गुणों को छिपाता है । क्रोध से, ईर्ष्या से, कृतघ्न होने से और दुराग्रही होने से ।

चार कारणों से पुरुष दूसरे के गुणों को प्रकट करता है । यथा–प्रशंसक स्वभाव वाला व्यक्ति । दूसरे के अनुकूल व्यवहार वाला । स्वकार्य साधक व्यक्ति । प्रत्युपकार करने वाला ।

**सूत्र - ४०२**

चार कारणों से नैरयिक शरीर की उत्पत्ति प्रारम्भ होती है । यथा–क्रोध से, मान से, माया से और लोभ से । शेष सभी दण्डवर्ती जीवों के शरीर की उत्पत्ति का प्रारम्भ भी इन्हीं चार कारणों से होता है ।

चार कारणों से नैरयिकों के शरीर की पूर्णता होती है । क्रोध से यावत् लोभ से ।

शेष सभी दण्डकवर्ती जीवों के शरीर की पूर्णता भी इन्हीं चार कारणों से होती है ।

**सूत्र - ४०३**

धर्म के चार द्वार हैं । यथा–क्षमा, निर्लोभता, सरलता और मृदुता ।

**सूत्र - ४०४**

चार कारणों से नरक में जाने योग्य कर्म बंधते हैं । महाआरम्भ करने से, महापरिग्रह करने से, पंचेन्द्रिय जीवों को मारने से, मांस आहार करने से ।

चार कारणों से तिर्यंचों में उत्पन्न होने योग्य कर्म बंधते हैं । यथा–मन की कुटिलता से । वेष बदलकर ठगने से झूठ बोलने से । खोटे तोल-माप बरतने से ।

चार कारणों से मनुष्यों में उत्पन्न होने योग्य कर्म बंधते हैं । यथा–सरल स्वभाव से, विनम्रता से, अनुकम्पा से, मात्सर्यभाव न रखने से ।

चार कारणों से देवताओं में उत्पन्न होने योग्य कर्म बंधते हैं । यथा–सराग संयम से, श्रावक जीवनचर्या से, अज्ञान तप से और अकामनिर्जरा से ।

**सूत्र - ४०५**

वाद्य चार प्रकार के हैं । यथा–तत (वीणा आदि), वितत (ढोल आदि), धन (कांस्यताल आदि) और शुषिर (बांसुरी आदि) ।

नाट्य (नाटक) चार प्रकार के हैं । यथा–ठहर-ठहर कर नाचना । संगीत के साथ नाचना । संकेतों से भाव-अभिव्यक्ति करते हुए नाचना । झूककर या लेटकर नाचना ।

गायन चार प्रकार का है । यथा–नाचते हुए गायन करना । छंद (पद्य) गायन । मंद-मंद स्वर से गायन करना। शनैः शनैः स्वर को तेज करते हुए गायन करना ।

पुष्प रचना चार प्रकार की है । यथा–सूत के धागे से गूँथकर की जाने वाली पुष्प रचना । चारों ओर पुष्प बींटकर की जाने वाली रचना । पुष्प आरोपित करके की जाने वाली रचना । परस्पर पुष्प नाल मिलाकर की जाने वाली रचना ।

अलंकार रचना चार प्रकार की है । केशालंकार, वस्त्रालंकार, माल्यालंकार, आभरणालंकार ।

अभिनय चार प्रकार का है । यथा–किसी घटना का अभिनय करना । महाभारत का अभिनय करना । राजा मन्त्री आदि का अभिनय करना । मानव जीवन की विभिन्न अवस्थाओं का अभिनय करना ।

**सूत्र - ४०६**

सनत्कुमार और माहेन्द्रकल्प में चार वर्ण के विमान हैं । यथा–नीले, रक्त, पीत और श्वेत ।

महाशुक्र और सहस्रारकल्प में देवताओं के शरीर चार हाथ के ऊंचे हैं ।

**सूत्र - ४०७**

पानी के गर्भ चार प्रकार के हैं । ओस, धुंवर, अतिशीत, अतिगरम ।

पानी के गर्भ चार प्रकार के हैं । यथा–हिमपात । बादल से आकाश का आच्छादित होना । अतिशीत या अतिगरमी होना । वायु, बद्दल, गाज, बीजली और बरसना इन पाँचों का संयुक्त रूप से होना ।

**सूत्र - ४०८**

माघ मास में हिमपात से, फाल्गुन मास में बादलों से, चैत्र मास में अधिक शीत से और वैशाख में ऊपर कहे संयुक्त पाँच प्रकार से पानी का गर्भ स्थिर होता है ।

**सूत्र - ४०९**

मनुष्यणी (स्त्री) के गर्भ चार प्रकार के है । यथा–स्त्री रूपमें, पुरुष रूपमें, नपुंसकरूप में और बिंब रूपमें ।

**सूत्र - ४१०**

अल्प शुक्र और अधिक ओज का मिश्रण होने से गर्भ स्त्री रूप में उत्पन्न होता है । अल्पओज और अधिक शुक्र मिश्रण होने से गर्भ पुरुष रूप में उत्पन्न होता है ।

**सूत्र - ४११**

ओज और शुक्र के समान मिश्रण से गर्भ नपुंसक रूप में उत्पन्न होता है । स्त्री का स्त्री से सहवास होने पर गर्भ बिंब रूप में उत्पन्न होता है ।

**सूत्र - ४१२**

उत्पाद पूर्व के चार मूल वस्तु है ।

**सूत्र - ४१३**

काव्य चार प्रकार है । यथा–गद्य, पद्य, कथ्य और गेय ।

**सूत्र - ४१४**

नैरयिक जीवों के चार समुद्घात हैं । यथा–वेदना समुद्घात, कषाय समुद्घात, मारणान्तिक समुद्घात और वैक्रिय समुद्घात । वायुकायिक जीवों के भी ये चार समुद्घात हैं ।

**सूत्र - ४१५**

अर्हन्त अरिष्टनेमि-(नेमिनाथ) के चार सौ चौदह पूर्वधारी श्रमणों की उत्कृष्ट सम्पदा थी । वे जिन न होते हुए भी जिनसदृश थे । जिन की तरह पूर्ण यथार्थ वक्ता थे और सर्व अक्षर संयोगों के पूर्ण ज्ञाता थे ।

**सूत्र - ४१६**

श्रमण भगवान महावीर के चार सौ वादी मुनियों की उत्कृष्ट सम्पदा थी । वे देव, मनुष्य, असुरों की परीषद में कदापि पराजित होने वाले न थे ।

**सूत्र - ४१७**

नीचे के चार कल्प अर्ध चन्द्राकार हैं । यथा–सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार और माहेन्द्र ।

मध्य के चार कल्प पूर्ण चन्द्राकार हैं । यथा–ब्रह्मलोक, लांतक, महाशुक्र और सहस्रार ।

ऊपर के चार कल्प अर्ध चन्द्राकार हैं । यथा–आनत, प्राणत, आरण और अच्युत ।

**सूत्र - ४१८**

चार समुद्रों में से प्रत्येक समुद्र के पानी का स्वाद भिन्न-भिन्न प्रकार का है । यथा–लवण समुद्र के पानी का स्वाद लवण जैसा खारा है । वरुणोद समुद्र के पानी का स्वाद मद्य जैसा है । क्षीरोद समुद्र के पानी का स्वाद दूध जैसा है । घृतोद समुद्र के पानी का स्वाद घी जैसा है ।

**सूत्र - ४१९**

आवर्त चार प्रकार के हैं । यथा–खरावर्त-समुद्र में चक्र की तरह पानी का घूमना । उन्नतावर्त-पर्वत पर चक्र की तरह घूमकर चढ़ने वाला मार्ग । गूढ़ावर्त-दड़ी पर रस्सी से की जाने वाली गूंथन । आमिषावर्त-माँस के लिए आकाश में पक्षियों का घूमना ।

कषाय चार प्रकार के हैं । यथा–खरावर्त समान क्रोध । उन्नतावर्त समान मान । गूढ़ावर्त समान माया । आमिषावर्त समान लोभ ।

खरावर्त समान क्रोध करने वाला जीव मरकर नरक में उत्पन्न होता है ।

इसी प्रकार उन्नतावर्त समान मान करने वाला जीव । गूढ़ावर्त समान माया करने वाला जीव और आमिषा-वर्त समान लोभ करने वाला जीव मरकर नरक में उत्पन्न होता है ।

**सूत्र - ४२०**

अनुराधा नक्षत्र के चार तारे हैं । इसी प्रकार पूर्वाषाढ़ा और उत्तराषाढ़ा नक्षत्र के चार-चार तारे हैं ।

**सूत्र - ४२१**

चार स्थानों में संचित पुद्‌गल पाप कर्म रूप में एकत्र हुए हैं, होते हैं और भविष्य में भी होंगे । यथा–नारकीय जीवन में एकत्रित पुद्‌गल । तिर्यंच जीवन में एकत्रित पुद्‌गल । मनुष्य जीवन में एकत्रित पुद्‌गल । देव जीवन में एकत्रित पुद्‌गल । इसी प्रकार पुद्‌गलों का उपचय, बंध, उदीरण, वेदन और निर्जरा के एक-एक सूत्र कहें।

**सूत्र - ४२२**

चार प्रदेश वाले स्कन्ध अनेक हैं । चार आकाश प्रदेश में रहे हुए पुद्‌गल अनन्त हैं । चार गुण वाले पुद्‌गल अनन्त हैं । चार गुण रुखे पुद्‌गल अनन्त हैं ।

## स्थान–४ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

# स्थान–५

## उद्देशक-१

**सूत्र - ४२३**

महाव्रत पाँच कहे गए हैं । यथा–प्राणातिपात से सर्वथा विरत होना । यावत् परिग्रह से सर्वथा विरत होना ।

अणुव्रत पाँच कहे गए हैं । यथा–स्थूल प्राणातिपात से विरत होना । स्थूल मृषावाद से विरत होना । स्थूल अदत्तादान से विरत होना । स्व-स्त्री में सन्तुष्ट रहना । ईच्छाओं (परिग्रह) की मर्यादा करना ।

**सूत्र - ४२४**

वर्ण पाँच कहे गए हैं । यथा–कृष्ण, नील, रक्त, पीत, शुक्ल । रस पाँच कहे गए हैं । यथा–तिक्त यावत्–मधुर । काम गुण पाँच कहे गए हैं । यथा–शब्द, रूप, गंध, रस, स्पर्श । इन पाँचों में जीव आसक्त हो जाते हैं । शब्द यावत् स्पर्श में ।

इसी प्रकार पूर्वोक्त पाँचों में जीव राग भाव को प्राप्त होते हैं । इसी प्रकार पूर्वोक्त पाँचों में जीव मूर्च्छा भाव को प्राप्त होते हैं । इसी प्रकार पूर्वोक्त पाँचों में जीव गृद्धि भाव को प्राप्त होते हैं । इसी प्रकार पूर्वोक्त पाँचों में जीव आकांक्षा भाव को प्राप्त होते हैं । इसी प्रकार पूर्वोक्त पाँचों में जीव मरण को प्राप्त होते हैं ।

इन पाँचों का ज्ञान न होना जीवों के अहित के लिए होता है । इन पाँचों का ज्ञान न होना अशुभ होता है । इन पाँचों का ज्ञान न होना अनुचित होता है । इन पाँचों का ज्ञान न होना अकल्याण होता है । इन पाँचों का ज्ञान न होना अनानुगामिता के होता है । यथा–शब्द, यावत् स्पर्श ।

इन पाँचों का ज्ञान होना, त्याग होना जीवों के हित के लिए होता है । इन पाँचों का ज्ञान होना, शुभ के लिए होता है, इन पाँचों का ज्ञान होना उचित होता है, इन पाँचों का ज्ञान होना कल्याण होता है, इन पाँचों का ज्ञान होना अनुगामिकता होता है ।

इन पाँच स्थानों का न जानना, न त्यागना जीवों की दुर्गतिगमन के लिए होता है । यथा–शब्द, यावत् स्पर्श ।

इन पाँच स्थानों का ज्ञान और परित्याग जीवों की सुगतिगमन के लिए होता है । यथा–शब्द यावत् स्पर्श ।

**सूत्र - ४२५**

पाँच कारणों से जीव दुर्गति को प्राप्त होते हैं । यथा–प्राणातिपात से, यावत् परिग्रह से । पाँच कारणों से जीव सुगति को प्राप्त होते हैं । यथा–प्राणातिपात विरमण से, यावत् परिग्रह विरमण से ।

**सूत्र - ४२६**

पाँच प्रतिमाएं कही गई हैं । यथा–भद्रा प्रतिमा, सुभद्रा प्रतिमा, महाभद्रा प्रतिमा, सर्वतोभद्र प्रतिमा और भद्रोतर प्रतिमा ।

**सूत्र - ४२७**

पाँच स्थावरकाय कहे गए हैं । यथा–इन्द्र स्थावरकाय (पृथ्वीकाय), ब्रह्म स्थावरकाय (अप्काय), शिल्प स्थावरकाय (तेजस्काय), संमति स्थावरकाय (वायुकाय), प्राजापत्य स्थावरकाय (वनस्पतिकाय) ।

पाँच स्थावर कायों के ये पाँच अधिपति हैं । यथा–पृथ्वीकाय का अधिपति (इन्द्र), अप्काय का अधिपति (ब्रह्म), तेजस्काय का अधिपति (शिल्प), वायुकाय का अधिपति (संमति), वनस्पतिकाय का अधिपति (प्रजापति)।

**सूत्र - ४२८**

अवधि उपयोग की प्रथम प्रवृत्ति के समय अवधि ज्ञान-दर्शन, पाँच कारणों से चलित-क्षुब्ध होता है । यथा–पृथ्वी को छोटी देखकर, पृथ्वी को सूक्ष्म जीवों से व्याप्त देखकर, महान अजगर का शरीर देखकर, महान ऋद्धि वाले देव को अत्यन्त सुखी देखकर, ग्राम नगरादि में अज्ञात एवं गड़े हुए स्वामीरहित खजानों को देखकर ।

किन्तु इन पाँच कारणों से केवलज्ञान-केवलदर्शन चलित-क्षुब्ध नहीं होता है । यथा–पृथ्वी को छोटी देखकर यावत् ग्राम नगरादि में गड़े हुए अज्ञात खजानों को देखकर ।

**सूत्र - ४२९**

नैरयिकों के शरीर पाँच वर्ण वाले और पाँच रस वाले कहे गए हैं । यथा–कृष्ण यावत् शुक्ल । तिक्त यावत् मधुर । इसी प्रकार वैमानिक देव पर्यन्त २४ दण्डक के शरीरों के वर्ण और रस कहने चाहिए ।

पाँच शरीर कहे गए हैं । यथा–औदारिकशरीर, वैक्रियशरीर, आहारकशरीर, तेजसशरीर, कार्मणशरीर ।

औदारिक शरीर के पाँच वर्ण और पाँच रस कहे गए हैं । यथा–कृष्ण, यावत् शुक्ल । तिक्त यावत् मधुर ।

इसी प्रकार कार्मण शरीर पर्यन्त वर्ण और रस कहने चाहिए । सभी स्थूलदेहधारियों के शरीर पाँच वर्ण, पाँच रस, दो गंध और आठ स्पर्श युक्त हैं ।

**सूत्र - ४३०**

पाँच कारणों से प्रथम और अन्तिम जिन का उपदेश उनके शिष्यों को उन्हें समझने में कठिनाई होती है । दुराख्येय–आयास साध्य व्याख्या युक्त । दुर्विभजन–विभाग करने में कष्ट होता है । दुर्दर्श–कठिनाई से समझ में आता है । दु:सह–परीषह सहन करने में कठिनाई होती है । दुरनुचर–जिनाज्ञानुसार आचरण करने में कठिनाई होती है ।

पाँच कारणों से मध्य के २२ जिन का उपदेश उनके शिष्यों को सुगम होता है । यथा–सुआख्येय–व्याख्या सरलतापूर्वक करते हैं । सुविभाज्य–विभाग करने में किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता । सुदर्श–सरलतापूर्वक समझ लेते हैं । सुराह–शांतिपूर्वक परीषह सहन करते हैं । सुचर–प्रसन्नतापूर्वक जिनाज्ञानुसार आचरण करते हैं ।

भगवान महावीर ने श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए पाँच सद्गुण सदा प्रशस्त एवं आचरण योग्य कहे हैं । यथा–क्षमा, निर्लोभता, सरलता, मृदुता, लघुता ।

भगवान महावीर ने श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए पाँच सद्गुण सदा प्रशस्त एवं आचरण योग्य कहे हैं । यथा–१. सत्य, २. संयम, ३. तप, ४. त्याग, ५. ब्रह्मचर्य ।

भगवान महावीर ने श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए पाँच अभिग्रह सदा प्रशस्त एवं आचरण योग्य कहे हैं । यथा–उक्षिप्तचारी–'यदि गृहस्थ राँधने के पात्र में से जीमने के पात्र में अपने खाने के लिए आहार ले और उस आहार में से दे तो लेउं' । निक्षिप्तचारी–'रांधने के पात्र में से नीकाला हुआ आहार यदि गृहस्थ दे तो लेउं' । अंतचारी–भोजन करने के पश्चात् बढ़ा हुआ आहार लेने वाला मुनि । प्रान्तचारी–तुच्छ आहार लेने वाला रूक्षचारी–लूखा आहार लेने का अभिग्रह करने वाला मुनि ।

भगवान महावीर ने श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए पाँच अभिग्रह सदा प्रशस्त एवं आचरण योग्य कहे हैं । यथा–अज्ञातचारी–अपनी जाति-कुल आदि का परीचय दिये बिना आहार लेना । अन्य ग्लानचारी–दूसरे रोगी के लिए भिक्षा लाने वाला मुनि । मौनचारी–मौनव्रतधारी मुनि । संसृष्टकल्पिक–लेप वाले हाथ से कल्पनीय आहार दे तो लेना । तज्जात संतुष्ट कल्पिक–प्रासुक पदार्थ के लेप वाले हाथ से आहार दे तो लेऊं । ऐसे अभिग्रह वाल मुनि ।

भगवान महावीर ने श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए पाँच अभिग्रह प्रशस्त एवं सदा आचरण के योग्य कहे हैं । यथा –औपनिधिक–अन्य स्थान से लाया हुआ आहार लेने वाला मुनि । शुद्धैषणिक–निर्दोष आहार की गवेषणा करने वाला मुनि । संख्यादत्तिक–आज इतनी दत्ति ही आहार लेऊंगा । दृष्टलाभिक–देखी हुई वस्तु लेने के संकल्प वाला मुनि । पृष्ठलाभिक–आपको आहार दूँ ? ऐसा पूछकर आहार दे तो लेऊं ऐसी प्रतिज्ञा वाला मुनि ।

महावीर ने श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए पाँच अभिग्रह प्रशस्त एवं सदा आचरण करने योग्य कहे हैं । यथा–आचाम्लिक–आयंबिल करने वाला मुनि । निर्विकृतिक–घी आदि की विकृति को न लेने वाला मुनि । पुरिमार्धक–दिन के पूर्वार्ध तक प्रत्याख्यान करनेवाला मुनि । परिमितपिण्डपातिक–परिमित आहार लेने वाला मुनि । भिन्न पिण्डपातिक–अखण्ड नहीं किन्तु टुकड़े-टुकड़े किया हुआ आहार लेने वाला मुनि ।

महावीर ने श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए पाँच अभिग्रह प्रशस्त एवं सदा आचरण योग्य कहे हैं । यथा–अरसाहारी, विरसाहारी, अन्ताहारि, प्रान्ताहारी, रुक्षाहारी । महावीर ने श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए पाँच अभिग्रह प्रशस्त एवं सदा आचरण योग्य कहे हैं । यथा–अरसजीवी विरसजीवी, अंतजीवी, प्रान्तजीवी, रुक्षजीवी ।

महावीर ने श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए पाँच अभिग्रह प्रशस्त एवं सदा आचरण योग्य कहे हैं । यथा–स्थानाति-पद–कायोत्सर्ग करने वाला मुनि । उकडु आसन बैठनेवाला मुनि । प्रतिमास्थायी–'एक रात्रिकी' आदि प्रतिमाओं को धारण करने वाला मुनि । वीरासनिक–वीरासन से बैठने वाला मुनि । नैषधिक–पालथी लगाकर बैठनेवाला मुनि ।

महावीर ने श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए पाँच अभिग्रह सदा प्रशस्त एवं आचरण योग्य कहे हैं । यथा–दण्डाय-तिक–सीधे पैर कर सोने वाला मुनि । लगडशायी–आँके बाँके पैर व कमर कर सोने वाला मुनि । आतापक–शीत या ग्रीष्म की आतापना लेने वाला मुनि । अपावृतक–वस्त्र रहित रहने वाला मुनि । अकण्डूयक–खाज न खुजाने वाला मुनि ।

**सूत्र - ४३१**

पाँच कारणों से श्रमण निर्ग्रन्थ की महानिर्जरा और महापर्यवसान–मुक्ति होती है । यथा–ग्लानि के बिना आचार्य की सेवा करने वाला, ग्लानि के बिना उपाध्याय की सेवा करने वाला, ग्लानि के बिना स्थविर की सेवा करने वाला, ग्लानि के बिना तपस्वी की सेवा करने वाला, ग्लानि के बिना ग्लान की सेवा करने वाला ।

पाँच कारणों से श्रमण निर्ग्रन्थ की महानिर्जरा और महापर्यवसान होता है । यथा–ग्लानि के बिना नव-दीक्षित की सेवा करने वाला, कुल की सेवा करने वाला, गण की सेवा करने वाला, संघ की सेवा करने वाला, स्वधर्मी की सेवा करने वाला ।

**सूत्र - ४३२**

पाँच कारणों से श्रमण निर्ग्रन्थ साम्भोगिक साधर्मिक को विसंभोगी करे तो जिनाज्ञा का अतिक्रमण नहीं करता है । यथा–अकृत्य करने वाले को । अकृत्य करके आलोचना न करने वाले को । आलोचना करके प्रायश्चित्त न करने वाले को । प्रायश्चित्त लेकर भी आचरण न करने वाले को । ''अरे ! ये स्थविर ही बार-बार अकृत्य का सेवन करते हैं तो ये मेरा क्या कर सकेंगे ।'' ऐसा कहने वाले को ।

पाँच कारणों से श्रमण निर्ग्रन्थ (आचार्य) साम्भोगिक को पाराञ्चिक प्रायश्चित्त दे तो जिनाज्ञा का अति-क्रमण नहीं करता है । यथा–स्वकुल में भेद डालने के लिए कलह करने वाले को । स्वगण में भेद डालने के लिए कलह करने वाले को । हिंसा प्रेक्षी–साधु आदि को मारने के लिए उनका शोध करने वाले को । छिद्र प्रेक्षी–साधु आदि को मारने के लिए अवसर की तलाश में रहने वाले को । प्रश्न विद्या का बार-बार प्रयोग करने वाले को ।

**सूत्र - ४३३**

आचार्य और उपाध्याय के गण में विग्रह (कलह) के पाँच कारण हैं । यथा–आचार्य या उपाध्याय गण में रहने वाले श्रमणों को आज्ञा या निषेध सम्यक् प्रकार से न करे । गण में रहने वाले श्रमण दीक्षा पर्याय के क्रम से सम्यक् प्रकार से वंदना न करे । गण में काल क्रम से जिसको जिस आगम की वाचना देनी है उसे उस आगम की वाचना न दे । आचार्य या उपाध्याय अपने गण में ग्लान या शैक्ष्य की सेवा के लिए सम्यक् व्यवस्था न करे । गण में रहने वाले श्रमण गुरु की आज्ञा के बिना विहार करे ।

आचार्य उपाध्याय के गण में अविग्रह (कलह न होने) के पाँच कारण हैं । यथा–आचार्य या उपाध्याय गण में रहने वाले श्रमणों को आज्ञा या निषेध सम्यक् प्रकार से करे । गण में रहने वाले श्रमण दीक्षा पर्याय के क्रम से सम्यक् प्रकार वंदना करे । गण में कालक्रम से जिसको जिस आगम की वाचना देनी है उसे उस आगम की वाचना दे । आचार्य या उपाध्याय अपने गण में ग्लान या शैक्ष्य की सेवा के लिए सम्यक् व्यवस्था करे । गण में रहने वाले श्रमण गुरु की आज्ञा से विहार करे ।

**सूत्र - ४३४**

पाँच निषद्याएं (बैठने के ढंग) कही गई हैं । यथा–उत्कुटिका–उकडु बैठना । गोदोहिका–गाय दुहे उस आसन से बैठना । समपादपुता–पैर और पुत से पृथ्वी का स्पर्श करके बैठना । पर्यका–पलथी मारकर बैठना । अर्धपर्यका–अर्ध पद्मासन से बैठना ।

पाँच आर्जव (संवर) के हेतु कहे हैं । यथा–शुभ आर्जव, शुभ मार्दव, शुभ लाघव, शुभ क्षमा, शुभ निर्लोभता ।

**सूत्र - ४३५**

पाँच ज्योतिष्क देव कहे गए हैं । यथा–चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, तारा ।

पाँच प्रकार के देव कहे गए हैं । यथा–भव्य द्रव्य देव–देवताओं में उत्पन्न होने योग्य मनुष्य और तिर्यंच । नर देव–चक्रवर्ती । धर्मदेव–साधु । देवाधिदेव–अरिहंत । भावदेव–देवभव के आयुष्य का अनुभव करने वाले भवनपति आदि के देव ।

**सूत्र - ४३६**

पाँच प्रकार की परिचारणा (विषय सेवन) कही गई हैं । यथा–काय परिचारणा–केवल काया से मैथुन सेवन करना । यह परिचारणा दूसरे देवलोक तक होती है । स्पर्श परिचारणा–केवल स्पर्श होने से विषयेच्छा की पूर्ति होना । यह तीसरे चौथे देवलोक तक होती है । रूप परिचारणा–केवल रूप देखने से विषयेच्छा की पूर्ति होना । यह परिचारणा पाँचवे, छठे देवलोक तक होती है । शब्द परिचारणा–केवल शब्द श्रवण से विषयेच्छा की पूर्ति होना । यह परिचारणा सातवे, आठवे देवलोक तक होती है । मन परिचारणा–केवल मानसिक संकल्प से विषयेच्छा की पूर्ति होना । यह परिचारणा नवमें से बारहवे देवलोक तक होती है ।

**सूत्र - ४३७**

चमर असुरेन्द्र की पाँच अग्रमहिषियाँ कही गई हैं । यथा–काली, रात्रि, रजनी, विद्युत, मेघा । बलि वैरोच-नेन्द्र की पाँच अग्रमहिषियाँ कही गई हैं । यथा–शुभा, निशुभा, रंभा, निरंभा, मदना ।

**सूत्र - ४३८**

चमर असुरेन्द्र की पाँच सेनाएं हैं और उनके पाँच सेनापति हैं । यथा–पैदल सेना, अश्व सेना, हस्ति सेना, महिष सेना, रथ सेना ।

पाँच सेनापति है । द्रुम–पैदल सेना का सेनापति । सौदामी अश्वराज–अश्व सेना का सेनापति । कुंथु हस्ती राज–हस्तिसेना का सेनापति । लोहिताक्षमहिषराज–महिष सेना का सेनापति । किन्नर–रथ सेना का सेनापति ।

बलि वैरोचनेन्द्र की पाँच सेनाएं हैं और उनके पाँच-पाँच सेनापति हैं । यथा–पैदल सेना–यावत् रथ सेना । पाँच सेनापति हैं । महद्रुम–पैदल सेना के सेनापति । महासौदाम अश्वराज–अश्वसेना के सेनापति । मालंकार हस्ति-राज–हस्तिसेना के सेनापति । महालोहिताक्ष महिषराज–महिष सेना के सेनापति । किंपुरुष–रथसेना के सेनापति।

धरण नागकुमारेन्द्र की पाँच सेनाएं हैं और उनके पाँच सेनापति हैं, यथा–पैदल सेना–यावत् रथ सेना । पाँच सेनापति हैं । भद्रसेन–पैदल सेना के सेनापति । यशोधर अश्वराज–अश्व सेना के सेनापति । सुदर्शन हस्तिराज –हस्ति सेना के सेनापति । नीलकंठ महिषराज–महिष सेना के सेनापति । आनन्द–रथ सेना के सेनापति ।

भूतानन्द नागकुमारेन्द्र की पाँच सेनाएं हैं । यथा–पैदल सेना–यावत् रथ सेना । पाँच सेनापति हैं । दक्ष–पैदल सेना का सेनापति । सुग्रीव अश्वराज–अश्व सेना का सेनापति । सुविक्रम हस्तिराज–हस्ति सेना का सेनापति । श्वेतकण्ठ महिषराज–महिष सेना का सेनापति । नन्दुत्तर–रथ सेना का सेनापति ।

वेणुदेव सुपर्णेन्द्र की पाँच सेनापति और पाँच सेनाएं । यथा–पैदल सेना यावत् रथ सेना । धरण के सेनापतियों के नाम के समान वेणुदेव के सेनापतियों के नाम हैं । भूतानन्द के सेनापतियों के नाम के समान वेणुदालिय के सेनापतियों के नाम हैं ।

धरण के सेनापतियों के नाम के समान सभी दक्षिण दिशा के इन्द्रों के यावत् घोष के सेनापतियों के नाम हैं। भूतानन्द के सेनापतियों के नाम के समान सभी उत्तर दिशा के इन्द्रों के यावत् महाघोष के सेनापतियों के नाम हैं ।

शक्रेन्द्र की पाँच सेनाएं हैं और उनके पाँच सेनापति हैं । यथा–पैदलसेना, अश्वसेना, गजसेना, वृषभसेना, रथसेना । हरिणैगमैषी–पैदलसेना का सेनापति । वायु अश्वराज–अश्वसेना का सेनापति । एरावण हस्तिराज–हस्ति सेना का सेनापति । दामर्धि वृषभराज–वृषभ सेना का सेनापति । माढर–रथ सेना का सेनापति ।

ईशानेन्द्र की पाँच सेनाएं हैं, और उनके पाँच सेनापति हैं । यथा–पैदल सेना यावत् वृषभ सेना और रथ सेना ।

पाँच सेनापति-लघुपराक्रम-पैदल सेनाका सेनापति । महावायु अश्वराज-अश्वसेनाका सेनापति । पुष्पदन्त हस्तिराज-हस्ति सेना का सेनापति । महादामर्धि वृषभराज-वृषभ सेना का सेनापति । महामाढर-रथ सेना का सेनापति ।

शक्रेन्द्र के सेनापतियों के नाम के समान सभी दक्षिण दिशा के इन्द्रों के यावत् आरणकल्प के इन्द्रों के सेनापतियों के नाम हैं । ईशानेन्द्र के सेनापतियों के समान सभी उत्तर दिशा के इन्द्रों के यावत् अच्युतकल्प के इन्द्रों के सेनापतियों के नाम हैं ।

**सूत्र - ४३९**

शक्रेन्द्र की आभ्यन्तर परीषद के देवों की स्थिति पाँच पल्योपम की कही गई है । ईशानेन्द्र की आभ्यन्तर परीषद के देवियों की स्थिति पाँच पल्योपम की कही गई है ।

**सूत्र - ४४०**

पाँच प्रकार के प्रतिघात कहे गए हैं । यथा-गतिप्रतिघात-देवादि गतियों का प्राप्त न होना । स्थिति प्रतिघात-देवादि की स्थितियों का प्राप्त न होना । बंधन प्रतिघात-प्रशस्त औदारिकादि बंधनों का प्राप्त न होना । भोग प्रतिघात-प्रशस्त भोग-सुख का प्राप्त न होना । बल, वीर्य, पुरुषाकार पराक्रम प्रतिघात-बल आदि का प्राप्त न होना ।

**सूत्र - ४४१**

पाँच प्रकार की आजीविका है । जाति आजीविका-जाति बताकर आजीविका करना । कुल आजीविका-कुल बताकर आजीविका करना । कर्म आजीविका-कृषि आदि कर्म करके आजीविका करना । शिल्प आजीविका - वस्त्र आदि बूनकर आजीविका करना । लिंग आजीविका-साधु आदि का वेष धारण करके आजीविका करना ।

**सूत्र - ४४२**

पाँच प्रकार के राजचिन्ह हैं । खड्ग, छत्र, मुकुट, मोजड़ी, चामर ।

**सूत्र - ४४३**

पाँच कारणों से छद्मस्थजीव (साधु) उदय में आये हुए परीषहों और उपसर्गों को-समभाव से सहन करता है । समभाव से क्षमा करता है । समभाव से तितिक्षा करता है । समभाव से निश्चल होता है । समभाव से विचलित होता है वह इस प्रकार है ।

कर्मोदय से यह पुरुष उन्मत्त है इसलिए-मुझे आक्रोशवचन बोलता है । दुर्वचनों से मेरी भर्त्सना करता है । मुझे रस्सी आदि से बाँधता है । मुझे बंदीखाने में डालता है । मेरे शरीर के अवयवों का छेदन करता है । मेरे सामने उपद्रव करता है । मेरे वस्त्र, पात्र, कम्बल, या रजोहरण छीन लेता या दूर फैंक देता है । मेरे पात्रों को तोड़ता है । मेरे पात्र चुराता है ।

यह यक्षाविष्ट पुरुष है इसलिए यह-मुझे आक्रोश वचन बोलता है यावत् मेरे पात्र चूरा लेता है । इस भव में वेदने योग्य कर्म मेरे उदय में आए हैं । इसलिए यह पुरुष मुझे आक्रोश वचन बोलता है । यावत् मेरे पात्र चूरा लेता है । यदि में सम्यक् प्रकार से सहन नहीं करूँगा । .... क्षमा नहीं करूँगा । ... तितिक्षा नहीं करूँगा । ...निश्चल नहीं रहूँगा । तो मेरे केवल पापकर्म का बंध होगा । यदि मैं सम्यक् प्रकार से सहन करूँगा । ...क्षमा करूँगा । ...तितिक्षा करूँगा । ...निश्चल रहूँगा । तो मेरे केवल कर्मों की निर्जरा ही होगी ।

पाँच कारणों से केवली उदय में आये हुए परीषहों और उपसर्गों को-समभाव से सहन करता है-यावत् । ..निश्चल रहता है । यथा-(१) वह विक्षिप्त पुरुष है, इसलिए मुझे आक्रोश वचन बोलता है-यावत् मेरे पात्र चूरा लेता है । (२) यह दृप्तचित्त (अभिमानी) पुरुष है, इसलिए-मुझे आक्रोश वचन बोलता है-यावत् मेरे पात्र चूरा लेता है । यह यक्षाविष्ट पुरुष है इसलिए मुझे आक्रोश वचन बोलता है यावत् मेरे पात्र चूरा लेता है । इस भव में वेदने योग्य कर्म मेरे उदय में आए हैं, इसलिए यह पुरुष-मुझे आक्रोश वचन बोलता है-यावत् मेरे पात्र चूरा लेता है । (५) मुझे सम्यक् प्रकार से सहन करते हुए, क्षमा करते हुए, तितिक्षा करते हुए या निश्चल रहते हुए देखकर अन्य अनेक छद्मस्थ श्रमण निर्ग्रन्थ उदय में आये हुए परीषहों और उपसर्गों को सम्यक् प्रकार से सहन करेंगे-यावत्-निश्चल रहेंगे ।

**सूत्र - ४४४**

पाँच प्रकार के हेतु कहे गए हैं, यथा–अनुमान प्रमाण के अंग घूमादि हेतु को जानता नहीं है, अनुमान प्रमाण के अंग देखता नहीं है, अनुमान प्रमाण के अंग घूमादि हेतु पर श्रद्धा नहीं करता है । अनुमान प्रमाण के अंग घूमादि हेतु को प्राप्त नहीं करता है । अनुमान प्रमाण के अंग जाने बिना अज्ञान मरण मरता है ।

पाँच प्रकार के हेतु कहे गए हैं, यथा–हेतु से जानता नहीं है, यावत् हेतु से अज्ञान मरण करता है । पाँच प्रकार के हेतु कहे गए हैं, यथा–हेतु से जानता है, यावत् हेतु से छद्मस्थ मरण मरता है ।

पाँच हेतु कहे गए हैं, हेतु से जानता है, यावत् हेतु से छद्मस्थ मरण मरता है ।

पाँच अहेतु कहे गए हैं, यथा–अहेतु को नहीं जानता है, यावत् अहेतु रूप छद्मस्थ मरण मरता है । पाँच अहेतु कहे गए हैं, यथा–अहेतु से नहीं जानता है, यावत् अहेतु से छद्मस्थ मरण मरता है । पाँच अहेतु कहे गए हैं, यथा–अहेतु को जानता है यावत् अहेतु रूप केवलीमरण मरता है । पाँच अहेतु कहे गए हैं, यथा–अहेतु से जानता है, यावत् अहेतु से केवलीमरण मरता है ।

पाँच गुण केवली के अनुत्तर (श्रेष्ठ) कहे गए हैं, यथा–अनुत्तर ज्ञान, अनुत्तर दर्शन, अनुत्तर चारित्र, अनुत्तर तप, अनुत्तर वीर्य ।

**सूत्र - ४४५**

पद्मप्रभ अर्हन्त के पाँच कल्याणक चित्रा नक्षत्र में हुए हैं, यथा–चित्रा नक्षत्र में देवलोक से च्यवकर गर्भ में उत्पन्न हुए । चित्रा नक्षत्र में जन्म हुआ । चित्रा नक्षत्र में प्रव्रजित हुए । चित्रा नक्षत्र में अनंत, अनुत्तर, निर्व्याघात, पूर्ण, प्रतिपूर्ण केवल ज्ञान-दर्शन उत्पन्न हुआ । चित्रा नक्षत्र में निर्वाण प्राप्त हुए ।

पुष्पदन्त अर्हन्त के पाँच कल्याणक मूल नक्षत्र में हुए, यथा–मूल नक्षत्र में देवलोक से च्यवकर गर्भ में उत्पन्न हुए । मूल नक्षत्र में जन्म यावत् निर्वाण कल्याणक हुआ ।

**सूत्र - ४४६**

पद्मप्रभ अर्हन्त के पाँच कल्याणक चित्रा नक्षत्र में हुए । पुष्पदन्त अर्हन्त के पाँच कल्याणक मूल नक्षत्र में हुए । शीतल अर्हन्त के पाँच कल्याणक पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र में हुए । विमल अर्हन्त के पाँच कल्याणक उत्तराभाद्रपद नक्षत्र में हुए

**सूत्र - ४४७**

अनन्त अर्हन्त के पाँच कल्याणक रेवति नक्षत्र में हुए । धर्मनाथ अर्हन्त के पाँच कल्याणक पुष्य नक्षत्र में हुए शांतिनाथ अर्हन्त के पाँच कल्याणक भरणी नक्षत्र में हुए । कुन्थुनाथ अर्हन्त के पाँच कल्याणक कृत्तिका नक्षत्र में हुए। अरनाथ अर्हन्त के पाँच कल्याणक रेवति नक्षत्र में हुए ।

**सूत्र - ४४८**

मुनिसुव्रत अर्हन्त के पाँच कल्याणक श्रवण नक्षत्र में हुए । नमि अर्हन्त के पाँच कल्याणक अश्विनी नक्षत्र में हुए । नेमिनाथ अर्हन्त के पाँच कल्याणक चित्रा नक्षत्र में हुए । पार्श्वनाथ अर्हन्त के पाँच कल्याणक विशाखा नक्षत्र में हुए । महावीर के पाँच कल्याणक हस्तोत्तरा (चित्रा) नक्षत्र में हुए ।

**सूत्र - ४४९**

श्रमण भगवान महावीर के पाँच कल्याणक हस्तोत्तरा नक्षत्र में हुए । महावीर हस्तोत्तरा नक्षत्र में देवलोक से च्यवकर गर्भ में उत्पन्न हुए । हस्तोत्तरा नक्षत्र में देवानन्दा के गर्भ से त्रिशला के गर्भ में आए । हस्तोत्तरा नक्षत्र में जन्म हुआ । हस्तोत्तरा नक्षत्र में दीक्षित हुए और हस्तोत्तरा नक्षत्र में केवलज्ञान-दर्शन उत्पन्न हुआ ।

## स्थान-५ – उद्देशक-२

**सूत्र - ४५०**

निर्ग्रन्थ और निग्रन्थियों को ये पाँच महानदियाँ एक मास में या दो या तीन बार–तैरकर पार करना या नौका द्वारा पार करना नहीं कल्पता है । यथा–गंगा, यमुना, सरयू, ऐरावती, मही । पाँच कारणों से पार करना कल्पता है,

क्रुद्ध राजा आदि के भय से । दुष्काल होने पर । अनार्य द्वारा पीड़ा पहुँचाये जाने पर । बाढ़ के प्रवाह में बहते हुए व्यक्तियों को नीकालने के लिए । किसी महान् अनार्य द्वारा पीड़ित किये जाने पर ।

**सूत्र - ४५१**

निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियों को प्रावृट् ऋतु (प्रथम वर्षा) में ग्रामानुग्राम विहार करना नहीं कल्पता है, किन्तु पाँच कारणों से कल्पता है । यथा-क्रुद्ध राजा आदि के भय से । दुष्काल होने पर यावत् किसी महान् अनार्य द्वारा पीड़ा पहुँचाये जाने पर ।

वर्षावास रहे हुए निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियों को एक गाँव से दूसरे गाँव जाने के लिए विहार करना नहीं कल्पता है । पाँच कारणों से विहार करना कल्पता है, यथा-ज्ञान प्राप्ति के लिए, दर्शन-सम्यक्त्व की पुष्टि के लिए, चारित्र की रक्षा के लिए, आचार्य या उपाध्याय के मरने पर अन्य आचार्य या उपाध्याय के आश्रय में जाने के लिए । आचार्यादि द्वारा या अन्यत्र रहे हुए आचार्यादि की सेवा के लिए भेजने पर ।

**सूत्र - ४५३**

पाँच अनुद्घातिक (महा प्रायश्चित्त देने योग्य) कहे गए हैं, यथा-हस्त कर्म करने वाले को, मैथुन सेवन करने वाले को, रात्रि भोजन करने वाले को, सागारिक के घर से लाया हुआ आहार खाने वाले को । राजपिंड़ खाने वाले को ।

**सूत्र - ४५४**

पाँच कारणों से श्रमण निर्ग्रन्थ अन्तःपुर में प्रवेश करे तो भगवान की आज्ञा का अतिक्रमण नहीं करता है । यथा-पर सैन्य से घिर गया हो या आक्रमण के भय से नगर के द्वार बन्द कर दिये गए हों और श्रमण ब्राह्मण आहार - पानी के लिए कहीं आ जा न सकते हों तो श्रमण-निर्ग्रन्थ अन्तःपुर में सूचना देने के लिए जा सकता है । प्राति-हारिक (जो वस्तु लाकर वापस दी जाए) पीठ, फलक, संस्तारक आदि वस्तुएं देने के लिए श्रमण-निर्ग्रन्थ अन्तःपुर में जा सकता है । दुष्ट अश्व या उन्मत्त हस्ति के सामने आने पर भयभीत श्रमण निर्ग्रन्थ अन्तःपुर में जा सकता है । कोई जबरदस्त हाथ पकड़कर श्रमण निर्ग्रन्थ को अन्तःपुर में ले जावे तो जा सकता है । नगर से बाहर उद्यान में गये हुए श्रमण को यदि अन्तःपुर वाले घेरकर क्रीड़ा करे तो वह श्रमण अन्तःपुर में प्रविष्ट ही माना जाता है ।

**सूत्र - ४५५**

पाँच कारणों से स्त्री पुरुष के साथ सहवास न करने पर भी गर्भ धारण कर लेती है, यथा-जिस स्त्री की योनि अनावृत्त हो और वह जहाँ पर पुरुष का वीर्य स्खलित हुआ है ऐसे स्थान पर इस प्रकार बैठे की जिससे शुक्राणु योनि में प्रविष्ट हो जाए तो-शुक्र लगा हुआ वस्त्र योनि में प्रवेश करे तो-जानबूझकर स्वयं शुक्र को योनि में प्रविष्ट करावे तो-दूसरे के कहने से शुक्राणुओं को योनि में प्रवेश करे तो-नदी नाले के शीतल जल में आचमन के लिए कोई स्त्री जावे और उस समय उसकी योनि में शुक्राणु प्रविष्ट हो जाए तो -

पाँच कारणों से स्त्री पुरुष के साथ सहवास करने पर भी गर्भ धारण नहीं करती है, यथा-जिसे युवावस्था प्राप्त नहीं हुई है, वह जिसकी युवावस्था बीत गई है, वह जो जन्म से वन्ध्या हो, वह जो रोगी हो, वह जिसका मन शोक से संतप्त हो ।

पाँच कारणों से स्त्री पुरुष साथ सहवास करने पर भी गर्भ धारण नहीं करती है । यथा-जिसे नित्य रजस्राव होता है, वह जिसे कभी रजस्राव नहीं होता है, वह जिसके गर्भाशय का द्वार रोग से बन्द हो गया हो, वह जिसके गर्भाशय का द्वार रोगग्रसित हो, वह जो अनेक पुरुषों के साथ अनेक बार सहवास करती हो, वह ।

पाँच कारणों से स्त्री पुरुष के साथ सहवास करने पर भी गर्भ धारण नहीं करती है । यथा-रजस्राव काल में पुरुष के साथ विधिवत् सहवास न करने वाली । योनि-दोष से शुक्राणुओं के नष्ट होने पर । जिसका पित्त प्रधान रक्त हो वह । गर्भ धारण से पूर्व देवता द्वारा शक्ति नष्ट किये जाने पर । संतान होना भाग्य में न हो तो ।

**सूत्र - ४५५**

पाँच कारणों से निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियाँ एक जगह ठहरे, सोये या बैठे तो भगवान की आज्ञा का अतिक्र-मण

नहीं होता है । यथा-निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियाँ कदाचित् अनेक योजन लम्बी, निर्जन एवं अगम्य अटवी में पहुँच जावे तो-किसी ग्राम, नगर यावत् राजधानी में निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थियों में से किसी एक को ही उपाश्रय मिला हो तो-नागकुमार या सुपर्णकुमारावास में स्थान मिला हो तो-निर्ग्रन्थियों के वस्त्र यदि चोर ले जावें तो-यदि तरुण गुण्डे निर्ग्रन्थियों के साथ बलात्कार करना चाहें तो-

पाँच कारणों से अचेल निर्ग्रन्थ सचेल निर्ग्रन्थियों के साथ एक स्थान में रहे तो भगवान की आज्ञा का अतिक्रमण नहीं करता है । यथा-विक्षिप्त चित्त श्रमण के साथ यदि अन्य श्रमण न हो तो-इसी प्रकार हर्षातिरेक से दृप्तचित्त यक्षाविष्ट और वायु रोग से उन्मत्त हो तो-किसी साध्वी का पुत्र दीक्षित हो और उसके साथ यदि अन्य श्रमण न हो तो ।

**सूत्र - ४५६**

पाँच आश्रवद्वार कहे गए हैं, यथा-मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय, अशुभयोग ।

पाँच संवर द्वार कहे गए हैं-सम्यक्त्व, विरति, अप्रमाद, अकषाय, शुभयोग ।

पाँच प्रकार का दण्ड कहा गया है, यथा, अर्थ दण्ड-स्व-पर के हित के लिए त्रस या स्थावर प्राणी की हिंसा। अनर्थ दण्ड-निरर्थक हिंसा । हिंसा दण्ड-जिसने अतीत में हिंसा की है जो वर्तमान में हिंसा करता है और जो भविष्य में हिंसा करेगा-इस अभिप्राय से जो सर्प या शत्रु की घात करता है । अकस्मात दण्ड-किसी अन्य पर प्रहार किया था किन्तु वध अन्य का हो गया हो । दृष्टिविपर्यास-''यह शत्रु है'' इस अभिप्राय से कदाचित् मित्र का वध हो जाए ।

**सूत्र - ४५७**

मिथ्यादृष्टिओं को पाँच क्रियाएं कही गई हैं, यथा-आरम्भिकी, पारिग्रहिकी, मायाप्रत्ययिका, अप्रत्याख्यान क्रिया, मिथ्यादर्शन प्रत्यया ।

मिथ्यादृष्टि नैरयिकों के पाँच क्रियाएं कही हैं, आरम्भिकी यावत्, मिथ्यादर्शन प्रत्यया । इस प्रकार वैमानिक पर्यन्त सभी मिथ्यादृष्टियों को पाँच क्रियाएं कही गई हैं । विशेष-विकलेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि नहीं होते हैं । शेष पूर्ववत् है ।

पाँच क्रियाएं कही गई हैं, यथा-कायिकी, आधिकरणिकी, प्राद्वेषिकी, पारितापनिकी, प्राणातिपातिकी । नैरयिकों से लेकर वैमानिक पर्यन्त ये पाँच क्रियाएं हैं ।

पाँच क्रियाएं कही गई हैं, यथा-आरम्भिकी यावत्, मिथ्यादर्शन प्रत्यया । नैरयिकों से लेकर वैमानिक पर्यन्त ये पाँचों क्रियाएं हैं ।

पाँच क्रियाएं कही गई हैं, यथा-दृष्टिजा, पृष्टिजा, प्रातीत्यिकी, सामंतोपनिपातिकी, स्वाहस्तिकी । नैरयिकों से लेकर वैमानिक पर्यन्त ये पाँच क्रियाएं हैं ।

पाँच क्रियाएं कही गई हैं, यथा-नैसृष्टिकी, आज्ञापनिकी, वैदारणिकी, अनाभोग प्रत्यया, अनवकांक्षप्रत्यया नैरयिकों से लेकर वैमानिक पर्यन्त ये पाँच क्रियाएं हैं ।

पाँच क्रियाएं कही गई हैं-प्रेमप्रत्यया, द्वेषप्रत्यया, प्रयोगक्रिया, समुदान क्रिया, ईर्यापथिकी । ये पाँचों क्रियाएं केवल एक मनुष्य दण्डक में हैं । शेष दण्डकों में नहीं हैं ।

**सूत्र - ४५८**

परिज्ञा पाँच प्रकार की हैं, यथा-उपधि परिज्ञा, उपाश्रय परिज्ञा, कषाय परिज्ञा, योग परिज्ञा, भक्त परिज्ञा ।

**सूत्र - ४५९**

व्यवहार पाँच प्रकार का है, यथा-आगम व्यवहार, श्रुत व्यवहार, आज्ञा व्यवहार, धारणा व्यवहार, जीत व्यवहार । किसी विवादास्पद विषय में जहाँ तक आगम से कोई निर्णय नीकलता हो वहाँ तक आगम के अनुसार ही व्यवहार करना चाहिए । जहाँ किसी आगम से निर्णय न नीकलता हो वहाँ श्रुत से व्यवहार करना चाहिए । जहाँ श्रुत से निर्णय न नीकलता हो वहाँ गीतार्थ की आज्ञा के अनुसार व्यवहार करना चाहिए । जहाँ गीतार्थ की आज्ञा से समस्या हल न होती हो वहाँ धारणा के अनुसार व्यवहार करना चाहिए । जहाँ धारणा से समस्या न सुलझती हो वहाँ जीत (गीतार्थ पुरुषों की परम्परा द्वारा अनुसरित) आचार के अनुसार व्यवहार करना चाहिए । इस प्रकार आगमादि से

व्यवहार करना चाहिए ।

हे भगवन् ! श्रमण निर्ग्रन्थ आगम व्यवहार को ही प्रमुख मानने वाले हैं फिर ये पाँच व्यवहार क्यों कहे गए हैं ? इन पाँच व्यवहारों में से जहाँ जिस व्यवहार से समस्या सुलझती हो वहाँ उस व्यवहार से प्रवृत्ति करने वाला श्रमण निर्ग्रन्थ आज्ञा का आराधक होता है ।

**सूत्र - ४६०**

सोये हुए संयत मनुष्यों के पाँच जागृत हैं, यथा–शब्द यावत्–स्पर्श । जागृत संयत मनुष्यों के पाँच सुप्त हैं, यथा–शब्द यावत्–स्पर्श । सुप्त या जागृत असंयत मनुष्यों के पाँच जागृत हैं, यथा–शब्द यावत् स्पर्श ।

**सूत्र - ४६१**

पाँच कारणों से जीव कर्म-रज ग्रहण करता है, यथा–प्राणातिपात से यावत् परिग्रह से । पाँच कारणों से जीव कर्म-रज से मुक्त होता है, यथा–प्राणातिपात विरमण से यावत् परिग्रह विरमण से ।

**सूत्र - ४६२**

पाँच मास वाली पाँचवी भिक्षु-प्रतिमा धारण करने वाले अणगार को पाँच दत्ति आहार की और पाँच-पाँच दत्ति पानी की लेना कल्पता है ।

**सूत्र - ४६३**

पाँच प्रकार के उपघात (आहारादि की अशुद्धि) है । यथा–उद्गमोपघात-गृहस्थ द्वारा लगने वाले आधाकर्म आदि सोलह दोष । उत्पादनोपघात-साधु द्वारा लगने वाले धात्री आदि सोलह दोष । एकणोपघात-साधु और गृहस्थ द्वारा लगने वाले धात्री आदि सोलह दोष । परिकर्मोपघात-वस्त्र-पात्र के छेदन या सिलाई आदि में मर्यादा का उल्लंघन परिहरणोपघात-एकाकी विचरने वाले साधु के वस्त्र-पात्रादि उपकरणों को उपयोग में लेना ।

पाँच प्रकार की विशुद्धि कही गई है, यथा–उद्गमविशुद्धि, उत्पादनविशुद्धि, एषणा विशुद्धि, परिकर्म-विशुद्धि, परिहरणविशुद्धि । पूर्वोक्त उद्गमादि दोषों का सेवन न करना विशुद्धि है ।

**सूत्र - ४६४**

पाँच कारणों से जीव दुर्लभ बोधी रूप कर्म बाँधते हैं, यथा–अरिहंतों का अवर्णवाद बोलने पर, अरिहंत कथित धर्म का अवर्णवाद बोलने पर, आचार्यों या उपाध्यायों का अवर्णवाद बोलने पर, चतुर्विध संघ का अवर्णवाद बोलने पर, उत्कृष्ट तप और ब्रह्मचर्य का पालन करने से हुए देवों का अवर्णवाद बोलने पर ।

पाँच कारणों से जीव सुलभ बोधि रूप कर्म बाँधते हैं । यथा–अरिहंतों का गुणानुवाद करने पर–यावत् उत्कृष्ट तप और ब्रह्मचर्य के पालने से हुए...देवों के गुणानुवाद करने पर ।

**सूत्र - ४६५**

प्रतिसंलीन पाँच प्रकार के हैं, यथा–श्रोत्रेन्द्रिय प्रतिसंलीन-यावत् स्पर्शेन्द्रिय प्रतिसंलीन । अप्रतिसंलीन पाँच प्रकार के हैं, यथा–श्रोत्रेन्द्रिय अप्रतिसंलीन यावत् स्पर्शेन्द्रिय अप्रतिसंलीन ।

संवर पाँच प्रकार के हैं, यथा–श्रोत्रेन्द्रिय संवर–यावत् स्पर्शेन्द्रिय संवर ।

असंवर पाँच प्रकार के हैं, यथा–श्रोत्रेन्द्रिय असंवर यावत् स्पर्शेन्द्रिय असंवर ।

**सूत्र - ४६६**

संयम पाँच प्रकार का है, यथा–सामायिक संयम, छेदोपस्थापनीय संयम, परिहार विशुद्धि संयम, सूक्ष्म सम्पराय संयम, यथाख्यात चारित्र संयम ।

**सूत्र - ४६७**

एकेन्द्रिय जीवों की हिंसा न करने वाले को पाँच प्रकार का संयम होता है, यथा–पृथ्वीकायिक संयम–यावत् वनस्पतिकायिक संयम । एकेन्द्रिय जीवों की हिंसा करने वाले को पाँच प्रकार का असंयम होता है, यथा–पृथ्वीकायिक असंयम–यावत्–वनस्पतिकायिक असंयम ।

**सूत्र - ४६८**

पंचेन्द्रिय जीवों की हिंसा न करने वालों के पाँच प्रकार का संयम होता है, यथा–श्रोत्रेन्द्रिय संयम यावत् स्पर्शेन्द्रिय संयम । पंचेन्द्रिय जीवों की हिंसा करने वालों के पाँच प्रकार का असंयम होता है, यथा–श्रोत्रेन्द्रिय यावत् स्पर्शेन्द्रिय असंयम ।

सभी प्राण, भूत, सत्त्व और जीवों की हिंसा न करने वालों के पाँच प्रकार का संयम होता है, यथा–एके-न्द्रिय संयम यावत् पंचेन्द्रिय संयम । सभी प्राण, भूत, सत्त्व और जीवों की हिंसा करने वालों के पाँच प्रकार का असंयम होता है, यथा–एकेन्द्रिय असंयम–यावत् पंचेन्द्रिय असंयम ।

**सूत्र - ४६९**

तृण वनस्पति कायिक जीव पाँच प्रकार के हैं, यथा–अग्रबीज, मूलबीज, पर्वबीज, स्कन्धबीज, बीजरुह ।

**सूत्र - ४७०**

आचार पाँच प्रकार का है, यथा–ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार, वीर्याचार ।

**सूत्र - ४७१**

आचार प्रकल्प पाँच प्रकार का है, यथा–मासिक उद्घातिक-लघुमास, मासिक अनुद्घातिक-गुरुमास, चातुर्मासिक उद्घातिक-लघु चौमासी, चातुर्मासिक अनुद्घातिक-गुरु चौमासी, आरोपणा-प्रायश्चित्त में वृद्धि करना।

आरोपणा पाँच प्रकार की है, यथा–प्रस्थापिता–आरोपणा करने के गुरुमास आदि प्रायश्चित्त रूप तपश्चर्या का प्रारम्भ करना । स्थापिता–गुरुजनों की वैयावृत्य करने के लिए आरोपित प्रायश्चित्त के अनुसार भविष्य में तपश्चर्या करना । कृत्स्ना–वर्तमान जिनशासन में उत्कृष्ट तप मास का माना गया है अतः इससे अधिक प्रायश्चित्त न देना । अकृत्स्ना–यदि दोष के अनुसार प्रायश्चित्त देने पर छः मास से अधिक प्रायश्चित्त आता हो तथापि छः मास का ही प्रायश्चित्त देना । हाडहडा-लघुमास आदि प्रायश्चित्त शीघ्रतापूर्वक देना ।

**सूत्र - ४७२**

जम्बूद्वीप में मेरु पर्वत के पूर्व में सीता महानदी के उत्तर में पाँच वक्षस्कार पर्वत हैं, यथा–माल्यवंत, चित्रकूट, पद्मकूट, नलिनकूट, एक शैल । जम्बूद्वीप में मेरु पर्वत के पूर्व में सीता महानदी के दक्षिण में पाँच वक्षस्कार पर्वत हैं, यथा–त्रिकूट, वैश्रमणकूट, अंजन, मातंजन, सोमनस । जम्बूद्वीप में मेरु पर्वत के पश्चिम में सीता महानदी के दक्षिण में पाँच वक्षस्कार पर्वत हैं । यथा–विद्युत्प्रभ, अंकावती, पद्मावती, आशिविष, सुखावह । जम्बू-द्वीप में मेरु पर्वत के पश्चिम में सीता महानदी के उत्तर में पाँच वक्षस्कार पर्वत हैं, यथा–चन्द्रपर्वत, सूर्यपर्वत, नाग-पर्वत, देवपर्वत, गंधमादनपर्वत ।

जम्बूद्वीप में मेरु पर्वत के दक्षिण में देव कुरुक्षेत्र में पाँच महाद्रह हैं, यथा–निषधद्रह, देवकुरुद्रह, सूर्यद्रह, सुलहद्रह, विद्युत्प्रभद्रह । जम्बूद्वीप में मेरु पर्वत के दक्षिण में उत्तर कुरुक्षेत्र में पाँच महाद्रह हैं, नीलवंतद्रह, उत्तर कुरुद्रह, चन्द्रद्रह, एरावणद्रह, माल्यवंतद्रह ।

सीता महानदी की ओर तथा मेरु पर्वत की ओर सभी वक्षस्कार पर्वत ५०० योजन ऊंचे हैं, और ५०० गाऊ भूमि में गहरे हैं । धातकीखण्ड के पूर्वार्ध में मेरु पर्वत के पूर्व में, सीता महानदी के उत्तर में पाँच वक्षस्कार पर्वत हैं । (जम्बूद्वीप के समान), धातकीखण्ड के पश्चिमार्ध में (जम्बूद्वीप के समान), पुष्करवरद्वीपार्ध के पश्चिमार्ध में भी जम्बूद्वीप के समान वक्षस्कार पर्वत और द्रहों की ऊंचाई आदि कहनी चाहिए । समय क्षेत्र में पाँच भरत, पाँच ऐरवत यावत् पाँच मेरु और पाँच मेरु चूलिकाएं हैं ।

**सूत्र - ४७३**

कौशलिक अर्हन्त ऋषभदेव पाँच सौ धनुष के ऊंचे थे । चक्रवर्ती महाराजा भरत पाँच सौ धनुष ऊंचे थे । बाहुबली अणगार भी इतने ही ऊंचे थे । ब्राह्मी नाम की आर्या पाँच सौ धनुष ऊंची थी । सुन्दरी नाम की आर्या भी इतनी ही ऊंची थी ।

**सूत्र - ४७४**

पाँच कारणों से सोया हुआ मनुष्य जागृत होता है, यथा–शब्द सूनने से, हाथ आदि के स्पर्श से, भूख लगने से, निद्रा क्षय से, स्वप्न दर्शन से ।

**सूत्र - ४७५**

पाँच कारणों से श्रमण निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी को पकड़ कर रखे या सहारा दे तो भगवान की आज्ञा का अति-क्रमण नहीं करता है । साध्वी को यदि कोई उन्मत्त पशु या पक्षी मारता हो । दूर्ग या विषम मार्ग में साध्वी प्रस्खलित हो या गिर रही हो । निर्ग्रन्थी कीचड़ में फस गई हो या लिपट गई हो । निर्ग्रन्थी को नाव पर चढ़ाना या उतारना हो। जो निर्ग्रन्थी विक्षिप्त चित्त, क्रुद्ध, यक्षाविष्ट, उन्मत्त, उपसर्ग प्राप्त, कलह से व्याकुल, प्रायश्चित्तयुक्त यावत् भक्त-पान प्रत्याख्यात हो अथवा संयम से च्युत की जा रही हो ।

**सूत्र - ४७६**

गण में आचार्य और उपाध्याय के पाँच अतिशय । यथा–आचार्य और उपाध्याय उपाश्रय में प्रवेश करके धूल भरे पैरों को दूसरे साधुओं से झटकवावे या साफ करावे तो भगवान की आज्ञा का उल्लंघन नहीं होता । आचार्य और उपाध्याय उपाश्रय में मल-मूत्र का उत्सर्ग करे या उसकी शुद्धि करे तो भगवान की आज्ञा का उल्लंघन नहीं होता । आचार्य और उपाध्याय ईच्छा हो तो वैयावृत्य करे, ईच्छा न हो तो न करे फिर भी आज्ञा का अतिक्रमण नहीं होता । आचार्य और उपाध्याय उपाश्रय में एक या दो रात अकेले रहे तो भी आज्ञा का अतिक्रमण नहीं होता । आचार्य और उपाध्याय उपाश्रय के बाहर एक या दो रात अकेले रहे तो भी आज्ञा का अतिक्रमण नहीं होता ।

**सूत्र - ४७७**

पाँच कारणों से आचार्य और उपाध्याय गण छोड़कर चले जाते हैं । गण में आचार्य और उपाध्याय की आज्ञा या निषेध का सम्यक् प्रकार से पालन न होता हो । गण में वय और ज्ञान ज्येष्ठ का वन्दनादि व्यवहार सम्यक् प्रकार से पालन करवा न सके तो । गण में श्रुत की वाचना यथोचित रीति से न दे सके तो । स्वगण की या परगण की निर्ग्रन्थी में आसक्त हो जाए तो । मित्र या स्वजन यदि गण छोड़कर चला जाए तो उसे पुनः स्वगण में स्थापित करने के लिए आचार्य या उपाध्याय गण छोड़कर चला जाए तो ।

**सूत्र - ४७८**

पाँच प्रकार के ऋद्धिमान् मनुष्य हैं, यथा–अर्हन्त, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, भावितात्मा अणगार ।

## स्थान-५ – उद्देशक-३

**सूत्र - ४७९**

पाँच अस्तिकाय हैं, यथा–धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय, पुद्गलास्ति-काय

धर्मास्तिकाय अवर्ण, अगंध, अरस, अस्पर्श, अरूपी, अजीव, शाश्वत, अवस्थित लोकद्रव्य है । वह पाँच प्रकार का है, यथा–द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से, भाव से और गुण से । द्रव्य से–धर्मास्तिकाय एक द्रव्य है, क्षेत्र से–लोक प्रमाण है, काल से–अतीत में कभी नहीं था ऐसा नहीं, वर्तमान में नहीं है ऐसा नहीं, भविष्य में कभी नहीं होगा ऐसा भी नहीं । धर्मास्तिकाय अतीत में था, वर्तमान में है और भविष्य में भी रहेगा । वह ध्रुव, नियत, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित और नित्य है । भाव से–अवर्ण, अगंध, अरस और अस्पर्श है । गुण से–गमन सहायक गुण है ।

अधर्मास्तिकाय धर्मास्तिकाय के समान पाँच प्रकार का है । विशेष यह कि गुण से–स्थिति सहायक गुण है।

आकाशास्तिकाय धर्मास्तिकाय के समान पाँच प्रकार का है । विशेष यह की क्षेत्र से–आकाशास्तिकाय लोकालोक प्रमाण है । गुण से–अवगाहन गुण है ।

जीवास्तिकाय धर्मास्तिकाय के समान पाँच प्रकार का है । विशेष यह की द्रव्य से–जीवास्तिकाय अनन्त जीव द्रव्य है । गुण से–उपयोग गुण है ।

पुद्गलास्तिकाय पाँच वर्ण, पाँच रस, दो गंध और आठ स्पर्श युक्त है । रूपी, अजीव, शाश्वत, अवस्थित है।

द्रव्य से-पुद्‌गलास्तिकाय अनन्त द्रव्य है । क्षेत्र से-लोक प्रमाण है । काल से-अतीत में कभी नहीं था ऐसा नहीं-यावत् नित्य है । भाव से-वर्ण, गंध, रस और स्पर्श युक्त है । गुण से-ग्रहण गुण है ।

**सूत्र - ४८०**

गति पाँच है, नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति, देवगति, सिद्धगति ।

**सूत्र - ४८१**

पाँच इन्द्रियों के पाँच विषय हैं, यथा-श्रोत्रेन्द्रिय का विषय 'शब्द' यावत् स्पर्शेन्द्रिय का विषय 'स्पर्श' ।

मुंड पाँच प्रकार के हैं, यथा-श्रोत्रेन्द्रिय मुण्ड-यावत्-स्पर्शेन्द्रिय मुण्ड । अथवा मुंड पाँच प्रकार के हैं, यथा - क्रोधमुंड, मानमुंड, मायामुंड, लोमभुंड, शिरमुंड ।

**सूत्र - ४८२**

अधोलोक में पाँच बादर (स्थूल) कायिक जीव हैं, यथा-पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, वायुकायिक, वनस्पति-कायिक, औदारिक शरीर वाले-त्रस प्राणी । ऊर्ध्व लोक में अधोलोक के समान पाँच प्रकार के बादरकायिक जीव हैं, तिरछालोक में पाँच प्रकार के बादर कायिक जीव हैं, यथा एकेन्द्रिय यावत् पंचेन्द्रिय ।

पाँच प्रकार के बादर तेजस्कायिक जीव हैं । इंगाल-अंगारे । ज्वाला । मुर्मुर-राख से मिश्रित अग्नि । अर्चि - शिखा सहित अग्नि । अलात-जलती हुई लकड़ी या छाणा ।

पाँच प्रकार के बादर वायुकायिक जीव हैं, यथा-पूर्वदिशा का वायु, पश्चिम दिशा का वायु, दक्षिण दिशा का वायु, उत्तर दिशा का वायु, विदिशाओं का वायु ।

पाँच प्रकार के अचित्त वायुकायिक जीव हैं, यथा-अक्रान्त-दबाने से पैदा होने वाला वायु । ध्मात-धमण से पैदा होने वाला वायु । पीड़ित-वस्त्र की नीचोड़ने से होने वाला वायु । शरीरानुगत-डकार या श्वासादि रूप वायु । सम्मूर्च्छिम-पंखा आदि से उत्पन्न वायु ।

**सूत्र - ४८३**

निर्ग्रन्थ पाँच प्रकार के हैं, पुलाक, बकुश, कुशील, निर्ग्रन्थ, स्नातक ।

पुलाक पाँच प्रकार के हैं, यथा-ज्ञान पुलाक, दर्शन पुलाक, चारित्र पुलाक, लिंग पुलाक, यथासूक्ष्म पुलाक।

बकुश पाँच प्रकार के हैं ।-भोग बकुश, अनाभोग बकुश, संवृत्त बकुश, असंवृत बकुश, यथा सूक्ष्म बकुश ।

कुशील पाँच प्रकार के हैं, यथा-ज्ञान कुशील, दर्शन कुशील, चारित्र कुशील, लिंग कुशील, यथा सूक्ष्म कुशील

निर्ग्रन्थ पाँच प्रकार के हैं, यथा-प्रथम समय निर्ग्रन्थ, अप्रथम समय निर्ग्रन्थ, चरम समय निर्ग्रन्थ, अचरम समय निर्ग्रन्थ, यथासूक्ष्म निर्ग्रन्थ ।

स्नातक पाँच प्रकार के हैं, यथा-अच्छवी-शरीर रहित । अशबल-अतिचार रहित । अकर्मांश-कर्म रहित । शुद्ध ज्ञान-दर्शन के धारक अर्हन्त जिन केवली । अपरिश्रावी-तीनों योगों का निरोध करने वाला अयोगी ।

**सूत्र - ४८४**

निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियों को पाँच प्रकार के वस्त्रों का उपभोग या परिभोग कल्पता है, जांगमिक कंबल आदि भांगमिक-अलसी का वस्त्र । सानक-शण का वस्त्र । पोतक-कपास का वस्त्र । तिरीडपट्ट-वृक्ष की छाल का वस्त्र ।

निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियों को पाँच प्रकार के रजोहरणों का उपभोग या परिभोग कल्पता है । यथा-और्णिक - ऊन का बना हुआ । औष्ट्रिक-ऊंट के बालों का बना हुआ । शानक-शण का बना हुआ । बल्वज-घास की छाल से बना हुआ । मुज का बना हुआ ।

**सूत्र - ४८५**

धार्मिक पुरुष के पाँच आलम्बन स्थान हैं, यथा-छकाय, गण, राजा, गृहपति और शरीर ।

**सूत्र - ४८६**

निधि पाँच प्रकार की है, यथा-पुत्रनिधि, मित्रनिधि, शिल्पनिधि, धननिधि और धान्यनिधि ।

**सूत्र - ४८७**

शौच पाँच प्रकार का है, पृथ्वीशौच, जलशौच, अग्निशौच, मंत्रशौच और ब्रह्मशौच ।

**सूत्र - ४८८**

इन पाँच स्थानों को छद्मस्थ पूर्ण रूप से न जानता है और न देखता है । यथा-धर्मास्तिकाय, अधर्मास्ति-काय, आकाशास्तिकाय, शरीररहित जीव, परमाणुपुद्‌गल । किन्तु इन्हीं पाँचों स्थानों को केवलज्ञानी पूर्णरूप से जानते हैं और देखते हैं, यथा-धर्मास्तिकाय यावत् परमाणु पुद्‌गल ।

**सूत्र - ४८९**

अधोलोक में पाँच भयंकर बड़ी नरके हैं । यथा-काल, महाकाल, रौरव, महारौरव और अप्रतिष्ठान-ऊर्ध्व लोक में पाँच महाविमान हैं, यथा-विजय, वैजयंत, जयंत, अपराजयंत, सर्वार्थसिद्धमहाविमान ।

**सूत्र - ४९०**

पुरुष पाँच प्रकार के हैं, यथा-ह्री सत्व-लज्जा से धैर्य रखने वाला, ह्री मन सत्व-लज्जा से मन में धैर्य रखने वाला, चल सत्व-अस्थिर चित्त वाला, स्थिर सत्व-स्थिर चित्त वाला, उदात्त सत्व-बढ़ते हुए धैर्य वाला ।

**सूत्र - ४९१**

मत्स्य पाँच प्रकार के हैं,-अनुश्रोतचारी-प्रवाह के अनुसार चलनेवाला, प्रतिश्रोतचारी-प्रवाह के सामने जाने वाला । अंतचारी-किनारे किनारे चलने वाला, प्रान्तचारी-प्रवाह के मध्य में चलने वाला, सर्वचारी-सर्वत्र चलने वाला ।

इसी प्रकार भिक्षु पाँच प्रकार के हैं, यथा-अनुश्रोतचारी-यावत्-सर्वश्रोतचारी । उपाश्रय से भिक्षाचर्या प्रारम्भ करने वाला, दूर से भिक्षाचार्य प्रारम्भ करके उपाश्रय तक आने वाला, गाँव के किनारे बसे हुए घरों से भिक्षा लेने वाला, गाँव के मध्य में बसे हुए घरों से भिक्षा लेने वाला, सभी घरों से भिक्षा लेने वाला ।

**सूत्र - ४९२**

वनीपक-याचक पाँच प्रकार के हैं, यथा-अतिथिवनीपक, दरिद्रीवनीपक, ब्राह्मणवनीपक, श्वानवनीपक, श्रमणवनीपक ।

**सूत्र - ४९३**

पाँच कारणों से अचेलक प्रशस्त होता है, यथा-अल्पप्रत्युपेक्षा-अल्प उपधि होने से अल्प-प्रतिलेखन होता है प्रशस्त लाघव-अल्प उपधि होने से अल्पराग होता है । वैश्वासिक रूप-विश्वास पैदा करने वाला वेष । अनुज्ञात तप-जिनेश्वर सम्मत अल्प उपधि रूप तप । विपुल इन्द्रिय निग्रह-इन्द्रियों का महान् निग्रह ।

**सूत्र - ४९४**

उत्कट पुरुष पाँच प्रकार के हैं, यथा-दण्ड उत्कट-अपराध करने पर कठोर दण्ड देने वाला । राज्योत्कट-ऐश्वर्य में उत्कृष्ट । स्तेन उत्कट-चोरी करने में उत्कृष्ट । देशोत्कट-देश में उत्कृष्ट । सर्वोत्कट-सब से उत्कृष्ट ।

**सूत्र - ४९५**

समितियाँ पाँच हैं, यथा-इर्या समिति यावत् पारिष्ठापनिका समिति ।

**सूत्र - ४९६**

संसारी जीव पाँच प्रकार के हैं, यथा-एकेन्द्रिय यावत् पंचेन्द्रिय ।

एकेन्द्रिय जीव पाँच गतियों में पाँच गतियों से आकर उत्पन्न होते हैं । एकेन्दिंय जीव एकेन्द्रियों में एके-न्द्रियों से यावत् पंचेन्द्रियों से आकर उत्पन्न होता है । एकेन्द्रिय एकेन्द्रियपन को छोड़कर एकेन्द्रिय रूप में यावत् पंचेन्द्रिय रूप में उत्पन्न होता है ।

द्वीन्द्रिय जीव पाँच स्थानों में पाँच स्थानों से आकर उत्पन्न होते हैं । द्वीन्द्रिय जीव एकेन्द्रियों में यावत्-पंचेन्द्रियों में आकर उत्पन्न होते हैं । ....... त्रीन्द्रिय जीव पाँच स्थानों में पाँच स्थानों से आकर उत्पन्न होते हैं । त्रीन्द्रिय जीव एकेन्द्रियों में यावत् पंचेन्द्रियों में आकर उत्पन्न होते हैं ।

चतुरिन्द्रिय जीव पाँच स्थानों में पाँच स्थानों से आकर उत्पन्न होते हैं । चतुरिन्द्रिय जीव एकेन्द्रियों में यावत् पंचेन्द्रियों में आकर उत्पन्न होते हैं ।

पंचेन्द्रिय जीव पाँच स्थानों में पाँच स्थानों से आकर उत्पन्न होते हैं । पंचेन्द्रिय जीव एकेन्द्रियों में यावत्-पंचेन्द्रियों में आकर उत्पन्न होते हैं ।

सभी जीव पाँच प्रकार के हैं, यथा-क्रोध कषायी-यावत् अकषायी । अथवा सभी जीव पाँच प्रकार के हैं, यथा-नैरयिक यावत् सिद्ध ।

**सूत्र - ४९७**

हे भगवन् ! चणा, मसूर, तिल, मूँग, उड़द, बाल, कुलथ, चँवला, तुवर और कालाचणा कोठे में रखे हुए इन धान्यों की कितनी स्थिति है ? हे गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट पाँच वर्ष । इसके पश्चात् योनि (जीवोत्पत्ति-स्थान) कुमला जाती है और शनैः शनैः योनि विच्छेद हो जाता है ।

**सूत्र - ४९८**

संवत्सर पाँच प्रकार के हैं, यथा-नक्षत्र संवत्सर, युग संवत्सर, प्रमाण संवत्सर, लक्षण संवत्सर, शनैश्चर संवत्सर ।

युग संवत्सर पाँच प्रकार के हैं, यथा-चंद्र, चंद्र, अभिवर्धित, चंद्र, अभिवर्धित ।

प्रमाण संवत्सर पाँच प्रकार का है, यथा-नक्षत्र संवत्सर, चंद्र संवत्सर, ऋतु संवत्सर, आदित्य संवत्सर, अभिवर्धित संवत्सर । लक्षण संवत्सर पाँच प्रकार का है, यथा-

**सूत्र - ४९९**

जिस तिथि में जिस नक्षत्र का योग होना चाहिए उस नक्षत्र का उसी तिथि में योग होता है जिसमें ऋतुओं का परिणमन क्रमशः होता रहता है, जिसमें सरदी और गरमी का प्रमाण बराबर रहता है, और जिसमें वर्षा अच्छी होती है वह नक्षत्र संवत्सर कहा है ।

**सूत्र - ५००**

जिसमें सभी पूर्णिमाओं में चन्द्र का योग रहता है, जिसमें नक्षत्रों की विषम गति होती है । जिसमें अतिशीत और अति ताप पड़ता है, और जिसमें वर्षा अधिक होती है वह चंद्र संवत्सर होता है ।

**सूत्र - ५०१**

जिसमें वृक्षों का यथासमय परिणमन नहीं होता है, ऋतु के बिना फल लगते हैं, वर्षा भी नहीं होती है उसे कर्म संवत्सर या ऋतु संवत्सर कहते हैं ।

**सूत्र - ५०२**

जिसमें पृथ्वी जल, पुष्प और फलों को सूर्य रस देता है और थोड़ी वर्षा से भी पाक अच्छा होता है उसे आदित्य संवत्सर कहते हैं ।

**सूत्र - ५०३**

जिसमें क्षण, लव, दिवस और ऋतु सूर्य से तप्त रहते हैं, और जिसमें सद धूल उड़ती रहती है । उसे अभिवर्धित संवत्सर कहते हैं ।

**सूत्र - ५०४**

शरीर से जीव के नीकलने के पाँच मार्ग हैं, यथा-पैर, उरू, वक्षःस्थल, शिर, सर्वाङ्ग । पैरों से नीकलने पर जीव नरकगामी होता है, उरू से नीकलने पर जीव तिर्यंचगामी होता है, वक्षःस्थल से नीकलने पर जीव मनुष्य गति प्राप्त होता है । शिर से नीकलने पर जीव देवगतिगामी होता है, सर्वाङ्ग से नीकलने पर जीव मोक्षगामी होता है ।

**सूत्र - ५०५**

छेदन पाँच प्रकार के हैं, यथा-उत्पाद छेदन-नवीन पर्याय की अपेक्षा से पूर्वपर्याय का छेदन । व्यय छेदन-पूर्व

पर्याय का व्यय । बंध छेदन-कर्मबंध का छेदन । प्रदेश छेदन-जीव द्रव्य के बुद्धि से कल्पित प्रदेश । द्विधाकार छेदन-जीवादिद्रव्यों के दो विभाग करना ।

आनन्तर्य पाँच प्रकार का है, यथा-उत्पादानान्तर्य-जीवों की निरन्तर उत्पत्ति । व्ययानन्तर्य-जीवों का निरन्तर मरण । प्रदेशानन्तर्य-प्रदेशों का निरन्तर अविरह । समयानन्तर्य-समय का निरन्तर अविरह । सामान्यान्तर्य -उत्पाद आदि के अभाव में निरन्तर अविरह ।

अनन्त पाँच प्रकार के हैं, यथा-नाम अनन्त, स्थापना अनन्त, द्रव्य अनन्त, गणना अनन्त, प्रदेशानन्त ।

अनन्तक पाँच प्रकार के हैं, यथा-एकतः अनन्तक-दीर्घता की अपेक्षा जो अनन्त है एक श्रेणी का क्षेत्र । द्विधा अनन्तक-लम्बाई और चौड़ाई की अपेक्षा से जो अनन्त हो । देश विस्तार अनन्तक-रूचक प्रदेश से पूर्व आदि किसी एक दिशा में देश का जो विस्तार हो । सर्वविस्तार अनन्तक-अनन्तप्रदेशी सम्पूर्ण आकाश । शाश्वता-नन्तक-अनन्त समय की स्थिति वाले जीवादि द्रव्य ।

**सूत्र - ५०६**

ज्ञान पाँच प्रकार के हैं, यथा-आभिनिबोधिक ज्ञान, श्रुत ज्ञान, अवधि ज्ञान, मनःपर्यवज्ञान, केवल ज्ञान ।

**सूत्र - ५०७**

ज्ञानावरणीय कर्म पाँच प्रकार के हैं, यथा-आभिनिबोधिकज्ञानावरणीय कर्म यावत्-केवलज्ञानावरणीय कर्म

**सूत्र - ५०८**

स्वाध्याय पाँच प्रकार के हैं, यथा-वाचना, पृच्छना, परिवर्तना, अनुप्रेक्षा, धर्मकथा ।

**सूत्र - ५०९**

प्रत्याख्यान पाँच प्रकार के हैं, यथा-श्रद्धा शुद्ध, विनय शुद्ध, अनुभाषना शुद्ध, अनुपालना शुद्ध, भाव शुद्ध।

**सूत्र - ५१०**

प्रतिक्रमण पाँच प्रकार के हैं, यथा-आश्रव द्वार-प्रतिक्रमण, मिथ्यात्व-प्रतिक्रमण, कषाय-प्रतिक्रमण, योग -प्रतिक्रमण, भाव-प्रतिक्रमण ।

**सूत्र - ५११**

पाँच कारणों से गुरु शिष्य को वाचना देते हैं-यथा-संग्रह के लिए-शिष्यों को सूत्र का ज्ञान कराने के लिए । उपग्रह के लिए-गच्छ पर उपकार करने के लिए । निर्जरा के लिए-शिष्यों को वाचना देने से कर्मों की निर्जरा होती है । सूत्र ज्ञान दृढ़ करने के लिए । सूत्र का विच्छेद न होने देने के लिए ।

पाँच कारणों से सूत्र सीखे, यथा-ज्ञान वृद्धि के लिए, दर्शन शुद्धि के लिए, चारित्र शुद्धि के लिए, दूसरे का दुराग्रह छुड़ाने के लिए, पदार्थों के यथार्थ ज्ञान के लिए ।

**सूत्र - ५१२**

सौधर्म और ईशान कल्प में विमान पाँच सौ योजन के ऊंचे हैं ।

ब्रह्मलोक और लान्तक कल्प में देवताओं के भवधारणीय शरीर ऊंचाई में पाँच हाथ ऊंचे हैं ।

नैरयिकों ने पाँच वर्ण और पाँच रस वाले कर्म पुद्गल बाँधे हैं, बाँधते हैं और बाँधेंगे । यथा-कृष्ण यावत् शुक्ल । तिक्त यावत् मधुर । इसी प्रकार वैमानिक देव पर्यन्त (चौबीस दण्डकों में) कहें ।

**सूत्र - ५१३**

जम्बूद्वीप में मेरु पर्वत के दक्षिण में गंगा महानदी में पाँच महानदियाँ मिलती हैं, यथा-यमुना, सरयू, आदि, कोसी, मही । जम्बूद्वीपवर्ती मेरु के दक्षिण में सिन्धु महानदी में पाँच महानदियाँ मिलती हैं । यथा-शतद्रू, विभाषा, वित्रस्ता, एरावती, चंद्रभागा । जम्बूद्वीप वर्ती मेरु के उत्तर में रक्ता महानदी में पाँच महानदियाँ मिलती हैं, यथा-कृष्णा, महा कृष्णा, नीला, महानीला, महातीरा । जम्बूद्वीप वर्ती मेरु के उत्तर में रक्तावती महानदी में पाँच महानदियाँ मिलती हैं, यथा-इन्द्रा, इन्द्र सेना, सुसेणा, वारिसेणा, महाभोगा ।

**सूत्र - ५१४**

पाँच तीर्थंकर कुमारावस्था में (राज्य ग्रहण किए बिना) मुण्डित यावत् प्रव्रजित हुए, यथा–वासुपूज्य, मल्ली, अरिष्टनेमी, पार्श्वनाथ, महावीर ।

**सूत्र - ५१५**

चमरचंचा राजधानी में पाँच सभाएं हैं, यथा–सुधर्मासभा, उपपातसभा, अभिषेकसभा, अलंकारसभा, व्यवसायसभा । प्रत्येक इन्द्र स्थान में पाँच-पाँच सभाएं हैं, यथा–सुधर्मा सभा यावत् व्यवसायसभा ।

**सूत्र - ५१६**

पाँच नक्षत्र पाँच पाँच तारा वाले हैं, यथा–घनिष्ठा, रोहिणी, पुनर्वसु, हस्त, विशाखा ।

**सूत्र - ५१७**

जीवों ने पाँच स्थानों में कर्म पुद्गलों को पाप कर्म रूप में चयन किया, करते हैं और करेंगे । यथा–एकेन्द्रिय रूप में यावत् पंचेन्द्रिय रूप में । इसी प्रकार उपचय, बंध, उदीरणा, वेदन तथा निर्जरा सम्बन्धी सूत्रक हैं ।

पाँच प्रदेश वाले स्कन्ध अनन्त हैं । पाँच प्रदेशावगाढ़ पुद्गल अनन्त हैं । पाँच समयाश्रित पुद्गल अनन्त हैं। पाँच गुण कृष्ण यावत् पाँच गुण रूक्ष पुद्गल अनन्त हैं ।

## स्थान–५ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

## स्थान-६

**सूत्र - ५१८**

छः स्थान युक्त अणगार गण का अधिपति हो सकता है । यथा-श्रद्धालु, सत्यवादी, मेघावी, बहुश्रुत, शक्ति सम्पन्न, क्लेशरहित ।

**सूत्र - ५१९**

छः कारणों से निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी को पकड़कर रखे या सहारा दे तो भगवान की आज्ञा का अतिक्रमण नहीं होता । यथा-विक्षिप्त को, क्रुद्ध को, यक्षाविष्ट को, उन्मत्त को, उपसर्ग युक्त को, कलह करती हुई को ।

**सूत्र - ५२०**

छः कारणों से निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियाँ कालगत साधर्मिक के प्रति आदरभाव करे तो आज्ञा का अतिक्रमण नहीं होता है । यथा-उपाश्रय से बाहर नीकलना हो, उपाश्रय से बाहर से जंगल में ले जाना हो, मृत को बाँधना हो, जागरण करना हो, अनुज्ञापन कना हो, चूपचाप साथ जावे तो ।

**सूत्र - ५२१**

छः स्थान छद्मस्थ पूर्ण रूप से नहीं जानता है और नहीं देखता है । यथा-धर्मास्तिकाय को, अधर्मास्तिकाय को, आकाशास्तिकाय को, शरीर रहित जीव को, परमाणु पुद्गल को, शब्द को । इन्हीं छः स्थानों को केवलज्ञानी अर्हन्त जिन पूर्णरूप से जानते हैं और देखते हैं । यथा-१. धर्मास्तिकाय को-यावत् शब्द को ।

**सूत्र - ५२२**

छः कारणों से जीवों को ऋद्धि, द्युति, यश, बल, वीर्य और पराक्रम प्राप्त नहीं होता है । यथा-जीव को अजीव करना चाहे तो, अजीव को जीव करना चाहे तो, सच और झूठ एक साथ बोले तो, स्वकृत कर्म भोगे या न भोगे-ऐसा माने तो, परमाणु को छेदन-भेदन करना चाहे अथवा अग्नि से जलाना चाहे तो, लोक से बाहर जाने तो ।

**सूत्र - ५२३**

छः जीव निकाय हैं, यथा-पृथ्वीकाय यावत् त्रसकाय ।

**सूत्र - ५२४**

छः ग्रह छः छः तारा वाले हैं, यथा-शुक्र, बुध, बृहस्पति, अंगारक, शनैश्चर, केतु ।

**सूत्र - ५२५**

संसारी जीव छः प्रकार के हैं, यथा-पृथ्वीकायिक यावत्-त्रसकायिक । पृथ्वीकायिक जीव छः गति और छः आगति वाले हैं, यथा-१. पृथ्वीकायिक जीव पृथ्वीकाय में उत्पन्न होते हैं तो पृथ्वीकायिकों से-यावत्-त्रस-कायिकों से उत्पन्न होते हैं । वही पृथ्वीकायिक जीव पृथ्वीकायिकपने को छोड़कर पृथ्वीकायिकपने को यावत्-त्रसकायिकपने को प्राप्त होता है । अप्कायिक जीव छः गति और छः आगति वाले हैं । इसी प्रकार यावत् त्रस-कायिक पर्यन्तक है ।

**सूत्र - ५२६**

जीव छः प्रकार के हैं, यथा-आभिनिबोधिक ज्ञानी-यावत्-केवलज्ञानी और अज्ञानी ।

अथवा जीव छः प्रकार के हैं, यथा-१. औदरिक शरीरी, २. वैक्रिय शरीरी, ३. आहारक शरीरी, ४. तैजस शरीरी, ५. कार्मण शरीरी, ६. अशरीरी ।

**सूत्र - ५२७**

तृण वनस्पतिकाय छः प्रकार के हैं, यथा-१. अग्रबीज, २. मूलबीज, ३. पर्वबीज, ४. स्कन्धबीज, ५. बीज-रूह, ६. सम्मूर्च्छिम ।

**सूत्र - ५२८**

छः स्थान सब जीवों को सुलभ नहीं है, मनुष्यभव, आर्यक्षेत्र में जन्म, सुकुल में उत्पत्ति, केवली कथित धर्म का श्रवण, श्रुत धर्म पर श्रद्धा, श्रद्धित, प्रतीत और रोचित धर्म का आचरण । छः इन्द्रियों के छः विषय हैं । यथा-

**सूत्र - ५२९**

श्रोत्रेन्द्रिय का विषय-यावत्-स्पर्शेन्द्रिय का विषय, मन का विषय।

**सूत्र - ५३०**

संवर छः प्रकार के हैं, यथा-श्रोत्रेन्द्रिय संवर यावत् स्पर्शेन्द्रिय संवर और मन संवर। असंवर (आश्रव) छः प्रकार के हैं, यथा-श्रोत्रेन्द्रिय असंवर-यावत् स्पर्शेन्द्रिय असंवर, और मन असंवर।

**सूत्र - ५३१**

सुख छः प्रकार का है, यथा-श्रोत्रेन्द्रिय का सुख यावत् स्पर्शेन्द्रिय का सुख, और मन का सुख। दुःख छः प्रकार का है, यथा-श्रोत्रेन्द्रिय का दुःख यावत् स्पर्शेन्द्रिय का दुःख, और मन का दुःख।

**सूत्र - ५३२**

प्रायश्चित्त छः प्रकार का है, यथा-आलोचना योग्य-गुरु के समक्ष सरलतापूर्वक लगे हुए दोष को स्वीकार करना। प्रतिक्रमण योग्य-लगे हुए दोष की निवृत्ति के लिए पश्चात्ताप करना और पुनः दोष न लगे ऐसी सावधानी रखना। उभय योग्य-आलोचन और प्रतिक्रमण योग्य। विवेक योग्य-आधाकर्म आदि आहार को परठकर शुद्ध होना व्युत्सर्ग योग्य-कायचेष्टा का निरोध करके शुद्ध होना। तप योग्य-विशिष्ट तप करके शुद्ध होना।

**सूत्र - ५३३**

मनुष्य छः प्रकार के हैं, यथा-जम्बूद्वीप में उत्पन्न। धातकी खण्ड द्वीप के पूर्वार्ध में उत्पन्न। धातकी खण्ड द्वीप के पश्चिमार्ध में उत्पन्न। पुष्करवरद्वीपार्ध के पूर्वार्ध में उत्पन्न। पुष्करवरद्वीपार्ध के पश्चिमार्ध में उत्पन्न। अन्तर द्वीपों में उत्पन्न। अथवा मनुष्य छः प्रकार के हैं, यथा-सम्मूर्च्छिम मनुष्य कर्म भूमि में उत्पन्न। सम्मूर्च्छिम मनुष्य अकर्मभूमि में उत्पन्न। सम्मूर्च्छिम मनुष्य अन्तरद्वीपों में उत्पन्न। गर्भज मनुष्य कर्मभूमि में उत्पन्न। गर्भज मनुष्य अकर्मभूमि में उत्पन्न। गर्भज मनुष्य अन्तरद्वीपों में उत्पन्न।

**सूत्र - ५३४**

ऋद्धिमान मनुष्य छः प्रकार के हैं, यथा-अरिहन्त, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, चारण, विद्याधर।

ऋद्धिरहित मनुष्य छः प्रकार के हैं, यथा-हेमवन्त क्षेत्र के। हैरण्यवन्त क्षेत्र के। हरिवर्ष क्षेत्र के। रम्यक् क्षेत्र के। देवकुरु और उत्तरकुरु क्षेत्र के। अन्तरद्वीपों के।

**सूत्र - ५३५**

अवसर्पिणी काल छः प्रकार का है, सुषम-सुषमा यावत् दुषम-दुषमा। उत्सर्पिणी काल छः प्रकार का है, यथा-दुषम दुःषमा यावत् सुषम सुषमा।

**सूत्र - ५३६**

जम्बूद्वीपवर्ती भरत और ऐरवत क्षेत्रों में अतीत उत्सर्पिणी के सुषम-सुषमा काल में मनुष्य छः हजार धनुष के ऊंचे थे, और उनका परमायु तीन पल्योपमों का था। जम्बूद्वीपवर्ती भरत और ऐरवत क्षेत्रों में इस उत्सर्पिणी के सुषम-सुषमा काल में मनुष्यों की ऊंचाई और उनका परमायु पूर्ववत् ही था। जम्बूद्वीपवर्ती भरत और ऐरवत क्षेत्रों में आगामी उत्सर्पिणी के सुषम-सुषमा काल में मनुष्यों की ऊंचाई और उनका परमायु पूर्ववत् ही होगा। जम्बूद्वीप-वर्ती देवकुरु उत्तर कुरुक्षेत्रों में मनुष्यों की ऊंचाई और उनका परमायु पूर्ववत् ही है। इसी प्रकार धातकी खण्ड द्वीप के पूर्वार्ध में पूर्ववत् चार आलापक हैं-यावत् पुष्करवर द्वीपार्ध के पश्चिमार्ध में भी पूर्ववत् चार आलापक हैं।

**सूत्र - ५३७**

संघयण छः प्रकार के हैं, यथा-वज्रऋषभनाराच संहनन, ऋषभनाराच संहनन, नाराच संहनन, अर्धनाराच संहनन, कीलिका संहनन, सेवार्त संहनन।

**सूत्र - ५३८**

संस्थान छः प्रकार के हैं, यथा-सम चतुरस्र संस्थान, न्यग्रोध परिमण्डल संस्थान, साती संस्थान, कुब्ज

संस्थान, वामन संस्थान, हुण्ड संस्थान ।

**सूत्र - ५३९**

अनात्मभाववर्ती (कषाययुक्त) मनुष्यों के लिए ये छह स्थान अहितकर हैं, अशुभ हैं, अशांति मिटाने में असमर्थ हैं, अकल्याणकर हैं, और अशुभ परम्परा वाले हैं, यथा–आयु, परिवार-पुत्रादि, या शिष्यादि, श्रुत, तप, लाभ, और पूजा-सत्कार ।

आत्मभाववर्ती (कषायरहित) मनुष्यों के लिए उक्त छह स्थान हितकर हैं, शुभ हैं, अशान्ति मिटाने में समर्थ हैं, कल्याणकर हैं, और शुभ परम्परा वाले हैं, यथा–पर्याय यावत् पूजा-सत्कार ।

**सूत्र – ५४०, ५४१**

जाति आर्य मनुष्य छः प्रकार के हैं । यथा– अंबष्ठ, कलंद, वैदेह, वेदगायक, हरित और चुंचण ।

**सूत्र - ५४२**

कुलार्य मनुष्य छः प्रकार के हैं, यथा–उग्र कुल के, भोग कुल के, राजन्य कुल के, इक्ष्वाकु कुल के, ज्ञात कुल के और कौरव कुल के ।

**सूत्र - ५४३**

लोक स्थिति छः प्रकार की है, यथा–आकाश पर वायु, वायु पर उदधि, उदधि पर पृथ्वी, पृथ्वी पर त्रस और स्थावर प्राणी, जीव के सहारे अजीव, कर्म के सहारे जीव ।

**सूत्र - ५४४**

दिशाएं छः हैं यथा–पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर, ऊर्ध्व, अधो ।

उक्त छह दिशाओं में जीवों की गति होती है । इसी प्रकार जीवों की आगति, व्युत्क्रान्ति, आहार, शरीर की वृद्धि, शरीर की हानि, शरीर की विकुर्वणा, गतिपर्याय, वेदनादि समुद्घात, दिन-रात आदि काल का संयोग, अवधि आदि दर्शन से सामान्य ज्ञान, अवधि आदि ज्ञान से विशेष ज्ञान, जीवस्वरूप का प्रत्यक्ष ज्ञान, पुद्गलादि अजीव-स्वरूप का प्रत्यक्ष ज्ञान । इसी प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यंचों के और मनुष्यों के चौदह-चौदह सूत्र हैं ।

**सूत्र – ५४५, ५४६**

छः कारणों से श्रमण निर्ग्रन्थ के आहार करने पर भगवान की आज्ञा का अतिक्रमण नहीं होता, यथा–

क्षुधा शान्त करने के लिए, सेवा करने के लिए, इर्या समिति के शोधन के लिए, संयम की रक्षा के लिए, प्राणियों की रक्षा के लिए, धर्म चिन्तन के लिए ।

**सूत्र - ५४७**

छः कारण से श्रमण निर्ग्रन्थ के आहार त्यागने पर भगवान की आज्ञा का अतिक्रमण नहीं होता । यथा–

**सूत्र - ५४८**

आतंक-ज्वरादि की शांति के लिए, उपसर्ग–राजा या स्वजनों द्वारा उपसर्ग किये जाने पर, तितिक्षा–सहिष्णु बनने के लिए, ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए, प्राणियों की रक्षा के लिए, शरीर त्यागने के लिए ।

**सूत्र - ५४९**

छ कारणों से आत्मा उन्माद को प्राप्त होता है, यथा–अर्हन्तों का अवर्णवाद बोलने पर, अर्हन्त प्रज्ञप्त धर्म का अवर्णवाद बोलने पर, आचार्य और उपाध्यायों के अवर्णवाद बोलने पर, चतुर्विध संघ का अवर्णवाद बोलने पर, यक्षाविष्ट होने पर, मोहनीय कर्म का उदय होने पर ।

**सूत्र - ५५०**

प्रमाद छः प्रकार का है, यथा–१. मद्य, २. निद्रा, ३. विषय, ४. कषाय, ५. द्यूत, ६. प्रतिलेखना में प्रमाद ।

**सूत्र – ५५१, ५५२**

प्रमाद पूर्वक की गई प्रतिलेखना छः प्रकार की है, यथा– आरभटा–उतावल से प्रतिलेखना करना,

संमर्दा-मर्दन करके प्रतिलेखना करना, मोसली-वस्त्र के ऊपर के नीचे के या तिर्यक् भाग को प्रतिलेखन करते हुए परस्पर छुहाना । प्रस्फोटना-वस्त्र की रज को भड़काना । विक्षिप्ता-प्रतिलेखित वस्त्रों को अप्रतिलेखित वस्त्रों पर रखना । वेदिका-प्रतिलेखना करते समय विधिवत् न बैठना

**सूत्र - ५५३, ५५४**

अप्रमाद प्रतिलेखना छह प्रकार की है, यथा- अनर्तिता-शरीर या वस्त्र को न नचाते हुए प्रतिलेखना करना । अवलिता-वस्त्र या शरीर को झुकाये बिना प्रतिलेखना करना । अनानुबंधि-उतावल या झटकाये बिना प्रतिलेखना करना । अमोसली-वस्त्र को मसले बिना प्रतिलेखना करना । छः पुरिमा और नव खोटका ।

**सूत्र - ५५५**

लेश्याएं छः हैं, यथा-कृष्णलेश्या यावत् शुक्ललेश्या । तिर्यंच पंचेन्द्रियों में छह लेश्याएं हैं, यथा-कृष्णलेश्या यावत् शुक्ललेश्या । मनुष्य और देवताओं में छः लेश्याएं हैं, यथा-कृष्णलेश्या यावत् शुक्ललेश्या ।

**सूत्र - ५५६**

शक्र देवेन्द्र देवराज सोम महाराजा की छः अग्रमहिषियाँ हैं ।

**सूत्र - ५५७**

ईशान देवेन्द्र की मध्यम परीषद के देवों की स्थिति छः पल्योपम की है ।

**सूत्र - ५५८**

छः श्रेष्ठ दिक्कुमारियाँ हैं, यथा-रूपा, रूपांशा, सुरूपा, रूपवती, रूपकांता, रूपप्रभा । छः श्रेष्ठ विद्युत्-कुमारियाँ हैं, आला, शुक्रा, सतेरा, सौदामिनी, इन्द्रा, घनविद्युता ।

**सूत्र - ५५९**

धरण नागकुमारेन्द्र की छः अग्रमहिषियाँ हैं । यथा-आला, शुक्रा, सतेरा, सौदामिनी, इन्द्रा, घनविद्युता । भूतानन्द नागकुमारेन्द्र की छः अग्रमहिषियाँ हैं, यथा-रूपा, रूपांशा, सुरूपा, रूपवती, रूपकांता, रूपप्रभा । घोष पर्यन्त दक्षिण दिशा के सभी देवेन्द्रों की अग्रमहिषियों के नाम धरणेन्द्र के समान हैं । महाघोष पर्यन्त उत्तर दिशा के सभी देवेन्द्रों की अग्रमहिषियों के नाम भूतानन्द के समान हैं ।

**सूत्र - ५६०**

धरण नागकुमारेन्द्र के छः हजार सामानिक देव हैं । इसी प्रकार भूतानन्द यावत् महाघोष नागकुमारेन्द्र के छः हजार सामानिक देव हैं ।

**सूत्र - ५६१**

अवग्रहमति छः प्रकार की है, यथा-१. क्षिप्रा-क्षयोपशम की निर्मलता से शंख आदि के शब्द को शीघ्र ग्रहण करने वाली मति । २. बहु-शंख आदि अनेक प्रकार के शब्दों को ग्रहण करने वाली मति । ३. बहुविध-शब्दों के माधुर्य आदि पर्यायों को ग्रहण करने वाली मति । ४. ध्रुव-एक बार धारण किये हुए अर्थ को सदा के लिए स्मरण में रखने वाली मति । ५. अनिश्रित-ध्वजादि चिह्न के बिना ग्रहण करने वाली मति । ६. असंदिग्ध-संशय रहित ग्रहण करने वाली मति ।

ईहामति छः प्रकार की है, यथा-क्षिप्र ईहामति-शीघ्र विचार करने वाली मति-यावत्-संदेह रहित विचार करने वाली मति ।

अवायमति छः प्रकार की है । यथा-शीघ्र निश्चय करने वाली मति यावत् संदेह रहित निश्चय करने वाली मति ।

धारण छः प्रकार की है, यथा-१. बहु धारणा-बहुत धारण करने वाली मति । २. बहुविध धारणा-अनेक प्रकार से धारण करने वाली मति । ३. पुराण धारणा-पुराणो को धारण करने वाली मति । ४. दुर्धर धारणा-गहन विषयों को धारण करने वाली मति । ५. अनिश्रित धारणा-ध्वजा आदि चिह्नों के बिना धारण करने वाली मति । ६. असंदिग्ध धारणा-संशय बिना धारण करने वाली मति ।

**सूत्र - ५६२**

बाह्य तप छह प्रकार का है, यथा-१. अनशन-आहार त्याग, एक उपवास से लेकर छः मास पर्यन्त । २. ऊनोदरिका-कवल आदि न्यून ग्रहण करना । ३. भिक्षाचर्या-नाना प्रकार के अभिग्रह धारण करके आहार आदि ग्रहण करना । ४. रस परित्याग-क्षीर आदि मधुर रसों का त्याग करना । ५. काय क्लेश-अनेक प्रकार के उत्कटुक आदि आसन करना । ६. प्रति संलिनता-इन्द्रिय जय, कषाय जय और योगों का जय ।

आभ्यन्तर तप छह प्रकार का है, यथा-१. प्रायश्चित्त-आलोचनादि दस प्रकार का प्रायश्चित्त । २. विनय-जिस तप के द्वारा विशेष रूप से कर्मों का नाश हो । ३. वैयावृत्य-सेवा, सुश्रूषा । ४. स्वाध्याय-विविध प्रकार का अभ्यास करना । ५. ध्यान-एकाग्र होकर चिंतन करना । ६. व्युत्सर्ग-परित्याग । चित्त की चंचलता के कारणों का परित्याग करना ।

**सूत्र - ५६३**

विवाद छः प्रकार का है, यथा- १. अवष्वष्क्य-पीछे हटकर प्रारम्भ में कुछ सामान्य तर्क देकर समय बितावे और अनुकूल अवसर पाकर प्रतिवादी पर आक्षेप करे । २. उत्ष्वष्क्य-पीछे हटाकर किसी प्रकार प्रतिवादी से विवाद बंध करावे और अनुकूल अवसर पाकर पुनः विवाद करे । ३. अनुलोम्य-सभ्यों को और सभापति को अनुकूल करके विवाद करे । ४. प्रतिलोम्य-सभ्यों को और सभापति को प्रतिकूल करके विवाद करे । ५. भेदयित्वा -सभ्यों में मतभेद करके विवाद करे । ६. मेलयित्वा-कुछ सभ्यों को अपने पक्ष में मिलाकर विवाद करे ।

**सूत्र - ५६४**

क्षुद्र प्राणी छः प्रकार के हैं, यथा-द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक ।

**सूत्र - ५६५**

गोचरी छः प्रकार की है, पेटा-गाँव के चार विभाग करके गोचरी करना । अर्ध पेटा-गाँव के दो विभाग करके गोचरी करना । गोमूत्रिका-घरों की दो पंक्तियों में गौमूत्रिका के समान क्रम बनाकर गोचरी करे । पतंग-वीथिका-पतंगिया की उड़ान के समान बिना क्रम के गोचरी करना । शंबुक वृत्ता-शंख के वृत्त की तरह घरों का क्रम बनाकर गोचरी करना । गत्वा प्रत्यागत्वा-प्रथम पंक्ति के घरों में क्रमशः आद्योपान्त गोचरी करके द्वीतिय पंक्ति के घरों में क्रमशः आद्योपान्त गोचरी करना ।

**सूत्र - ५६६**

जम्बूद्वीपवर्ती मेरु पर्वत के दक्षिण में-इस रत्नप्रभा पृथ्वी में छह अपक्रान्त (अत्यन्त धृणित) महा नरका वास हैं, लोल, लोलुप, उद्दग्ध, निर्दग्ध, जरक, प्रजरक ।

चौथी पंकप्रभा पृथ्वी में छह अपक्रान्त (अत्यन्त धृणित) महा नरकावास हैं, यथा-आर, वार, मार, रोर, रोरुक, खडाखड़ ।

**सूत्र - ५६७**

ब्रह्मलोक कल्प में छह विमान-प्रस्तर हैं, यथा-अरज, विरज, निरज, निर्मल, वित्तिमिर, विशुद्ध ।

**सूत्र - ५६८**

ज्योतिष्केन्द्र चन्द्र के साथ छह नक्षत्र ३०, ३० मुहूर्त्त तक सम्पूर्ण क्षेत्र में योग करते हैं । यथा-पूर्वाभाद्रपद, कृत्तिका, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, मूल, पूर्वाषाढ़ा ।

ज्योतिष्केन्द्र चन्द्र के साथ छह नक्षत्र १५-१५ मुहूर्त्त तक आधे क्षेत्र में योग करते हैं, यथा-शतभिषा, भरणी, आद्रा, अश्लेषा, स्वाती, ज्येष्ठा ।

ज्योतिष्केन्द्र चन्द्र के साथ छह नक्षत्र आगे और पीछे दोनों ओर ४५-४५ मुहूर्त्त तक योग करते हैं, यथा-रोहिणी, पुनर्वसु, उत्तरा फाल्गुनी, विशाखा, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपदा, उत्तराषाढ़ा ।

**सूत्र - ५६९**

अभिचन्द्र कुलकर छः सौ धनुष के ऊंचे थे ।

**सूत्र - ५७०**

भरत चक्रवर्ती छह लाख पूर्व तक महाराजा रहे ।

**सूत्र - ५७१**

भगवान पार्श्वनाथ के छः सौ वादी मुनियों की संपदा थी वे वादी मुनि देव-मनुष्यों की परीषद में अजेय थे ।

वासुपूज्य अर्हन्त के साथ छः सौ पुरुष प्रव्रजित हुए ।

चन्द्रप्रभ अर्हन्त छः मास पर्यन्त छद्मस्थ रहे ।

**सूत्र - ५७२**

तेइन्द्रिय जीवों की हिंसा न करने वाला छह प्रकार के संयम का पालन करता है । यथा–गंध ग्रहण का सुख नष्ट नहीं होता । गंध का दुःख प्राप्त नहीं होता । रसास्वादन का सुख नष्ट नहीं होता । रसास्वादन न कर सकने का दुःख प्राप्त नहीं होता । स्पर्श जन्य सुख नष्ट नहीं होता । स्पर्शानुभव न होने का दुःख प्राप्त नहीं होता ।

तेइन्द्रिय जीवों की हिंसा करने से छह प्रकार का असंयम होता है । यथा–गंध ग्रहण जन्य सुख प्राप्त नहीं होता । गंध ग्रहण न कर सकने का दुःख प्राप्त होता है । रसास्वादन जन्य सुख प्राप्त नहीं होता । रसास्वादन न कर सकने का दुःख प्राप्त होता है । स्पर्शजन्य सुख प्राप्त नहीं होता । रसास्वादन न कर सकने का दुःख प्राप्त होता है। स्पर्शजन्य सुख प्राप्त नहीं होता । स्पर्शानुभव न कर सकने का सुख प्राप्त होता है ।

**सूत्र - ५७३**

जम्बूद्वीप में छह अकर्मभूमियाँ हैं, यथा–हैमवत, हैरण्यवत, हरिवर्ष, रम्यक्वर्ष, देवकुरु, उत्तरकुरु ।

जम्बूद्वीप में छह वर्ष (क्षेत्र) हैं, यथा– भरत, ऐरवत, हैमवत, हैरण्यवत, हरिवर्ष और रम्यक्वर्ष ।

जम्बूद्वीप में छह वर्षधर पर्वत हैं, यथा–चुल्ल (लघु) हिमवंत, महा हिमवंत, निषध, नीलवंत, रुक्मि, शिखरी

जम्बूद्वीपवर्ती मेरु पर्वत से दक्षिण दिशा में छः कूट (शिखर) हैं । यथा–चुल्ल हैमवंत-कूट, वैश्रमण कूट, महा हैमवत कूट, वैडूर्य कूट, निषध कूट, रुचक कूट ।

जम्बूद्वीपवर्ती मेरु पर्वत से उत्तर दिशा में छह कूट हैं । यथा–नीलवान कूट, उपदर्शन कूट, रुक्मिकूट, मणिकंचन कूट, शिखरी कूट, तिगिच्छ कूट ।

जम्बूद्वीप में छह महाद्रह हैं, यथा–पद्मद्रह, महा पद्मद्रह, तिगिच्छद्रह, केसरीद्रह, महा पौंडरीक द्रह, पौंडरीक द्रह । उन महाद्रहों में छह पल्योपम की स्थिति वाली छः महर्धिक देवियाँ रहती हैं । यथा–१. श्री, २. ह्री, ३. धृति, ४. कीर्ति, ५. बुद्धि, ६. लक्ष्मी ।

जम्बूद्वीपवर्ती मेरु से दक्षिण दिशा में छः महानदियाँ हैं । यथा–गंगा, सिंधु, रोहिता, रोहितांशा, हरी, हरिकांता। जम्बूद्वीपवर्ती मेरु से उत्तर दिशा में छः महानदियाँ हैं, यथा–नरकांता, नारीकांता, सुवर्णकूला, रूप्य-कूला, रक्ता, रक्तवती । जम्बूद्वीपवर्ती मेरु से पूर्व में सीता महानदी के दोनों किनारों पर छः अन्तर नदियाँ हैं, यथा–ग्राहवती, द्रहवती, पंकवती, तप्तजला, मत्तजला, उन्मत्तजला । जम्बूद्वीपवर्ती मेरु से पश्चिम में शीतोदा महानदी के दोनों किनारों पर छः अन्तरनदियाँ हैं। यथा–क्षीरोदा, सिंहश्रोता, अंतर्वाहिनी, उर्मिमालिनी, फेनमालिनी, गम्भीर-मालिनी ।

धातकीखण्ड के पूर्वार्ध में छह अकर्म भूमियाँ हैं, यथा–हैमवत आदि नदी-सूत्र पर्यन्त जम्बूद्वीप के समान ग्यारह-सूत्र कहें । धातकीखण्ड के पश्चिमार्ध में जम्बूद्वीप के समान ग्यारह सूत्र हैं । पुष्करवर द्वीपार्ध के पूर्वार्ध में जम्बूद्वीप के समान ग्यारह सूत्र हैं । पुष्करवर द्वीपार्ध के पश्चिमार्ध में जम्बूद्वीप के समान ग्यारह सूत्र हैं ।

**सूत्र - ५७४**

ऋतुएं छः हैं, यथा–प्रावृट्–आषाढ़ और श्रावण मास । वर्षा ऋतु–भाद्रपद और आश्विन । शरद्–कार्तिक और मार्गशीर्ष । हेमन्त–पोष और माघ । बसन्त–फाल्गुन और चैत्र । ग्रीष्म–वैशाख और ज्येष्ठ ।

**सूत्र - ५७५**

दिनक्षय वाले छः पर्व हैं । यथा–तृतीयपर्व–आषाढ़ कृष्णपक्ष । सप्तम पर्व–भाद्रपद कृष्णपक्ष । ग्यारहवाँ पर्व–कार्तिक कृष्णपक्ष । पन्द्रहवाँ पर्व–पोष कृष्णपक्ष । उन्नीसवाँ पर्व–फाल्गुन कृष्णपक्ष । तेतीसवाँ पर्व–वैशाख कृष्णपक्ष

दिन वृद्धि वाले छः पर्व हैं, यथा–चतुर्थ पर्व–आषाढ़ शुक्ल पक्ष । आठवाँ पर्व–भाद्रपद शुक्ल पक्ष । बारहवाँ पर्व–कार्तिक शुक्ल पक्ष । सोलहवाँ पर्व–पोष शुक्ल पक्ष । बीसवाँ पर्व–फाल्गुन शुक्ल पक्ष । चौबीसवाँ पर्व–वैशाख शुक्ल पक्ष ।

**सूत्र - ५७६**

आभिनिबोधिक ज्ञान के छः अर्थावग्रह हैं, यथा–श्रोत्रेन्द्रिय अर्थावग्रह यावत्–नोइन्द्रिय अर्थावग्रह ।

**सूत्र - ५७७**

अवधिज्ञान छः प्रकार का है । यथा–आनुगामिक–मनुष्य के साथ जैसे मनुष्य की आँखें चलती हैं उसी प्रकार अवधिज्ञान भी अवधिज्ञानी के साथ चलता है । अनानुगामिक–जो अवधिज्ञान दीपक की तरह अवधिज्ञानी के साथ नहीं चलता । वर्धमान–जो अवधिज्ञान प्रतिसमय बढ़ता रहता है । हीयमान–जो अवधिज्ञान प्रतिसमय क्षीण होता रहता है । प्रतिपाती–जो अवधिज्ञान पूर्ण लोक को देखने के पश्चात् नष्ट हो जाता है । अप्रतिपाती–जो अवधिज्ञान पूर्ण लोक को देखने के पश्चात् अलोक के एक प्रदेश को देखने की शक्ति वाला है ।

**सूत्र - ५७८**

निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियों को ये छः अवचन कहने योग्य नहीं हैं । यथा–अलीक वचन–असत्य वचन । हीलित वचन–इर्ष्या भरे वचन । खिंसित वचन–गुप्त बातें प्रगट करना । पुरुष वचन–कठोर वचन । गृहस्थ वचन–बेटा, भाई आदि करना । उदीर्ण वचन–उपशान्त कलह को पुनः उद्दीप्त करने वाले वचन ।

**सूत्र - ५७९**

कल्प (साधु का आचार) के छः प्रस्तार हैं । यथा–छोटा साधु बड़े साधु को कहे कि तुमने प्राणातिपात किया है। छोटा साधु बड़े साधु को कहे कि तुम मृषावाद बोले हो । छोटा साधु बड़े साधु को कहे कि तुमने अमुक वस्तु चुराई है । छोटा साधु बड़े साधु को कहे कि तुमने अविरति का सेवन किया है । छोटा साधु बड़े साधु को कहे कि तुम अपुरुष हो । छोटा साधु बड़े साधु को दास वचन कहे । इन छः वचनों का जानबूझ कर भी बड़ा साधु पूर्ण प्रायश्चित्त न दे तो बड़ा साधु उसी प्रायश्चित्त का भागी होता है ।

**सूत्र - ५८०**

कल्प (साधु का आचार) के छः पलिमंथू (संयम के घातक) हैं । यथा–कौत्कुच्य–कुचेष्टा करना संयम का घात करना है । मौखर्य–अनावश्यक बोलना सत्य वचन का घात करना है । चक्षुलोलुप–चंचल चक्षु रहना ईर्या-समिति का घात करना है । र्तितिनिक–इष्ट वस्तु के अलाभ से दुःखी होना एषणा प्रधान गोचरी का घात करना है । ईच्छालोभिक–अति लोभ करना मुक्ति मार्ग का घात करना है । मिथ्या निदान करण–लोभ से निदान करना मोक्ष मार्ग का घात करना है । क्योंकि निदान न करना ही भगवान ने प्रशस्त कहा है ।

**सूत्र - ५८१**

कल्प-साध्याचार-की व्यवस्था छः प्रकार की है, यथा–सामायिक कल्पस्थिति–सामायिक सम्बन्धी मर्यादा। छेदोपस्थापनिक कल्पस्थिति–शैक्षकाल पूर्ण होने पर पंच महाव्रत धारण कराने की मर्यादा । निर्विसमान कल्प-स्थिति–परिहार विशुद्धि तप स्वीकार करने वाले की मर्यादा । निर्विष्ठ कल्पस्थिति–पारिहारिक तप पूरा करने वाले की मर्यादा । जिन कल्पस्थिति–जिन कल्प की मर्यादा । स्थविर कल्पस्थिति–स्थविर कल्प की मर्यादा ।

**सूत्र - ५८२**

श्रमण भगवान महावीर चतुर्विध आहार परित्यागपूर्वक छट्ठ भक्त (दो उपवास) करके मुण्डित यावत् प्रव्रजित हुए । श्रमण भगवान महावीर को जब केवलज्ञान उत्पन्न हुआ था उस समय चौविहार छट्ठभक्त था । श्रमण भगवान

महावीर जब सिद्ध यावत् सर्व दुःख से मुक्त हुए उस समय चौविहार छट्ठ भक्त था ।

**सूत्र - ५८३**

सनत्कुमार और माहेन्द्रकल्प-देवलोक में विमान छः सौ योजन ऊंचे हैं ।

सनत्कुमार और माहेन्द्रकल्प में भवधारणीय शरीर की अवगाहना-छः हाथ की है ।

**सूत्र - ५८४**

भोजन का परिमाण-स्वभाव छः प्रकार का है, यथा-मनोज्ञ-मन को अच्छा लगने वाला । रसिक-माधुर्यादि रस युक्त । प्रीणनीय-तृप्ति करने वाला तथा शरीर के रसों में समता लाने वाला । बृंहणीय-शरीर की वृद्धि करनेवाला । दीपनीय-जठराग्नि प्रदीप्त करने वाला । मदनीय-कामोत्तेजक ।

विष का परिणाम-स्वभाव छह प्रकार का है । यथा-दष्ट-सर्प आदि के डंक से पीड़ा पहुँचाने वाला । भुक्त - खाने पर पीड़ा पहुँचाने वाला । निपतित-शरीर पर गिरते ही पीड़ित करने वाला अथवा दृष्टिविष । मांसानुसारी-माँसमें व्याप्त होनेवाला । शोणितानुसारी-रक्त में व्याप्त होनेवाला । अस्थिमज्जानुसारी-हड्डी और चरबीमें व्याप्त होनेवाला

**सूत्र - ५८५**

प्रश्न छः प्रकार के हैं, यथा-संशय प्रश्न-संशय होने पर किया जाने वाला प्रश्न । मिथ्याभिनिवेश प्रश्न-परपक्ष को दूषित करने के लिए किया गया प्रश्न । अनुयोगी प्रश्न-व्याख्या करने के लिए ग्रन्थकार द्वारा किया गया प्रश्न । अनुलोभ प्रश्न-कुशलप्रश्न । तथाज्ञानप्रश्न-गणधर गौतम के प्रश्न । अतथाज्ञान प्रश्न-अज्ञ व्यक्ति के प्रश्न ।

**सूत्र - ५८६**

चमरचंचा राजधानी में उत्कृष्ट विरह छः मास का है ।

प्रत्येक इन्द्रप्रस्थ में उपपात विरह उत्कृष्ट छः मास का है ।

सप्तम पृथ्वी तमस्तमा में उपपात विरह उत्कृष्ट छः मास का है ।

सिद्धगति में उपपात विरह उत्कृष्ट छः मास का है ।

**सूत्र - ५८७**

आयुबंध छः प्रकार का है, यथा-जातिनामनिधत्तायु-जातिनाम कर्म के साथ प्रति समय भोगने के लिए आयुकर्म के दलिकों की निषेक नाम की रचना । गतिमान निधत्तायु-गतिमान कर्म के साथ पूर्वोक्त रचना । स्थिति-नाम निधत्तायु-स्थिति की अपेक्षा से निषेक रचना । अवगाहना नाम निधत्तायु-जिसमें आत्मा रहे वह अवगाहना औदारिक शरीर आदि की होती है । अतः शरीर नाम कर्म के साथ पूर्वोक्त रचना । प्रदेश नाम निधत्तायु-प्रदेश रूप नाम कर्म के साथ पूर्वोक्त रचना । अनुभाव नाम निधत्तायु-अनुभाव विपाक रूप नाम कर्म के साथ पूर्वोक्त रचना ।

नैरयिकों के यावत् वैमानिकों के छः प्रकार का आयुबंध होता है । यथा-जातिनाम निधत्तायु-यावत् अनु-भावनाम निधत्तायु । नैरयिक यावत् वैमानिक छः मास आयु शेष रहने पर परभव का आयु बाँधते हैं ।

**सूत्र - ५८८**

भाव छः प्रकार के हैं, यथा-औदयिक, औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक, पारिणामिक, सान्निपातिक ।

**सूत्र - ५८९**

प्रतिक्रमण छः प्रकार के हैं, यथा-उच्चार प्रतिक्रमण-मल को परठकर स्थान पर आवे और मार्ग में लगे दोषों का प्रतिक्रमण करे । प्रश्रवण प्रतिक्रमण-मूत्र परठकर पूर्ववत् प्रतिक्रमण करे । इत्वरिक प्रतिक्रमण-थोड़े काल का प्रतिक्रमण, यथा-दिन सम्बन्धी प्रतिक्रमण या रात्रि सम्बन्धी प्रतिक्रमण । यावज्जीवन का प्रतिक्रमण-महाव्रत ग्रहण करना अथवा भक्तपरिज्ञा स्वीकार करना । यत्किंचित् मिथ्या प्रतिक्रमण-जो मिथ्या आचरण हुआ हो उसका प्रतिक्रमण । स्वाप्नान्तिक प्रतिक्रमण-स्वप्न सम्बन्धी प्रतिक्रमण ।

**सूत्र - ५९०**

कृत्तिका नक्षत्र के छः तारे हैं । अश्लेषा नक्षत्र के छः तारे हैं ।

**सूत्र - ५९१**

जीवों ने छः स्थानों में अर्जित पुद्‌गलों को पाप कर्म के रूप में एकत्रित किया है । एकत्रित करते हैं और एकत्रित करेंगे । यथा–पृथ्वीकाय निवर्तित यावत् त्रसकाय निवर्तित । इसी प्रकार पाप कर्म के रूप में चय, उपचय, बंध, उदीरण, वेदन और निर्जरा सम्बन्धी सूत्र हैं ।

छः प्रदेशी स्कन्ध अनन्त हैं । छः प्रदेशों में स्थित पुद्‌गल अनन्त हैं । छः समय की स्थिति वाले पुद्‌गल अनन्त हैं । छः गुण काले–यावत् छः गुण रूखे पुद्‌गल अनन्त हैं ।

## स्थान–६ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

## स्थान-७

**सूत्र - ५९२**

गण छोड़ने के सात कारण हैं, यथा–

मैं सब धर्मों (ज्ञान, दर्शन और चारित्र की साधनाओं) को प्राप्त करना (साधना) चाहता हूँ और उन धर्मों (साधनाओं) को मैं अन्य गणमें जाकर ही प्राप्त कर (साध) सकूँगा । अतः मैं गण छोड़कर अन्य गणमें जाना चाहता हूँ

मुझे अमुक धर्म (साधना) प्रिय है और अमुक धर्म (साधना) प्रिय नहीं है । अतः मैं गण छोड़कर अन्य गण में जाना चाहता हूँ ।

सभी धर्मों (ज्ञान, दर्शन और चारित्र) में मुझे सन्देह है, अतः संशय निवारणार्थ मैं अन्य गण में जाना चाहता हूँ

कुछ धर्मों (साधनाओं) में मुझे संशय है और कुछ धर्मों (साधनाओं) में संशय नहीं है । अतः मैं संशय निवारणार्थ अन्य गण में जाना चाहता हूँ ।

सभी धर्मों (ज्ञान, दर्शन और चारित्र सम्बन्धी) की विशिष्ट धारणाओं को मैं देना (सिखाना) चाहता हूँ । इस गण में ऐसा कोई योग्य पात्र नहीं है अतः मैं अन्य गण में जाना चाहता हूँ ।

कुछ धर्मों (पूर्वोक्त धारणाओं) को देना चाहता हूँ और कुछ धर्मों (पूर्वोक्त धारणाओं) को नहीं देना चाहता हूँ अतः मैं अन्य गण में जाना चाहता हूँ ।

एकल विहार की प्रतिमा धारण करके विचरना चाहता हूँ ।

**सूत्र - ५९३**

विभंग ज्ञान सात प्रकार का है, एक दिशा में लोकाभिगम । पाँच दिशा में लोकाभिगम । क्रियावरण जीव । मुदग्रजीव । अमुदग्रजीव । रूपीजीव । सभी कुछ जीव हैं ।

प्रथम विभंग ज्ञान–किसी श्रमण ब्राह्मण को एक दिशा का लोकाभिगम ज्ञान उत्पन्न होता है । अतः वह पूर्व, पश्चिम, दक्षिण या उत्तर दिशा में से किसी एक दिशा में अथवा ऊपर देवलोक पर्यन्त लोक देखता है तो–जिस दिशा में उसने लोक देखा है उसी दिशा में लोक है अन्य दिशा में नहीं है–ऐसी प्रतिती उसे होती है और वह मानने लगता है कि मुझे ही विशिष्ट ज्ञान उत्पन्न हुआ है और वह दूसरों को ऐसा कहता है कि जो लोग "पाँच दिशाओं में लोक हैं" ऐसा कहते हैं वे मिथ्या कहते हैं ।

द्वीतिय विभंग ज्ञान–किसी श्रमण-ब्राह्मण को पाँच दिशा का लोकाभिगम ज्ञान उत्पन्न होता है । अतः वह पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर दिशा में तथा ऊपर सौधर्म देवलोक पर्यन्त लोक देखता है तो उस समय उसे यह अनुभव होता है कि लोक पाँच दिशाओं में ही है । तथा यह भी अनुभव होता है कि मुझे ही अतिशय ज्ञान उत्पन्न हुआ है । और वह यों कहने लगता है कि जो लोग "एक ही दिशा में लोक है" ऐसा कहते हैं वे मिथ्या हैं ।

तृतीय विभंग ज्ञान–किसी श्रमण या ब्राह्मण को क्रियावरण जीव नाम का विभंग ज्ञान उत्पन्न होता है तो वह जीवों को हिंसा करते हुए, झूठ बोलते हुए, चोरी करते हुए, मैथुन करते हुए, परिग्रह में आसक्त रहते हुए और रात्रि भोजन करते हुए देखता है किन्तु इन सब कृत्यों से जीवों के पाप कर्मों का बन्ध होता है यह नहीं देख सकता उस समय उसे यह अनुभव होता है कि मुझे ही अतिशय ज्ञान उत्पन्न हुआ है । और वह यों मानने लगता है कि जीव के आवरण (कर्मबन्ध) क्रिया रूप ही हैं । साथ ही यह भी कहने लगता है कि जो श्रमण ब्राह्मण "जीव के क्रिया से आवरण (कर्मबन्ध) नहीं होता" ऐसा कहते हैं वे मिथ्या हैं ।

चतुर्थ विभंग ज्ञान–किसी श्रमण ब्राह्मण को मुदग्रविभंग ज्ञान उत्पन्न होता है तो वह बाह्य और आभ्यन्तर पुद् गलों को ग्रहण करके तथा उनके नाना प्रकार के स्पर्श करके नाना प्रकार के शरीरों की विकुर्वणा करते हुए देवताओं को देखता है उस समय उसे यह अनुभव होता है कि मुझे ही अतिशय वाला ज्ञान उत्पन्न हुआ है अतः मैं देख सकता हूँ कि जीव मुदग्र अर्थात् बाह्य और आभ्यन्तर पुद्गलों को ग्रहण करके शरीर रचना करने वाला है । "जो लोग जीव को अमुदग्र कहते हैं वे मिथ्या कहते हैं" ऐसा वह कहने लगता है ।

पंचम विभंग ज्ञान-किसी श्रमण को अमुदग्र विभंग ज्ञान उत्पन्न होता है तो वह आभ्यन्तर और बाह्य पुद्गलों को ग्रहण किये बिना ही देवताओं को विकुर्वणा करते हुए देखता है । उस समय उसे ऐसा अनुभव होता है कि मुझे ही अतिशय ज्ञान उत्पन्न हुआ है अतः मैं देख सकता हूँ ''जीव अमुदग्र है'' और वह यों कहने लगता है कि जो लोग जीव को मुदग्र समझते हैं वे मिथ्यावादी हैं ।

छठा विभंग ज्ञान-किसी श्रमण ब्राह्मण को जब रूपीजीव नाम का विभंग ज्ञान उत्पन्न होता है तब वह उस ज्ञान से देवताओं को ही बाह्याभ्यन्तर पुद्गल ग्रहण करके या ग्रहण किये बिना विकुर्वणा करके देखता है । उस समय उसे ऐसा अनुभव होता है कि मुझे अतिशय वाला ज्ञान उत्पन्न हुआ है और वह यों मानने लगता है कि जीव तो रूपी है किन्तु जो लोग जीव को अरूपी कहते हैं उन्हें वह मिथ्यावादी कहने लगता है ।

सप्तम विभंग ज्ञान-किसी श्रमण ब्राह्मण को जब 'सर्वे जीवा' नाम का विभंग ज्ञान उत्पन्न होता है तब वह वायु से इधर उधर हिलते चलते काँपते और अन्य पुद्गलों के साथ टकराते हुए पुद्गलों को देखता है उस समय उसे ऐसा अनुभव होता है कि मुझे ही अतिशय वाला ज्ञान उत्पन्न हुआ है अतः वह यों मानने लगता है कि ''लोक में जो कुछ है वह सब जीव ही है'' किन्तु जो लोग लोक में जीव अजीव दोनों मानते हैं उन्हें वह मिथ्यावादी कहने लगता है । ऐसे विभंग ज्ञानी को पृथ्वी, वायु और तेजस्काय का सम्यग्ज्ञान होता ही नहीं अतः वह उस विषय में मिथ्या भ्रम में पड़ा होता है ।

**सूत्र - ५९४**

योनि संग्रह सात प्रकार का है, यथा-अंडज-पक्षी, मछलियाँ, सर्प इत्यादि अंडे से पैदा होने वाले । पोतज-हाथी, बागल आदि चमड़े से लिपटे हुए उत्पन्न होने वाले । जरायुज-मनुष्य, गाय आदि जर के साथ उत्पन्न होने वाले । रसज-रस में उत्पन्न होने वाले । संस्वेदज-पसीने से उत्पन्न होने वाले । सम्मूर्च्छिम-माता-पिता के बिना उत्पन्न होने वाले जीव-कृमि आदि । उद्भिज-पृथ्वी का भेदन कर उत्पन्न होने वाले जीव खंजनक आदि ।

अंडज की गति और आगति सात प्रकार की होती है । पोतज की गति और आगति सात प्रकार की होती है । इसी प्रकार उद्भिज पर्यन्त सातों की गति और आगति जाननी चाहिए । अंडज यदि अंडजों में आकर उत्पन्न होता है तो अंडजों पोतजों यावत् उद्भिजों से आकर उत्पन्न होता है । इसी प्रकार अंडज अंडजपन को छोड़कर अंडज पोतज यावत् उद्भिज जीवन को प्राप्त होता है ।

**सूत्र - ५९५**

आचार्य और उपाध्याय सात प्रकार के गण का संग्रह करते हैं । यथा-आचार्य और उपाध्याय गण में रहने वाले साधुओं को सम्यक् प्रकार से आज्ञा (विधि अर्थात् कर्तव्य के लिए आदेश) या धारणा (अकृत्य का निषेध) करे। आगे पांचवे स्थान में कहे अनुसार (यावत् आचार्य और उपाध्याय गच्छ को पूछकर प्रवृत्ति करे किन्तु गच्छ को पूछे बिना प्रवृत्ति न करे) कहें । आचार्य और उपाध्याय गण में प्राप्त उपकरणों की सम्यक् प्रकार से रक्षा एवं सुरक्षा करे किन्तु जैसे तैसे न रखें ।

आचार्य और उपाध्याय सात प्रकार से गण का असंग्रह करते हैं । यथा-आचार्य या उपाध्याय गण में रहने वाले साधुओं को आज्ञा या धारणा सम्यक् प्रकार से न करे । इसी प्रकार यावत् प्राप्त उपकरणों की सम्यक् प्रकार से रक्षा न करे ।

**सूत्र - ५९६**

पिण्डैषणा सात प्रकार की कही गई है, यथा-असंसृष्टा-देने योग्य आहार से हाथ या पात्र लिप्त न हो ऐसी भिक्षा लेना । संसृष्टा-देने योग्य आहार से हाथ या पात्र लिप्त हो ऐसी भिक्षा लेना । उद्धृता-गृहस्थ अपने लिए राँधने के वासण में से आहार बाहर नीकाले व ऐसा आहार ले । अल्पलेपा-जिस आहार से पात्र में लेप न लगे ऐसा आहार (चणा आदि) ले । अवगृहीता-भाजन में परोसा हुआ आहार ले । प्रगृहीता-परोसने के लिए हाथ में लिया हुआ अथवा खाने के लिए लिया हुआ आहार ही ले । उज्झितधर्मा-फैंकने योग्य आहार ही भिक्षा में ले ।

इसी प्रकार पाणैषणा भी सात प्रकार की कही गई है।

अवग्रह प्रतिमा सात प्रकार की कही गई है। यथा-''मुझे अमुक उपाश्रय ही चाहिए'' ऐसा निश्चय करके आज्ञा माँगे। ''मेरे साथी साधुओं के लिए उपाश्रय की याचना करूँगा'' और उनके लिए जो उपाश्रय मिलेगा उसी में मैं रहूँगा। मैं अन्य साधुओं के लिए उपाश्रय की याचना करूँगा किन्तु मैं उसमें नहीं रहूँगा। मैं अन्य साधुओं के लिए उपाश्रय की याचना नहीं करूँगा किन्तु अन्य साधुओं द्वारा याचित उपाश्रय में मैं रहूँगा। मैं अपने लिए ही उपाश्रय की याचना करूँगा अन्य के लिए नहीं। मैं जिसके घर (उपाश्रय) में ठहरूँगा उसी के यहाँ से संस्तारक भी प्राप्त होगा तो उस पर सोऊंगा अन्यथा बिना संस्तारक के ही रात बिताऊंगा। मैं जिस घर में (उपाश्रय) में ठहरूँगा उसमें पहले से बिछा हुआ संस्तारक होगा तो उसका उपयोग करूँगा।

सप्तैकक सात प्रकार का कहा गया है। यथा-स्थान सप्तैकक, नैषेधिकी सप्तैकक, उच्चारप्रश्रवण विधि सप्तैकक, शब्द सप्तैकक, रूप सप्तैकक, परक्रिया सप्तैकक, अन्योन्य क्रिया सप्तैकक।

सात महा अध्ययन कहे गए हैं।

सप्तसप्तमिका भिक्षु प्रतिमा की आराधना ४९ अहोरात्रमें होती है उसमें सूत्रानुसार यावत्-१९६ दत्ति ली जाती है।

**सूत्र - ५९७**

अधोलोक में सात पृथ्वीयाँ हैं। सात घनोदधि हैं। सात घनवात और सात तनुवात हैं। सात अवकाशान्तर हैं। इन सात अवकाशान्तरों में सात तनुवात प्रतिष्ठित हैं। इन सात तनुवातोंमें सात घनवात प्रतिष्ठित हैं। इन सात घनवातों में सात घनोदधि प्रतिष्ठित हैं। इन सात घनोदधियों में पुष्पभरी छाबड़ी के समान संस्थान वाली सात पृथ्वीयाँ हैं। यथा-प्रथमा यावत् सप्तमा। इन सात पृथ्वीयों के सात नाम हैं। यथा-धम्मा, वंसा, सेला, अंजना, रिष्ठा, मघा, माघवती। इन सात पृथ्वीयों के सात गोत्र हैं। यथा-रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तमप्रभा, तमस्तमाप्रभा।

**सूत्र - ५९८**

बादर (स्थूल) वायुकाय सात प्रकार की कही गई है। यथा-पूर्व का वायु, पश्चिम का वायु, दक्षिण का वायु, उत्तर का वायु, ऊर्ध्व दिशा का वायु, अधोदिशा का वायु, विविध दिशाओं का वायु।

**सूत्र - ५९९**

संस्थान सात प्रकार के हैं। यथा-१. दीर्घ, २. ह्रस्व, ३. वृत्त, ४. त्र्यस्र, ५. चतुरस्र, ६. पृथुल और ७. परिमण्डल।

**सूत्र - ६००**

भयस्थान सात प्रकार के कहे गए हैं। यथा-इहलोक भय, परलोक भय, आदान भय, अकस्मात भय, वेदना भय, मरण भय, अश्लोक-अपयश भय।

**सूत्र - ६०१**

सात कारणों से छद्मस्थ (असर्वज्ञ) जाना जाता है। यथा-हिंसा करने वाला, झूठ बोलने वाला, अदत्त लेने वाला, शब्द, रूप, रस और स्पर्श को भोगने वाला, पूजा और सत्कार से प्रसन्न होने वाला। ''यह आधाकर्म आहार सावद्य (पापरहित) है'' इस प्रकार की प्ररूपणा करने के पश्चात् भी आधाकर्म आदि दोषों का सेवन करने वाला। कथनी के समान करणी न करने वाला।

सात कारणों से केवली जाना जाता है, यथा-हिंसा न करने वाला। झूठ न बोलने वाला। अदत्त न लेनेवाला। शब्द, गन्ध, रूप, रस और स्पर्श को न भोगने वाला। पूजा और सत्कार से प्रसन्न न होने वाला यावत् कथनी के समान करणी करने वाला।

**सूत्र - ६०२**

मूल गोत्र सात कहे जाते हैं, यथा-काश्यप, गौतम, वत्स, कुत्स, कौशिक, मांडव, वाशिष्ठ।

काश्यप गोत्र सात प्रकार का कहा गया है, यथा–काश्यप, सांडिल्य, गोल्य, बाल, मौजकी, पर्वप्रेक्षकी, वर्षकृष्ण ।

गौतम गोत्र सात प्रकार का है–गौतम, गार्ग्य, भारद्वाज, अंगिरस, शर्कराभ, भक्षकाम, उदकात्माभ ।

वत्स गोत्र सात प्रकार का कहा गया है, यथा–वत्स, आग्नेय, मैत्रिक, स्वामिली, शलक, अस्थिसेन, वीतकर्म

कुत्स गोत्र सात प्रकार का कहा गया है, यथा–कुत्स, मौद्‌गलायन, पिंगलायन, कौडिन्य, मंडली, हारित, सौम्य

कौशिक गोत्र सात प्रकार का कहा गया है, यथा–कौशिक, कात्यायन, शालंकायण, गोलिकायण, पाक्षिकायण, आग्नेय, लोहित्य ।

मांडव्य गोत्र सात प्रकार का कहा गया है, यथा–मांडव्य, अरिष्ट, संमुक्त, तैल, ऐलापत्य, कांडिल्य, क्षारायण ।

वाशिष्ठ गोत्र सात प्रकार का कहा गया है, यथा–वाशिष्ठ, उजायन, जारेकृष्ण, व्याघ्रापत्य, कौण्डिन्य, संज्ञी, पाराशर ।

**सूत्र - ६०३**

मूल नय सात प्रकार के कहे गए हैं, यथा–नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ़, एवंभूत ।

**सूत्र - ६०४**

स्वर सात प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

**सूत्र - ६०५**

षड्‌ज, रिसभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत, निषाद । षड्‌ज–१. नासा, २. कंठ, ३. हृदय, ४. जीभ, ५. दाँत और ६. तालु इन छः स्थानों से उत्पन्न होने वाला स्वर । रिषभ–बैल (साँड़) के समान गंभीर स्वर । गांधार–विविध प्रकार के गंधों से युक्त स्वर । मध्यम–महानाद वाला स्वर । पंचम–नासिकाओं से नीकलने वाला स्वर । धैवत–अन्य स्वरों से अनुसंधान करने वाला स्वर । निषाद–अन्य स्वरों को तिरस्कृत करने वाला स्वर ।

**सूत्र - ६०६**

इन सात स्वरों के सात स्वर स्थान हैं, यथा–

**सूत्र - ६०७**

षड्‌ज स्वर जिह्वा के अग्रभाग से नीकलने वाला स्वर । ऋषभ स्वर हृदय से नीकलता है । गांधार स्वर उग्र कंठ से नीकलता है । मध्यम स्वर जिह्वा के मध्य भाग से नीकलता है ।

**सूत्र - ६०८**

पंचम स्वर पाँच स्थानों से नीकलने वाला स्वर । धैवत स्वर दाँत और ओष्ठ से नीकलने वाला स्वर । निषाद स्वर मस्तक से नीकलने वाला स्वर ।

**सूत्र - ६०९**

सात प्रकार के जीवों से नीकलने वाले सात स्वर हैं । यथा–

**सूत्र - ६१०**

षड्‌ज-मयूर के कण्ठ से नीकलने वाला स्वर । रिषभ-कुक्कुट के कण्ठ से नीकलता है । गांधार हंस के कण्ठ से नीकलता है । मध्यम घेंटे के कण्ठ से नीकलता है ।

**सूत्र - ६११**

पंचम कोयल के कण्ठ से नीकलता है । धैवत सारस या क्रौंच के कण्ठ से नीकलता है । निषाद हाथी के कण्ठ से नीकलता है ।

**सूत्र – ६१२, ६१३**

सात प्रकार के अजीव पदार्थों से नीकलने वाले सात स्वर, यथा– षड्‌जस्वर–मृदङ्ग से नीकलता है । ऋषभ स्वर–गोमुखी से नीकलता है । गांधार स्वर–शंख से नीकलता है। मध्यम स्वर–झालर से नीकलता है ।

**सूत्र - ६१४**

पंचम स्वर-गोधिका वाद्य से नीकलता है । धैवत स्वर-ढोल से नीकलता है । निषाद स्वर-महाभेरी से नीकलता है ।

**सूत्र - ६१५**

सात स्वर वाले मनुष्यों के लक्षण, यथा-

**सूत्र - ६१६**

षड्जस्वर वाले मनुष्य को आजीविका सुलभ होती है, उसका कार्य निष्फल नहीं होता । उसे गायें, पुत्र और मित्रों की प्राप्ति होती है । वह स्त्री को प्रिय होता है ।

**सूत्र - ६१७**

रिषभ स्वर वाले को ऐश्वर्य प्राप्त होता है । वह सेनापति बनता है और उसे धन लाभ होता है । तथा वस्त्र, गंध, अलंकार, स्त्री और शयन आदि प्राप्त होते हैं ।

**सूत्र - ६१८**

गांधार स्वर वाला गीत-युक्तिज्ञ, प्रधान-आजीविका वाला, कवि, कलाओं का ज्ञाता, प्रज्ञाशील और अनेक शास्त्रों का ज्ञाता होता है ।

**सूत्र - ६१९**

मध्यम स्वर वाला-सुख से खाता पीता है और दान देता है ।

**सूत्र - ६२०**

पंचम स्वर वाला-राजा, शूरवीर, लोक संग्रह करने वाला और गणनायक होता है ।

**सूत्र - ६२१**

धैवत स्वर वाला-शाकुनिक, झगडालु, वागुरिक, शौकरिक और मच्छीमार होता है ।

**सूत्र - ६२२**

निषाद स्वर वाला-चांडाल, अनेक पापकर्मों का करने वाला या गौ घातक होता है ।

**सूत्र - ६२३, ६२४**

इन सात स्वरों के तीन ग्राम कहे गए हैं । यथा-षड्ज ग्राम, मध्यम ग्राम, गांधार ग्राम । षड्जग्राम की सात मूर्छनाएं होती हैं । यथा- भंगी, कौरवीय, हरि, रजनी, सारकान्ता, सारसी, शुद्ध षड्जा ।

**सूत्र - ६२५, ६२६**

मध्यम ग्राम की सात मूर्छनाएं होती हैं, यथा- उत्तरमन्दा, रजनी, उत्तरा, उत्तरासमा, आशोकान्ता, सौवीरा, अभीरू ।

**सूत्र - ६२७, ६२८**

गांधार ग्राम की सात मूर्छनाएं हैं, यथा- नंदी, क्षुद्रिमा, पुरिमा, शुद्ध गांधारा, उत्तर गांधारा ।

**सूत्र - ६२९**

सुष्ठुत्तर आयाम, कोटि मातसा ये सात हैं ।

**सूत्र - ६३०**

सात स्वर कहाँ से उत्पन्न होते हैं ? गेय की योनि कौन सी होती है ? उच्छ्वास काल कितने समय का है ? गेय के आकार कितने हैं ?

**सूत्र - ६३१**

सात स्वर नाभि से उत्पन्न होते हैं, गीत की रुदित योनि है । एक पद के उच्चारण में जितना समय लगता है उतना समय गीत के उच्छ्वास का है ।

**सूत्र - ६३२**

गेय के तीन आकार हैं, वे इस प्रकार हैं-मंद स्वर से आरम्भ करे । मध्य में स्वर की वृद्धि करे । अन्त में क्रमशः हीन करे ।

**सूत्र - ६३३**

गेय के छः दोष, आठ गुण, तीन वृत्त और दो भणितियाँ इनको जो सम्यक् प्रकार से जानता है वह सुशिक्षित रंग (नाट्य शाला) में गा सकता है ।

**सूत्र - ६३४**

हे गायक ! इन छः दोषों को टालकर गाना । भयभीत होकर गाना, शीघ्रतापूर्वक गाना, संक्षिप्त करके गाना, तालबद्ध न गाना, काकस्वर से गाना, नाक से उच्चारण करते गाना ।

**सूत्र - ६३५**

गेय के आठ गुण हैं । यथा-पूर्ण, रक्त, अलंकृत, व्यक्त, अविस्वर, मधुर, स्वर, सुकुमार ।

**सूत्र - ६३६**

गेय के ये गुण और हैं । यथा-उरविशुद्ध, कंठविशुद्ध और शिरोविशुद्ध जो गाया जाए । मृदु और गम्भीर स्वर से गाया जाए । तालबद्ध और प्रतिक्षेपबद्ध गाया जाए । सात स्वरों से सम गाया जाए ।

**सूत्र - ६३७**

गेय के ये आठ गुण और हैं । निर्दोष, सारयुक्त, हेतुयुक्त, अलंकृत, उपसंहारयुक्त, सोत्प्रास, मित, मधुर ।

**सूत्र - ६३८**

तीन वृत हैं-सम, अर्ध सम, सर्वत्र विषम ।

**सूत्र - ६३९**

दो भणितियाँ हैं, यथा-संस्कृत और प्राकृत । इन दो भाषाओं को ऋषियों ने प्रशस्त मानी हैं और इन दो भाषाओं में ही गाया जाता है ।

**सूत्र - ६४०**

मधुर कौन गाती है ? खर स्वर से कौन गाती है ? रुक्ष स्वर से कौन गाती है ? दक्षतापूर्वक कौन गाती है ? मन्द स्वर से कौन गाती है ? शीघ्रतापूर्वक कौन गाती है ? विस्वर (विरुद्ध स्वर) से कौन गाती है ? निम्नोक्त क्रम से जानना ।

**सूत्र - ६४१**

श्यामा (किंचित् काली) स्त्री । काली (धन के समान श्याम रंग वाली) । काली । गौरी (गौरवर्ण वाली) । काणी अंधी । पिंगला-भूरे वर्ण वाली ।

**सूत्र - ६४२**

सात प्रकार से सम होता है, यथा-तंत्रीसम, तालसम, पादसम, लयसम, ग्रहसम, श्वासोच्छ्वाससम, संचार सम।

**सूत्र - ६४३**

सात स्वर, तीन ग्राम, इक्कीस मूर्छना और उनचास तान हैं ।

**सूत्र - ६४४**

कायक्लेश सात प्रकार का कहा गया है, यथा-स्थानातिग-कायोत्सर्ग करने वाला । उत्कटुकासनिक-उकडु बैठने वाला । प्रतिमास्थायी-भिक्षु प्रतिमा का वहन करने वाला । वीरासनिक-सिंहासन पर बैठने वाले के समान बैठना । नैषधिक-पैर आदि स्थिर करके बैठना । दंडायतिक-दण्ड के समान पैर फैलाकर बैठना । लगंड-शायी-वक्र काष्ठ के समान-भूमि से पीठ ऊंची रखकर सोने वाला ।

**सूत्र - ६४५**

जम्बूद्वीप में सात वर्ष (क्षेत्र) कहे गए हैं, यथा-भरत, ऐरवत, हैमवत, हैरण्यवत, हरिवर्ष, रम्यक्वर्ष, महाविदेह

जम्बूद्वीप में सात वर्षधर पर्वत कहे गए हैं । यथा–चुल्लहिमवन्त, महाहिमवंत, निषध, नीलवंत, रुक्मी, शिखरी, मंदराचल ।

जम्बूद्वीप में सात महानदियाँ हैं जो पूर्व की ओर बहती हुई लवण समुद्र में मिलती हैं । यथा–गंगा, रोहिता, हरित, शीता, नरकान्ता, सुवर्णकूला, रक्ता । जम्बूद्वीप में सात महानदियाँ हैं जो पश्चिम की ओर बहती हुई लवण समुद्र में मिलती हैं, यथा–सिन्धु, रोहीतांशा, हरिकान्ता, शीतोदा, नारीकान्ता, रूप्यकूला, रक्तवती ।

धातकीखण्ड द्वीप के पूर्वार्ध में सात वर्ष हैं, यथा–भरत यावत् महाविदेह । धातकीखण्ड द्वीप में पूर्वार्ध में सात वर्षधर पर्वत हैं । यथा–१. चुल्ल हिमवंत यावत् मंदराचल । धातकीखण्ड द्वीप के पूर्वार्ध में सात महानदियाँ हैं जो पूर्व दिशा में बहती हुई कालोद समुद्र में मिलती हैं । यथा–गंगा यावत् रक्ता । धातकीखण्ड द्वीप में सात महा-नदियाँ हैं जो पश्चिम में बहती हुई लवण समुद्र में मिलती हैं ।

धातकीखण्ड द्वीप के पश्चिमार्धमें सात वर्षक्षेत्र हैं, भरत यावत् महाविदेह । शेष तीन सूत्र पूर्ववत् । विशेष – पूर्व की ओर बहनेवाली नदियाँ लवणसमुद्रमें मिलती हैं, पश्चिम की ओर बहनेवाली नदियाँ कालोदसमुद्रमें मिलती हैं ।

पुष्करवर द्वीपार्ध के पूर्वार्ध में पूर्ववत् सात वर्ष क्षेत्र हैं । विशेष–पूर्व की ओर बहने वाली नदियाँ पुष्करोद समुद्र में मिलती हैं । पश्चिम की ओर बहने वाली नदियाँ कालोद समुद्र में मिलती हैं ।

पुष्करवर द्वीपार्ध के पूर्वार्ध में पूर्ववत् सात वर्ष क्षेत्र हैं । विशेष–पूर्व की ओर बहने वाली नदियाँ पुष्करोद समुद्र में मिलती हैं । पश्चिम की ओर बहने वाली नदियाँ कालोदसमुद्र में मिलती हैं । शेष तीन सूत्र पूर्ववत् । इसी प्रकार पश्चिमार्ध के भी चार सूत्र हैं । विशेष–पूर्व की ओर बहने वाली नदियाँ कालोदसमुद्र में मिलती हैं और पश्चिम की ओर बहने वाली पुष्करोद समुद्र में मिलती हैं । वर्ष, वर्षधर और नदियाँ सर्वत्र कहनी चाहिए ।

**सूत्र – ६४६, ६४७**

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में अतीत उत्सर्पिणी में सात कुलकर थे, यथा– मित्रदास, सुदाम, सुपार्श्व, स्वयंप्रभ, विमलघोष, सुघोष, महाघोष ।

**सूत्र – ६४८, ६४९**

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में इस अवसर्पिणी में सात कुलकर थे । विमलवाहन, चक्षुष्मान्, यशस्वान्, अभिचन्द्र, प्रसेनजित्, मरुदेव और नाभि ।

**सूत्र – ६५०, ६५१**

इन सात कुलकरों की सात भार्याएं थीं, यथा– चन्द्रयशा, चन्द्रकान्ता, सुरूपा, प्रतिरूपा, चक्षुकान्ता, श्रीकान्ता, मरुदेवी ।

**सूत्र – ६५२, ६५३**

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में आगामी उत्सर्पिणी में सात कुलकर होंगे । यथा– मित्रवाहन, सुभीम, सुप्रभ, सयंप्रभ, दत्त, सूक्ष्म, सुबन्धु ।

**सूत्र – ६५४, ६५५**

विमलवाहन कुलकर के काल में सात प्रकार के कल्पवृक्ष उपभोग में आते थे । यथा– मद्यांगा, भृंगा, चित्रांगा, चित्ररसा, मण्यंगा, अनग्ना, कल्पवृक्ष ।

**सूत्र - ६५६**

दण्ड नीति सात प्रकार की है, यथा–हक्कार–हे या हा कहना । मक्कार–मा अर्थात् मत कर कहना । धिक्कार–फटकारना । परिभाषण–अपराधी को उपालम्भ देना । मंडलबंध–क्षेत्र मर्यादा से बाहर न जाने की आज्ञा देना । चारक–कैद करना । छविच्छेद–हाथ पैर आदि का छेदन करना ।

**सूत्र - ६५७**

प्रत्येक चक्रवर्ती के सात एकेन्द्रिय रत्न कहे गए हैं । यथा–चक्ररत्न, छत्ररत्न, चर्मरत्न, दण्डरत्न, असिरत्न,

मणिरत्न और काकिणीरत्न ।

प्रत्येक चक्रवर्ती के सात पंचेन्द्रियरत्न हैं-सेनापतिरत्न, गाथापतिरत्न, वर्धकीरत्न, पुरोहितरत्न, स्त्रीरत्न, अश्वरत्न और हस्तिरत्न ।

**सूत्र - ६५८**

दुषमकाल के सात लक्षण हैं, यथा–अकाल में वर्षा होना, वर्षाकाल में वर्षा न होना, असाधु जनों की पूजा होना, साधु जनों की पूजा न होना, गुरु के प्रति लोगों का मिथ्याभाव होना, मानसिक दुःख, वाणी का दुःख ।

सुषमकाल के सात लक्षण हैं, यथा–अकाल में वर्षा नहं होती है, वर्षाकाल में वर्षा होती है, असाधु की पूजा नहीं होती है, साधु की पूजा होती है, गुरु के प्रति लोगों का सम्यक् भाव होता है, मानसिक सुख, वाणी का सुख ।

**सूत्र - ६५९**

संसारी जीव सात प्रकार के कहे गए हैं, यथा–नैरयिक, तिर्यंच, तिर्यंचनी, मनुष्य, मनुष्यनी, देव, देवी ।

**सूत्र - ६६०**

आयु का भेदन सात प्रकार से होता है, यथा–

**सूत्र - ६६१**

अध्यवसाय (राग, द्वेष और भय) से, निमित्त (दंड, शस्त्र आदि) से, आहार (अत्यधिक आहार) से, वेदना (आँख आदि की तीव्र वेदना) से, पराघात (आकस्मिक आघात) से, स्पर्श (सर्प, बिच्छु आदि के डंक) से, श्वासो-च्छ्वास (के रोकने) से ।

**सूत्र - ६६२**

सभी जीव सात प्रकार के हैं, यथा–पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पति-कायिक, त्रसकायिक और अकायिक ।

सभी जीव सात प्रकार के हैं, यथा–कृष्णलेश्या वाले, यावत् शुक्ललेश्या वाले और अलेशी ।

**सूत्र - ६६३**

ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती सात धनुष के ऊंचे थे । वे सातसौ वर्ष का पूर्वायु होने पर, सातवीं पृथ्वी के अप्रतिष्ठान नरकावास में नैरयिक रूप में उत्पन्न हुए ।

**सूत्र - ६६४**

मल्लीनाथ अर्हन्त स्वयं सातवे (सात राजाओं के साथ) मुण्डित हुए और गृहस्थावास त्यागकर अणगार प्रव्रज्या से प्रव्रजित हुए । यथा–मल्ली–विदेह राजकन्या, प्रतिबुद्धि–इक्ष्वाकु राजा, चन्द्रच्छाय–अंगदेश का राजा, रुक्मी–कुणाल देश का राजा, शंख–काशी देश का राजा, अदीन शत्रु–कुरु देश का राजा, जितशत्रु–पांचाल देश का राजा ।

**सूत्र - ६६५**

दर्शन सात प्रकार का कहा गया है, यथा–सम्यग्दर्शन, मिथ्यादर्शन, सम्यग्मिथ्यादर्शन, चक्षुदर्शन, अचक्षु-दर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन ।

**सूत्र - ६६६**

छद्मस्थ वीतराग मोहनीय को छोड़कर सात कर्म प्रकृतियाँ का वेदन करते हैं, यथा–ज्ञानावरणीय, दर्शना-वरणीय, वेदनीय, आयुकर्म, नामकर्म, गोत्रकर्म, अन्तरायकर्म ।

**सूत्र - ६६७**

छद्मस्थ सात स्थानों को पूर्णरूप से न जानता है और न देखता है, यथा–धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, शरीर रहित जीव, परमाणु पुद्गल, शब्द और गन्ध । इन्हीं सात स्थानों को सर्वज्ञ पूर्ण रूप से जानता है और देखता है । यथा–धर्मास्तिकाय यावत् गन्ध ।

**सूत्र - ६६८**

श्रमण भगवान महावीर वज्रऋषभनाराच संघयण वाले समचतुरस्र संस्थान वाले और सात हाथ ऊंचे थे ।

**सूत्र - ६६९**

सात विकथाएं कही गई है, यथा-स्त्री कथा, भक्त (आहार) कथा, देश कथा, राज कथा, मृदुकारिणी कथा, दर्शनभेदिनी, चारित्र भेदिनी ।

**सूत्र - ६७०**

गण में आचार्य और उपाध्याय के सात अतिशय हैं । यथा-आचार्य और उपाध्याय उपाश्रय में धूल भरे पैरों को दूसरे से झटकवावे या पूंछावे तो भी मर्यादा का उल्लंघन नहीं होता-शेष पाँचवे ठाणे के समान यावत् आचार्य उपाध्याय उपाश्रय के बाहर ईच्छानुसार एक रात या दो रात रहे तो भी मर्यादा का अतिक्रमण नहीं होता । उपकरण की विशेषता-आचार्य या उपाध्याय उज्ज्वल वस्त्र रखे तो मर्यादा का लंघन नहीं होता । भक्तपान की विशेषता-आचार्य या उपाध्याय श्रेष्ठ और पथ्य भोजन ले तो मर्यादा का अतिक्रमण नहीं होता ।

**सूत्र - ६७१**

संयम सात प्रकार के कहे गए हैं, यथा-पृथ्वीकायिक संयम-यावत् त्रस कायिक संयम और अजीवकाय संयम ।

असंयम सात प्रकार के कहे गए हैं, यथा-पृथ्वीकायिक असंयम-यावत् त्रसकायिक असंयम और अजीव-काय असंयम ।

आरम्भ सात प्रकार के कहे गए हैं, यथा-पृथ्वीकायिक आरम्भ-यावत् अजीवकाय आरम्भ । इसी प्रकार अनारम्भसूत्र हैं । सारंभसूत्र हैं । असारम्भसूत्र हैं । समारम्भसूत्र हैं । असमारम्भसूत्र हैं ।

**सूत्र - ६७२**

प्रश्न-हे भगवन् ! अलसी, कुसुभ, कोद्रव, कांग, रल, सण, सरसों और मूले के बीज । इन धान्यों को कोठे में, पाले में यावत् ढाँककर रखे तो उन धान्यों की योनि कितने काल तक सचित्त रहती है ? हे गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त, उत्कृष्ट-सात संवत्सर । पश्चात् योनि म्लान हो जाती है-यावत् योनि नष्ट हो जाती है ।

**सूत्र - ६७३**

बादर-अप्कायिक जीवों की उत्कृष्ट स्थिति सात हजार वर्ष की कही गई है ।

तीसरी बालुकाप्रभा में नैरयिकों की उत्कृष्ट स्थिति सात सागरोपम की कही गई है । चौथी पंकप्रभा में नैरयिकों की जघन्य स्थिति सात सागरोपम की कही गई है ।

**सूत्र - ६७४**

शक्रेन्द्र के वरुण लोकपाल की सात अग्रमहिषियाँ हैं । ईशानेन्द्र के सोम लोकपाल की सात अग्रमहिषियाँ हैं ईशानेन्द्र के यम लोकपाल की सात अग्रमहिषियाँ हैं ।

**सूत्र - ६७५**

ईशानेन्द्र के आभ्यन्तर परीषद् के देवों की स्थिति सात पल्योपम की है । शक्रेन्द्र के अग्रमहिषी देवियों की स्थिति सात पल्योपम की है । सौधर्म कल्प में परिगृहीता देवियों की उत्कृष्ट स्थिति सात पल्योपम की है ।

**सूत्र - ६७६**

सारस्वत लोकान्तिक देव के सात देवों का परिवार है । आदित्य लोकान्तिक देव के सात सौ देवों का परिवार है । गर्दतोय लोकान्तिक देव के सात देवों का परिवार है । तुषित लोकान्तिक देव के सात हजार देवों का परिवार है ।

**सूत्र - ६७७**

सनत्कुमार कल्प में देवताओं की उत्कृष्ट स्थिति सात सागरोपम की है । महेन्द्र कल्प में देवताओं की उत्कृष्ट स्थिति कुछ अधिक सात सागरोपम की है, ब्रह्मलोक कल्प में देवताओं की जघन्य स्थिति सात सागरोपम की है ।

**सूत्र - ६७८**

ब्रह्मलोक और लांतक कल्प में विमानों की ऊंचाई सात सौ योजन है ।

**सूत्र - ६७९**

भवनवासी देवों के भवधारणीय शरीरों की ऊंचाई सात हाथ की है । इसी प्रकार व्यन्तर देवों की, ज्योतिषी देवों की, सौधर्म और ईशान कल्प में देवों के भवधारणीय शरीरों की ऊंचाई सात हाथ की है ।

**सूत्र - ६८०**

नन्दीश्वर द्वीप में सात द्वीप है । यथा-जम्बूद्वीप, धातकीखण्डद्वीप, पुष्करवरद्वीप, वरुणवरद्वीप, क्षीरवर-द्वीप, धृतवरद्वीप और क्षोदवरद्वीप ।

नन्दीश्वर द्वीप में सात समुद्र हैं । यथा-लवण समुद्र, कालोद समुद्र, पुष्करोद समुद्र, करुणोद समुद्र, खीरोद समुद्र, धृतोद समुद्र और क्षोदोद समुद्र ।

**सूत्र - ६८१**

सात प्रकार की श्रेणियाँ कही गई हैं । यथा-ऋजु आयता । एकतः वक्रा, द्विधावक्रा, एकतः खा, द्विधा खा, चक्रवाला और अर्धचक्रवाला ।

**सूत्र - ६८२**

चमर असुरेन्द्र के सात सेनाएं हैं, और सात सेनापति हैं । यथा-पैदल सेना, अश्व सेना, हस्ति सेना, महिष सेना, रथ सेना, नट सेना, गंधर्व सेना । द्रुम-पैदल सेनापति है । शेष पाँचवे स्थानक के समान यावत् किन्नर-रथ सेना का सेनापति है । रिष्ट-नटसेना का सेनापति है और गीतरती-गंधर्व सेना का सेनापति है ।

बलि वैरोचनेन्द्र के सात सेनाएं हैं और सात सेनापति हैं । यथा-पैदल सेना यावत् गंधर्व सेना । महाद्रुम-पैदल सेना का सेनापति है । यावत् किंपुरुष-नट सेना का सेनापति, महारिष्ट-नट सेना का सेनापति और गीतयश-गंधर्व सेना का सेनापति ।

धरणेन्द्र की सात सेनाएं और सात सेनापति हैं, यथा-पैदल सेना यावत् गंधर्व सेना । रुद्रसेन-पैदल सेना का सेनापति । यावत् आनन्द-रथ सेना का सेनापति है । नन्दन-नट सेना का सेनापति है और तेतली-गंधर्व सेना का सेनापति है ।

नागकुमारेन्द्र भूतानन्द की सात सेनाएं और सात सेनापति हैं । यथा-पैदल सेना यावत् गंधर्व सेना । दक्ष-पैदल सेना का सेनापति । यावत् नंदुत्तर-रथ सेना का सेनापति है । रती-नट सेना का सेनापति है और मानस-गंधर्व सेना का सेनापति है । इस प्रकार घोष और महाघोष पर्यन्त सात-सात सेनाएं और सात-सात सेनापति हैं ।

शक्रेन्द्र की सात सेनाएं और सात सेनापति हैं । यथा-पैदल सेना यावत् गंधर्व सेना हरिणगमेषी-पैदल सेना का सेनापति यावत् माढर-रथ सेना का सेनापति है । महाश्वेत-नट सेना का सेनापति है और रत-गंधर्व सेना का सेनापति है । शेष पाँचवे स्थान के अनुसार समझे । इसी प्रकार अच्युत देवलोक पर्यन्त सेना और सेनापतियों का वर्णन समझें ।

**सूत्र - ६८३**

चमरेन्द्र के द्रुम पैदल सेनापति के सात कच्छ (सैन्य समूह) हैं, यथा-प्रथम कच्छ यावत्-सप्तम कच्छ । प्रथम कच्छ में ६४००० देव हैं । द्वीतिय कच्छ में प्रथम कच्छ से दूने देव हैं । तृतीय कच्छ में द्वीतिय कच्छ से दूने देव हैं । इस प्रकार सातवे कच्छ तक दूने-दूने देव कहें । इस प्रकार बलीन्द्र के भी सात कच्छ हैं, विशेष यह कि-महद्रुम सेनापति के प्रथम कच्छ में साठ हजार देव हैं, शेष छः कच्छों में पूर्ववत् दूने-दूने देव कहें ।

इस प्रकार धरणेन्द्र के सात कच्छ हैं । विशेष सूचना-रुद्रसेन सेनापति के प्रथम कच्छ में २८००० देव हैं, शेष छः कच्छों में पूर्ववत् दुगने-दुगने देव कहें । इस प्रकार महाघोष पर्यन्त दुगुने देव कहें । विशेष सूचना-पैदल सेना के सेनापतियों के नाम पूर्ववत् कहें ।

शक्रेन्द्र के पैदल सेनापति हरिणगमेषी देव के सात कच्छ हैं । चमरेन्द्र के समान अच्युतेन्द्र पर्यन्त कच्छ और देवताओं का वर्णन समझे । पैदल सेनापतियों के नाम पूर्ववत् कहें । देवताओं की संख्या इन दो गाथाओं से जाननी चाहिए ।

**सूत्र - ६८४**

शक्रेन्द्र के पैदल सेनापति के प्रथम कच्छ में ८४००० देव हैं । ईशानेन्द्र के ८०००० देव हैं । सनत्कुमार के ७२००० देव हैं । माहेन्द्र के ७०,००० देव हैं । ब्रह्मेन्द्र के ६०,००० देव हैं । लांतकेन्द्र के ५०,००० देव हैं । महा-शुक्रेन्द्र के ४०,००० देव हैं । सहस्रारेन्द्र के ३०,००० देव । आनतेन्द्र और आरणेन्द्र के २०,००० देव । प्राणतेन्द्र और अच्युतेन्द्र के २०,००० देव । प्रत्येक कच्छ में पूर्व कच्छ से दुगुने-दुगुने देव कहें ।

**सूत्र - ६८५**

वचन विकल्प सात प्रकार के–आलाप–अल्प भाषण, अनालाप–कुत्सित आलाप, उल्लाप–प्रश्न-गर्भित वचन, अनुल्लाप–निन्दित वचन, संलाप–परस्पर भाषण करना, प्रलाप–निरर्थक वचन, विप्रलाप–विरुद्ध वचन ।

**सूत्र - ६८६**

विनय सात प्रकार का कहा गया है, यथा–ज्ञान विनय, दर्शन विनय, चारित्र विनय, मन विनय, वचन विनय, काय विनय, लोकोपचार विनय ।

प्रशस्त मन विनय सात प्रकार का कहा गया है, यथा–अपापक–शुभ चिंतन रूप विनय, असावद्य–चोरी आदि निन्दित कर्म रहित, अक्रिय–कायिकादि क्रिया रहित, निरुपक्लेश–शोकादि पीड़ा रहित, अनाश्रवकर–प्राणा-तिपातादि रहित, अक्षतकर–प्राणियों की पीड़ित न करने रूप, अभुताभिशंकन–अभयदान रूप । अप्रशस्त मन विनय सात प्रकार का कहा गया है, यथा–पापक–अशुभ चिंतन रूप, सावद्य–चोरी आदि निन्दित कर्म, सक्रिय–कायिकादि क्रिया युक्त, सोपक्लेश–शोकादि पीड़ा युक्त, आश्रवकर–प्राणातिपातादि आश्रव, क्षयकर–प्राणियों को पीड़ित करने रूप, भूताभिशंकन–भयकारी ।

प्रशस्त वचनविनय सात प्रकार का है, अपापक, असावद्य यावत् अभूताभिशंकन अप्रशस्त वचन विनय सात प्रकार का है, यथा–पापक यावत् भूताभिशंकन ।

प्रशस्तकाय विनय सात प्रकार का कहा गया है, यथा–उपयोगपूर्वक गमन, उपयोग पूर्वक स्थिर रहना, उपयोगपूर्वक बैठना, उपयोगपूर्वक सोना, उपयोगपूर्वक देहली आदि का उल्लंघन करना, उपयोगपूर्वक अर्गला आदि का अतिक्रमण, उपयोगपूर्वक इन्द्रियों का प्रवर्तन । अप्रशस्तकाय विनय सात प्रकार का कहा गया है, यथा–उपयोग बिना गमन करना यावत्–उपयोग बिना इन्द्रियों का प्रवर्तन ।

लोकोपचार विनय सात प्रकार का कहा गया है, यथा–अभ्यासवर्तित्व–समीप रहना–जिससे बोलने वाले को तकलीफ न हो, परछंदानुवर्तित्व–दूसरे के अभिप्राय के अनुसार आचरण करना, कार्यहेतु–इन्होंने मुझे श्रुत दिया है अतः इनका कहना मुझे मानना ही चाहिए । कृतप्रतिकृतिता–इनकी मैं कुछ सेवा करूँगा तो ये मेरे पर कुछ उपकार करेंगे, आर्तगवेषण–रुग्ण की गवेषणा करके औषध देना, देश-कालज्ञता–देश और काल को जानना, सभी अवसरों में अनुकूल रहना ।

**सूत्र - ६८७**

समुद्घात सात प्रकार के कहे गए हैं, यथा–वेदना समुद्घात, कषाय समुद्घात, मारणांतिक समुद्घात, वैक्रिय समुद्घात, तैजस समुद्घात, आहारक समुद्घात, केवली समुद्घात । मनुष्यों के सात समुद्घात कहे गए हैं, यथा–पूर्ववत् ।

**सूत्र - ६८८**

श्रमण भगवान महावीर के तीर्थ में सात प्रवचननिह्नव हुए, यथा–बहुरत–दीर्घकाल में वस्तु की उत्पत्ति मानने वाले, जीव प्रदेशिका–अन्तिम जीव प्रदेश में जीवत्व मानने वाले, अव्यक्तिका–साधु आदि को संदिग्ध दृष्टि से देखने

वाले, सामुच्छिदेका-क्षणिक भाव मानने वाले, दो क्रिया-एक समय में दो क्रिया मानने वाले, त्रैराशिका-जीव राशि, अजीवराशि और नोजीवराशि । इस प्रकार तीन राशि की प्ररूपणा करने वाले, अबद्धिका-जीव कर्म से स्पष्ट है किन्तु कर्म से बद्ध जीव नहीं है, इस प्रकार की प्ररूपणा करने वाले ।

इन सात प्रवचन निह्नवों के सात धर्माचार्य थे, यथा-१. जमाली, २. तिष्यगुप्त, ३. आषाढ़, ४. अश्वमित्र, ५. गंग, ६. षडुलुक (रोहगुप्त), ७. गोष्ठामाहिल ।

**सूत्र - ६८९**

इन प्रवचन निह्नवों के सात उत्पत्ति नगर हैं, यथा-श्रावस्ती, ऋषभपुर, श्वेताम्बिका, मिथिला, उल्लुकातीर, अंतरंजिका और दशपुर ।

**सूत्र - ६९०**

सातावेदनीय कर्म के सात अनुभाव (फल) हैं, यथा-मनोज्ञ शब्द, मनोज्ञ रूप, यावत्-मनोज्ञ स्पर्श, मानसिक सुख, वाचिक सुख । असातावेदनीय कर्म के सात अनुभाव (फल) हैं, यथा-अमनोज्ञ शब्द यावत्-वाचिक दुःख ।

**सूत्र - ६९१**

मघा नक्षत्र के सात तारे हैं, अभिजित् आदि सात नक्षत्र पूर्व दिशा में द्वार वाले हैं, यथा-अभिजित्, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा, रेवती ।

अश्विनी आदि सात नक्षत्र दक्षिण दिशा में द्वार वाले हैं, यथा-अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु ।

पुष्य आदि सात नक्षत्र पश्चिम दिशा में द्वार वाले हैं, यथा-पुष्य, अश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तरा-फाल्गुनी, हस्त, चित्रा ।

स्वाति आदि सात नक्षत्र उत्तर दिशा में द्वार वाले हैं, यथा-स्वाति, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा ।

**सूत्र - ६९२**

जम्बूद्वीप में सोमनस वक्षस्कार पर्वत पर सात कूट हैं, यथा-

**सूत्र - ६९३**

सिद्धकूट, सोमनसकूट, मंगलावतीकूट, देवकूट, विमलकूट, कंचनकूट और विशिष्टकूट ।

**सूत्र - ६९४**

जम्बूद्वीप में गंधमादन वक्षस्कार पर्वत पर सात कूट हैं, यथा-

**सूत्र - ६९५**

सिद्धकूट, गंधमादनकूट, गंधिलावतीकूट, उत्तरकुरुकूट, फलिधकूट, लोहिताक्षकूट, आनन्दनकूट ।

**सूत्र - ६९६**

बेइन्द्रिय की सात लाख कुल कौड़ी हैं ।

**सूत्र - ६९७**

जीवों ने सात स्थानों में निवर्तित (संचित) पुद्गल पाप कर्म के रूप में चयन किये हैं, चयन करते हैं और चयन करेंगे । इसी प्रकार उपचयन, बन्ध, उदीरणा, वेदना और निर्जरा के तीन-तीन दण्डक कहें ।

**सूत्र - ६९८**

सात प्रदेशिक स्कन्ध अनन्त हैं, सात प्रदेशावगाढ़ पुद्गल अनन्त हैं, यावत् सात गुण रूक्ष पुद्गल अनन्त हैं

**स्थान-७ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण**

## स्थान-८

**सूत्र - ६९९**

आठ गुण सम्पन्न अणगार एकलविहारी प्रतिमा धारण करने योग्य होता है, यथा–श्रद्धावान, सत्यवादी, मेघावी, बहुश्रुत, शक्तिमान, अल्पकलही, धैर्यवान, वीर्यसम्पन्न ।

**सूत्र - ७००**

योनिसंग्रह आठ प्रकार का कहा गया है, यथा–अंडज, पोतज यावत्–उद्भिज और औपपातिक ।

अंडज आठ गति वाले हैं, और आठ आगति वाले हैं । अण्डज यदि अण्डजों में उत्पन्न हो तो अण्डजों से पोतजों से यावत्–औपपातिकों से आकर उत्पन्न होते हैं । वही अण्डज अण्डजपने को छोड़कर अण्डज रूप में यावत् –औपपातिक रूप में उत्पन्न होता है ।

इसी प्रकार जरायुजों की गति आगति कहें । शेष रसज आदि पाँचों की गति आगति न कहें ।

**सूत्र - ७०१**

जीवों ने आठ कर्म प्रकृतियों का चयन किया है, करते हैं और करेंगे । यथा–ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र, अन्तराय ।

नैरयिकों ने आठ कर्म प्रकृतियों का चयन किया है, करते हैं और करेंगे । इस प्रकार वैमानिक पर्यन्त कहें । इसी प्रकार उपचय, बन्ध, उदीरणा, वेदना और निर्जरा के सूत्र कहें । प्रत्येक के दण्डक सूत्र कहें ।

**सूत्र - ७०२**

आठ कारणों से मायावी माया करके न आलोयणा करता है, न प्रतिक्रमण करता है, यावत्–न प्रायश्चित्त स्वीकारता है, यथा–मैंने पापकर्म किया है अब मैं उस पाप की निन्दा कैसे करूँ ? मैं वर्तमान में भी पाप करता हूँ अतः मैं पाप की आलोचना कैसे करूँ ? मैं भविष्य में भी यह पाप करूँगा–अतः मैं आलोचना कैसे करूँ ? मेरी अपकीर्ति होगी अतः मैं आलोचना कैसे करूँ ? मेरा अपयश होगा अतः मैं आलोचना कैसे करूँ ? पूजा प्रतिष्ठा की हानि होगी अतः मैं आलोचना कैसे करूँ ? कीर्ति की हानि होगी अतः मैं आलोचना कैसे करूँ ? मेरे यश की हानि होगी अतः मैं आलोचना कैसे करूँ ?

आठ कारणों से मायावी माया करके आलोयणा करता है–यावत् प्रायश्चित्त स्वीकार करता है, यथा–मायावी का यह लोक निन्दनीय होता है अतः मैं आलोचना करूँ । उपपात निन्दित होता है । भविष्य का जन्म निन्दनीय होता है । एक वक्त माया करे आलोचना न करे तो आराधक नहीं होता है । एक वक्त माया करके आलोचना करे तो आराधक होता है । अनेक बार माया करके आलचना न करे तो आराधक नहीं होता है । अनेक बार माया करके भी आलोचना करे तो आराधक होता है । मेरे आचार्य और उपाध्याय विशिष्ट ज्ञान वाले हैं, वे जानेंगे की ''यह मायावी है'' अतः मैं आलोचना करूँ– यावत् प्रायश्चित्त स्वीकार करूँ ।

माया करने पर मायावी का हृदय किस प्रकार पश्चात्ताप से दग्ध होता रहता है–यह यहाँ पर उपमा द्वारा बताया गया है । जिस प्रकार लोहा, ताँबा, कलई, शीशा, रूपा और सोना गलाने की भट्ठी, तिल, तुस, भूसा, नल और पत्तों की अग्नि । दारु बनाने की भट्ठी, मिट्टी के बरतन, गोले, कवेलु, ईंटे आदि पकाने का स्थान, गुड़ पकाने की भट्ठी और लुहार की भट्ठी में शूले के फूल और उल्कापात जैसे जाज्वल्यमान, हजारों चिनगारियाँ जिनसे उछल रही है ऐसे अंगारों के समान मायावी का हृदय पश्चात्ताप रूप अग्नि से निरन्तर जलता रहता है । मायावी को सदा ऐसी आशंका बनी रहती है कि ये सब लोग मेरे पर ही शंका करते हैं ।

मायावी माया करके आलोचना किये बिना यदि मरता है और देवों में उत्पन्न होता है तो वह महर्द्धिक देवों में यावत् सौधर्मादि देवलोकोंमें उत्पन्न नहीं होता है । उत्कृष्ट स्थिति वाले देवों में भी वह उत्पन्न नहीं होता है । उस देव की बाह्य या आभ्यन्तर परीषद् भी उसके सामने आती है लेकिन परीषद् के देव उस देव का आदर समादर नहीं करते हैं, तथा उसे आसन भी नहीं देते हैं । वह यदि किसी देव को कुछ कहता है तो चार पाँच देव उसके सामने आकर उसका

अपमान करते हैं और कहते हैं कि बस अब अधिक कुछ न कहो । जो कुछ कहा यही बहुत है । आयु पूर्ण होने पर वह देव वहाँ से च्यवकर मनुष्यलोकमें हलके कुलोंमें उत्पन्न होता है । यथा–अन्त कुल, प्रांत कुल, तुच्छ कुल, दरिद्र कुल, भिक्षुक कुल, कृपण कुल आदि । इन कुलोंमें भी वह कुरूप, कुवर्ण, कुगन्ध, कुरस, कुस्पर्शवाला होता है । अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय, अमनोज्ञ, हीनस्वर, दीनस्वर, अनिष्टस्वर, अकान्तस्वर, अप्रियस्वर, अमनोज्ञस्वर, अमनामस्वर और अनादेय वचन वाला वह होता है । उसके आसपास के लोग भी उसका आदर नहीं करते हैं । वह कुछ किसी को उपालम्भ देने लगता है तो उसे चार पाँच जने मिल कर रोकते हैं और कहने लगते हैं कि बस अब कुछ न कहो ।

किन्तु मायावी माया करने पर यदि आलोचना करके मरे तो वह ऋद्धिमान तथा उत्कृष्ट स्थिति वाला देव होता है, हार से उसका वक्षःस्थल सुशोभित होता है, हाथ में कंकण तथा मस्तक पर मुकुट आदि अनेक प्रकार के आभूषणों से वह सुन्दर शरीर से दैदीप्यमान होता है, वह दिव्य भोगोपभोगों को भोगता है । वह कुछ कहने लगता है तो उसे चार पाँच देव आकर उत्साहित करते हैं और कहने लगते हैं कि आप खूब बोले । वह देव देवलोक से च्यवकर मनुष्य लोक में उच्च कुलों में उत्पन्न होता है तो उसे सुन्दर शरीर प्राप्त होता है, आस-पास के लोग उसका बहुत आदर करते हैं तथा बोलने के लिए आग्रह करते हैं ।

**सूत्र - ७०३**

संवर आठ प्रकार का कहा गया है, यथा–श्रोत्रेन्द्रिय संवर यावत् स्पर्शेन्द्रिय संवर, मन संवर, वचन संवर, काय संवर । असंवर आठ प्रकार का कहा गया है, यथा–श्रोत्रेन्द्रिय असंवर यावत् काय असंवर ।

**सूत्र - ७०४**

स्पर्श आठ प्रकार का कहा गया है, यथा–कर्कश, मृदु, गुरु, लघु, शीत, उष्ण, स्निग्ध, रुक्ष ।

**सूत्र - ७०५**

लोक स्थिति आठ प्रकार की कही गई है, यथा–आकाश के आधार पर रहा हुआ वायु, वायु के आधार पर रहा हुआ घनोदधि–शेष छठे स्थान के समान–यावत् संसारी जीव कर्म के आधार पर रहे हुए हैं । पुद्‌गलादि अजीव जीवों से संग्रहीत (बद्ध) हैं । जीव ज्ञानावरणीयादि कर्मों से संग्रहीत (बद्ध) हैं ।

**सूत्र - ७०६**

गणी (आचार्य) की आठ सम्पदा (भावसमृद्धि) कही गयी है, यथा–आचार सम्पदा–क्रियारूप सम्पदा, श्रुत सम्पदा–शास्त्र ज्ञान रूप सम्पदा, शरीर सम्पदा–प्रमाणोपेत शरीर तथा अवयव, वचन सम्पदा–आदेय और मधुर वचन, वाचना सम्पदा–शिष्यों की योग्यतानुसार आगमों की वाचना देना । मति सम्पदा–अवग्रहादि बुद्धिरूप, प्रयोग सम्पदा–वाद विषयक स्वसामर्थ्य का ज्ञान तथा द्रव्य-क्षेत्र आदि का ज्ञान और संग्रह परिज्ञा सम्पदा–बाल-वृद्ध तथा रूप आदि के क्षेत्रादि का ज्ञान ।

**सूत्र - ७०७**

चक्रवर्ती की प्रत्येक महानिधि आठ चक्र के ऊपर प्रतिष्ठित है और प्रत्येक आठ-आठ योजन ऊंचे हैं ।

**सूत्र - ७०८**

समितियाँ आठ कही गई हैं, यथा–ईर्यासमिति, भाषासमिति, एषणासमिति, आदान भाण्ड मात्र निक्षेपणा समिति, उच्चार प्रस्रवण श्लेष्म मल सिंधाण परिष्ठापनिका समिति, मन समिति, वचन समिति, काय समिति ।

**सूत्र - ७०९**

आठ गुण सम्पन्न अणगार आलोचना सूनने योग्य होता है, यथा–आचारवान, अवधारणावान, व्यवहारवान, आलोचक या संकोच मिटाने में समर्थ, शुद्धि करवाने में समर्थ, आलोचक की शक्ति के अनुसार प्रायश्चित्त देने वाला, आलोचक के दोष अन्य को न कहने वाला और दोष सेवन से अनिष्ट होता है, यह समझाने में समर्थ ।

आठ गुणयुक्त अणगार अपने दोषों की आलोचना कर सकता है, यथा–जातिसम्पन्न, कुलसम्पन्न, विनय-सम्पन्न, ज्ञानसम्पन्न, दर्शनसम्पन्न, चारित्रसम्पन्न, क्षान्त और दान्त ।

**सूत्र - ७१०**

प्रायश्चित्त आठ प्रकार का कहा गया है, यथा–आलोचनायोग्य, प्रतिक्रमणयोग्य, उभययोग्य, विवेकयोग्य, व्युत्सर्गयोग्य, तपयोग्य, छेदयोग्य और मूलयोग्य।

**सूत्र - ७११**

मद स्थान आठ कहे हैं, यथा–जाति मद, कुल मद, बल मद, रूप मद, तप मद, सूत्र मद, लाभ मद, ऐश्वर्य मद।

**सूत्र - ७१२**

अक्रियावादी आठ हैं, यथा–एक वादी–आत्मा एक ही है ऐसा कहने वाले, अनेकवादी–सभी भावों को भिन्न मानने वाले, मितवादी–अनन्त जीव हैं फिर भी जीवों की एक नियत संख्या मानने वाले। निर्मितवादी–''यह सृष्टि किसी की बनाई हुई है'' ऐसा मानने वाले। सातवादी–सुख से रहना, किन्तु तपश्चर्या न करना। समुच्छेदवादी – प्रतिक्षण वस्तु नष्ट होती है, ऐसा मानने वाले क्षणिकवादी। नित्यवादी–सभी वस्तुओं को नित्य मानने वाले। मोक्ष या परलोक नहीं है, ऐसा मानने वाले।

**सूत्र - ७१३**

महानिमित्त आठ प्रकार का कहा गया है, यथा–भौम–भूमि विषयक शुभाशुभ का ज्ञान करने वाले शास्त्र। उत्पात–रुधिर वृष्टि आदि उत्पातों का फल बताने वाला शास्त्र। स्वप्न–शुभाशुभ स्वप्नों का फल बताने वाला शास्त्र। अंतरिक्ष–गांधर्व नगरादि का शुभाशुभ फल बताने वाला शास्त्र। अंग–चक्षु, मस्तक आदि अंगों के फरकने से शुभाशुभ फल की सूचना देने वाला शास्त्र। स्वर–षड्ज आदि स्वरों का शुभाशुभ फल बताने वाला शास्त्र। लक्षण – स्त्री-पुरुष के शुभाशुभ लक्षण बताने वाला शास्त्र। व्यञ्जन–तिल मस आदि के शुभाशुभ फल बताने वाला शास्त्र

**सूत्र - ७१४–७२०**

वचन विभक्ति आठ प्रकार की कही गई है, यथा–निर्देश में प्रथमा–वह, यह, मैं। उपदेश में द्वीतिया–यह करो। इस श्लोक को पढ़ो। करण में तृतीया–मैंने कुण्ड बनाया। सम्प्रदान में चतुर्थी–नमः स्वस्ति, स्वाहा के योग में। अपादान में पंचमी–पृथक् करने में तथा ग्रहण करने में, यथा–कूप से जल नीकाल, कोठी में से धान्य ग्रहण कर। स्वामित्व के सम्बन्ध में षष्ठी–इसका, उसका तथा सेठ का नौकर। सन्निधान अर्थ में सप्तमी–आधार अर्थ में–मस्तक पर मुकुट है। काल में–प्रातःकाल में कमल खिलता है, भावरूप क्रिया विशेषण में–सूर्य अस्त होने पर रात्रि हुई। आमन्त्रण में अष्टमी–यथा हे युवान्!

**सूत्र - ७२१**

आठ स्थानों को छद्मस्थ पूर्णरूप से न देखता है और न जानता है। यथा–धर्मास्तिकाय यावत् गंध और वायु। आठ स्थानों को सर्वज्ञ पूर्णरूप से देखता है और जानता है। यथा–धर्मास्तिकाय यावत् गंध और वायु।

**सूत्र - ७२२**

आयुर्वेद आठ प्रकार का कहा गया है, यथा–कुमार भृत्य–बाल चिकित्सा शास्त्र, कायचिकित्सा–शरीर चिकित्सा शास्त्र, शालाक्य–गले से ऊपर के अंगों की चिकित्सा का शास्त्र। शल्यहत्या–शरीर में कंटक आदि कहीं लग जाए तो उसकी चिकित्सा का शास्त्र, जंगोली–सर्प आदि के विष कि चिकित्सा का शास्त्र। भूतविद्या–भूत-पिशाच आदि के शमन का शास्त्र, क्षारतंत्र–वीर्यपात की चिकित्सा का शास्त्र, रसायन–शरीर आयुष्य और बुद्धि की वृद्धि करने वाला शास्त्र।

**सूत्र - ७२३**

शक्रेन्द्र के आठ अग्रमहिषियाँ हैं, यथा–पद्मा, शिवा, सती, अंजू, अमला, आसरा, नवमिका, रोहिणी। ईशानेन्द्र के आठ अग्रमहिषियाँ हैं, यथा–१. कृष्णा, कृष्णराजी, रामा, रामरक्षिता, वसु, वसुगुप्ता, वसुमित्रा, वसुंधरा। शक्रेन्द्र के सोम लोकपाल की आठ अग्रमहिषियाँ हैं, ईशानेन्द्र के वैश्रमण लोकपाल की आठ अग्र-महिषियाँ हैं।

महाग्रह आठ हैं, यथा–चन्द्र, सूर्य, शुक्र, बुध, बृहस्पति, मंगल, शनैश्चर, केतु।

**सूत्र - ७२४**

तृण वनस्पतिकाय आठ प्रकार का है, यथा–मूल, कंद, स्कंध, त्वचा, खाल, प्रवाल, पत्र, पुष्प ।

**सूत्र - ७२५**

चउरिन्द्रिय जीवों की हिंसा न करने वालों में आठ प्रकार का संयम होता है । यथा–नेत्र सुख नष्ट नहीं होता, नेत्र दुःख उत्पन्न नहीं होता, यावत्–स्पर्श सुख नष्ट नहीं होता, स्पर्श दुःख उत्पन्न नहीं होता ।

चउरिन्द्रिय जीवों की हिंसा करने वालों के आठ प्रकार का असंयम होता है, यथा–नेत्र सुख नष्ट होता है, नेत्र दुःख उत्पन्न होता है, यावत्–स्पर्श दुःख उत्पन्न होता है ।

**सूत्र - ७२६**

सूक्ष्म आठ प्रकार के हैं, यथा–प्राणसूक्ष्म–कुंथुआ आदि, पनक सूक्ष्म–लीलण, फूलण, बीज सूक्ष्म–बटबीज हरित सूक्ष्म–लीली वनस्पति, पुष्पसूक्ष्म, अंडसूक्ष्म–कमियों के अंडे, लयनसूक्ष्म–कीड़ी नगरा, स्नेहसूक्ष्म–धुंअर आदि ।

**सूत्र - ७२७**

भरत चक्रवर्ती के पश्चात् आठ युग प्रधान पुरुष व्यवधान रहित सिद्ध हुए यावत्–सर्व दुःख रहित हुए । यथा–आदित्य यश, महायश, अतिबल, महाबल, तेजोवीर्य, कार्तवीर्य, दंडवीर्य, जलवीर्य ।

**सूत्र - ७२८**

भगवान पार्श्वनाथ के आठ गण और आठ गणधर थे, यथा–शुभ, आर्य, घोष, वशिष्ठ, ब्रह्मचारी, सोम, श्रीधर, वीर्य, भद्रयश ।

**सूत्र - ७२९**

दर्शन आठ प्रकार के कहे गए हैं, यथा–सम्यग्दर्शन, मिथ्यादर्शन, सम्यग्मिथ्यादर्शन, चक्षुदर्शन यावत् केवलदर्शन और स्वप्नदर्शन ।

**सूत्र - ७३०**

औपमिक काल आठ प्रकार के कहे गए हैं, यथा–पल्योपम, सागरोपम, उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी, पुद्गल-परावर्तन, अतीतकाल, भविष्यकाल, सर्वकाल ।

**सूत्र - ७३१**

भगवान अरिष्टनेमि के पश्चात् आठ युग प्रधान पुरुष मोक्ष में गए और उनकी दीक्षा के दो वर्ष पश्चात् वे मोक्ष में गए ।

**सूत्र - ७३२**

भगवान महावीर से मुण्डित होकर आठ राजा प्रव्रजित हुए । यथा–वीरांगद, क्षीरयश, संजय, एणेयक, श्वेत, शिव, उदायन, शंख ।

**सूत्र - ७३३**

आहार आठ प्रकार के हैं, यथा–मनोज्ञ अशन, मनोज्ञ पान, मनोज्ञ खाद्य, मनोज्ञ स्वाद्य, अमनोज्ञ अशन, अमनोज्ञ पान, अमनोज्ञ खाद्य, अमनोज्ञ स्वाद्य ।

**सूत्र – ७३४, ७३५**

सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्प के नीचे ब्रह्मलोक कल्प में रिष्टविमान के प्रस्तट में अखाड़े के समान सम-चतुरस्र संस्थान वाली आठ कृष्णराजियाँ हैं, दो कृष्णराजियाँ पूर्व में, दो कृष्णराजियाँ दक्षिण में, दो कृष्णराजियाँ पश्चिम में, दो कृष्णराजियाँ उत्तर में ।

पूर्व दिशा की आभ्यन्तर कृष्णराजि दक्षिण दिशा को बाह्य कृष्णराजि से स्पृष्ट है । दक्षिण दिशा की आभ्यन्तर कृष्णराजि पश्चिम दिशा की बाह्य कृष्णराजि से स्पृष्ट है । पश्चिम दिशा की आभ्यन्तर कृष्णराजि उत्तर दिशा की बाह्य कृष्णराजि से स्पृष्ट है । उत्तर दिशा की आभ्यन्तर कृष्णराजि पूर्व दिशा की बाह्य कृष्णराजि से स्पृष्ट है ।

पूर्व और पश्चिम दिशा की दो बाह्य कृष्णराजियाँ षट्कोण हैं । उत्तर और दक्षिण दिशा की दो बाह्य कृष्णराजियाँ त्रिकोण हैं । सभी आभ्यन्तर कृष्णराजियाँ चौरस हैं ।

आठ कृष्णराजियों के आठ नाम हैं–यथा–कृष्णराजि, मेघराजि, मघाराजि, माधवती, वातपरिधा, वातपरिक्षोभ, देवपरिधा, देवपरिक्षोभ ।

इन आठ कृष्णराजियों के मध्य भाग में आठ लोकान्तिक विमान हैं, यथा–अर्चि, अर्चिमाली, वैरोचन, प्रभंकर, चन्द्राभ, सूर्याभ, सुप्रतिष्ठाभ, अग्नेयाभ । इन आठ लोकान्तिक विमानों में अजघन्योत्कृष्ट आठ सागरोपम स्थिति वाला आठ लोकान्तिक देव रहते हैं, यथा– सारस्वत, आदित्य, वह्नि, वरुण, गर्दतोय, तुषित, अव्याबाध, आग्नेय ।

**सूत्र - ७३६**

धर्मास्तिकाय के मध्य प्रदेश आठ हैं, अधर्मास्तिकाय के मध्य प्रदेश आठ हैं, आकाशास्तिकाय के मध्य प्रदेश आठ हैं, जीवास्तिकाय के मध्य प्रदेश आठ हैं ।

**सूत्र - ७३७**

महापद्म अर्हन्त आठ राजाओं को मुण्डित करके तथा गृहस्थ का त्याग करा करके अणगार प्रव्रज्या देंगे । यथा–पद्म, पद्मगुल्म, नलिन, नलिनगुल्म, पद्मध्वज, धनुध्वज, कनकरथ, भरत ।

**सूत्र - ७३८**

कृष्ण वासुदेव की आठ अग्रमहिषियाँ अर्हन्त अरिष्टनेमि के समीप मुण्डित होकर तथा गृहस्थ से नीकल कर अणगार प्रव्रज्या स्वीकार करेंगी, सिद्ध होंगी यावत् सर्व दुःखों से मुक्त होंगी । यथा–पद्मावती, गोरी, गंधारी, लक्षणा, सुसीमा, जाम्बवती, सत्यभामा और रुक्मिणी ।

**सूत्र - ७३९**

वीर्यप्रवाद पूर्व की आठ वस्तु और आठ चूलिका वस्तु है ।

**सूत्र - ७४०**

गतियाँ आठ प्रकार की हैं, यथा–नरकगति, तिर्यंचगति, यावत् सिद्धगति, गुरुगति, प्रणोदनगति और प्राग्भारगति ।

**सूत्र - ७४१**

गंगा, सिन्धु, रक्ता और रक्तवती देवियों के द्वीप आठ-आठ योजन के लम्बे चौड़े हैं ।

**सूत्र - ७४२**

उल्कामुख, मेघमुख, विद्युन्मुख और विद्युद्दंत अन्तर द्वीपों के द्वीप आठसौ-आठसौ योजन के लम्बे चौड़े हैं

**सूत्र - ७४३**

कालोद समुद्र की वलयाकार चौड़ाई आठ लाख योजन की है ।

**सूत्र - ७४४**

आभ्यन्तर पुष्करार्धद्वीप की वलयाकार चौड़ाई भी आठ लाख योजन की है । बाह्य पुष्करार्ध द्वीप की वलयाकार चौड़ाई भी इतनी ही है ।

**सूत्र - ७४५**

प्रत्येक चक्रवर्ती के काकिणी रत्न आठ सुवर्ण प्रमाण होते हैं । काकिणी रत्न के ६ तले, १२ अस्त्रि, आठ कर्णिकाएं होती हैं । काकिणी रत्न का संस्थान एरण के समान होता है ।

**सूत्र - ७४६**

मगध का योजन आठ हजार धनुष का निश्चित है ।

**सूत्र - ७४७**

जम्बूद्वीप में सुदर्शन वृक्ष आठ योजन का ऊंचा है, मध्य भाग में आठ योजन का चौड़ा है, और सर्व परिमाण

कुछ अधिक आठ योजन का है । कूट शाल्मली वृक्ष का परिमाण भी इसी प्रकार है ।

**सूत्र - ७४८**

तमिस्रा गुफा की ऊंचाई आठ योजन की है । खण्डप्रपात गुफा की ऊंचाई भी इसी प्रकार आठ योजन की है।

**सूत्र - ७४९**

जम्बूद्वीपवर्ती मेरु पर्वत के पूर्व में सीता महानदी के दोनों किनारों पर आठ वक्षस्कार पर्वत हैं, यथा–चित्रकूट, पद्मकूट, नलिनीकूट, एकशेलकूट, त्रिकूट, वैश्रमणकूट, अंजनकूट, मातंजन कूट । जम्बूद्वीपवर्ती मेरु पर्वत के पश्चिम में शीतोदा महानदी के किनारों पर आठ वक्षस्कार पर्वत हैं । यथा–अंकावती, पद्मावती, आशीविष, सुखावह, चन्द्रपर्वत, सूर्यपर्वत, नागपर्वत, देव पर्वत ।

जम्बूद्वीपवर्ती मेरु पर्वत के पूर्व में सीता महानदी के उत्तरी किनारे पर आठ चक्रवर्ती विजय हैं, यथा–कच्छ, सुकच्छ, महाकच्छ, कच्छगावती, आवर्त यावत् पुष्कलावती विजय । जम्बूद्वीपवर्ती मेरु पर्वत के पूर्व में शीता महानदी के दक्षिण में आठ चक्रवर्ती विजय हैं, यथा–वत्स, सुवत्स यावत् मंगलावती । जम्बूद्वीपवर्ती मेरु पर्वत के पश्चिम में शीतोदा महानदी के दक्षिण में आठ चक्रवर्ती विजय हैं, पद्म यावत् सलीलावती । जम्बूद्वीपवर्ती मेरु पर्वत के पश्चिम में शीतोदा के उत्तर में आठ चक्रवर्ती विजय हैं, यथा–वप्रा, सुवप्रा, यावत् गंधिलावती ।

जम्बूद्वीपवर्ती मेरु पर्वत के पश्चिम में शीता महानदी के उत्तर में आठ राजधानियाँ हैं, यथा–क्षेमा, क्षेमपुरी, यावत्–पुंडरिकिणी । जम्बूद्वीपवर्ती मेरु पर्वत के पूर्व में शीता महानदी के दक्षिण में आठ राजधानियाँ हैं । यथा–सुसीमा, कुंडला यावत्, रत्नसंचया । जम्बूद्वीपवर्ती मेरु पर्वत के पश्चिम में शीतोदा महानदी के दक्षिण में आठ राजधानियाँ हैं, अश्वपुरा यावत् वीतशोका । जम्बूद्वीपवर्ती मेरु पर्वत के पश्चिम में शीतोदा महानदी के उत्तर में आठ राजधानियाँ हैं, यथा–विजया, वैजयन्ती–यावत् अयोध्या ।

**सूत्र - ७५०**

जम्बूद्वीपवर्ती मेरु पर्वत के पूर्व में शीता महानदी के उत्तर में, उत्कृष्ट आठ अर्हन्त, आठ चक्रवर्ती, आठ बलदेव और आठ वासुदेव उत्पन्न हुए, होते हैं और होंगे । जम्बूद्वीपवर्ती मेरु पर्वत के पूर्व में शीता महानदी के दक्षिण में इतने ही अरिहंत आदि हुए हैं, होते हैं और होंगे । जम्बूद्वीपवर्ती मेरु पर्वत के पश्चिम में शीतोदा महानदी के दक्षिण में इतने ही अरिहंत आदि हुए हैं, होते हैं और होंगे । उत्तर में भी इतने ही अरिहंत आदि हुए हैं, होते हैं और होंगे ।

**सूत्र - ७५१**

जम्बूद्वीपवर्ती मेरु पर्वत से पूर्व में शीता महानदी के उत्तर में आठ दीर्घ वैताढ्य, आठ तमिस्रगुफा, आठ खंडप्रपातगुफा, आठ कृतमालक देव, आठ नृत्यमालक देव, आठ गंगाकुण्ड, आठ सिन्धुकुण्ड, आठ गंगा, आठ सिन्धु, आठ ऋषभकूट पर्वत और आठ ऋषभकूट देव हैं ।

जम्बूद्वीपवर्ती मेरु पर्वत के पूर्व में शीता महानदी के दक्षिण में आठ दीर्घवैताढ्य हैं–यावत् आठ ऋषभकूट देव हैं । विशेष यह कि–रक्ता और रक्तवती नदियों के कुण्ड हैं ।

जम्बूद्वीपवर्ती मेरु पर्वत से पश्चिम में शीतोदा महानदी के दक्षिण में आठ दीर्घ वैताढ्य पर्वत हैं यावत्–आठ नृत्यमालक देव हैं, आठ गंगाकुण्ड, आठ सिन्धुकुण्ड, आठ गंगा (नदियाँ), आठ सिन्धु नदियाँ, आठ ऋषभकूट पर्वत और आठ ऋषभकूट देव हैं । जम्बूद्वीपवर्ती मेरु पर्वत के पश्चिम में शीतोदा महानदी के उत्तर में आठ दीर्घ वैताढ्य पर्वत हैं यावत्–आठ नृत्यमालक देव हैं । आठ रक्त कुण्ड हैं, आठ रक्तावती कुण्ड हैं, आठ रक्ता नदियाँ हैं यावत् आठ ऋषभकूट देव हैं ।

**सूत्र - ७५२**

मेरु पर्वत की चूलिका मध्यभाग में आठ योजन की चौड़ी है ।

**सूत्र - ७५३**

धातकीखण्डद्वीप के पूर्वार्ध में धातकी वृक्ष आठ योजन का ऊंचा है, मध्य भाग में आठ योजन का चौड़ा है, और इसका सर्व परिमाण कुछ अधिक आठ योजन का है । धातकी वृक्ष से मेरु चूलिका पर्यन्त सारा कथन जम्बूद्वीप

के वर्णन के समान कहना चाहिए। धातकीखण्ड द्वीप के पश्चिमार्ध में भी महाधातकी वृक्ष से मेरु चूलिका पर्यन्त का कथन जम्बूद्वीप के वर्णन के समान है।

इसी प्रकार पुष्करवरद्वीपार्ध के पूर्वार्ध में पद्मवृक्ष से मेरु चूलिका पर्यन्त का कथन जम्बूद्वीप के समान है। इस प्रकार पुष्करवरद्वीपार्ध के पश्चिमार्ध में महापद्म वृक्ष से मेरु चूलिका पर्यन्त का कथन जम्बूद्वीप के समान है।

**सूत्र - ७५४, ७५५**

जम्बूद्वीप के मेरुपर्वत पर भद्रशालवन में आठ दिशाहस्तिकूट हैं। यथा-पद्मोत्तर, नीलवंत, सुहस्ती, अंजनागिरी, कुमुद, पलाश, अवतंसक, रोचनागिरी।

**सूत्र - ७५६**

जम्बूद्वीप की जगति आठ योजन की ऊंची है और मध्य में आठ योजन की चौड़ी है।

**सूत्र - ७५७, ७५८**

जम्बूद्वीपवर्ती मेरु पर्वत के दक्षिण में महाहिमवंत वर्षधर पर्वत पर आठ कूट हैं, यथा- सिद्ध, महाहिमवंत, हिमवंत, रोहित, हरीकूट, हरिकान्त, हरिवास, वैडूर्य।

**सूत्र - ७५९, ७६०**

जम्बूद्वीपवर्ती मेरु पर्वत के उत्तर में रुक्मी पर्वत पर आठ कूट हैं, यथा- सिद्ध, रुक्मी, रम्यक्, नरकान्त, बुद्धि, रुक्मकूट, हिरण्यवत, मणिकंचन।

**सूत्र - ७६१, ७६२**

जम्बूद्वीपवर्ती मेरु पर्वत के पूर्व में रुचकवर पर्वत पर आठ कूट हैं, यथा- रिष्ट, तपनीय, कंचन, रजत, दिशास्वस्तिक, प्रलम्ब, अंजन, अंजनपुलक।

**सूत्र - ७६३, ७६४**

इन आठ कूटों पर महर्धिक यावत् पल्योपम स्थिति वाली आठ दिशा कुमारियाँ रहती हैं। यथा- नंदुत्तरा, नंदा, आनन्दा, नंदिवर्धना, विजया, वैजयंती, जयंती, अपराजिता।

**सूत्र - ७६५-७६८**

जम्बूद्वीपवर्ती मेरु पर्वत के दक्षिण में रुचकवर पर्वत पर आठ कूट हैं, यथा- कनक, कंचन, पद्म, नलिन, शशि, दीवाकर, वैश्रमण, वैडूर्य।

इन आठ कूटों पर महर्धिक यावत् पल्योपम स्थिति वाली आठ दिशा कुमारियाँ रहती हैं। यथा- समाहारा, सुप्रतिज्ञा, सुप्रबद्धा, यशोधरा, लक्ष्मीवती, शेषवती, चित्रगुप्त, वसुंधरा।

**सूत्र - ७६९, ७७०**

जम्बूद्वीपवर्ती मेरु पर्वत के पश्चिम में रुचकवर पर्वत पर आठ कूट हैं, यथा- स्वस्तिक, अमोघ, हिमवत्, मंदर, रुचक, चक्रोतम, चन्द्र, सुदर्शन।

**सूत्र - ७७१, ७७२**

इन आठ कूटों पर महर्धिक यावत् पल्योपम स्थिति वाली आठ दिशाकुमारियाँ रहती हैं, यथा- इलादेवी, सुरादेवी, पृथ्वी, पद्मावती, एक नासा, नवमिका, सीता, भद्रा।

**सूत्र - ७७३, ७७४**

जम्बूद्वीपवर्ती मेरु पर्वत के उत्तर में रुचकवर पर्वत पर आठ कूट हैं, यथा- रत्न, रत्नोच्चय, सर्वरत्न, रत्नसंचय, विजय, वैजयंत, जयन्त, अपराजित।

**सूत्र - ७७५, ७७६**

इन आठ कूटों पर महर्धिक यावत् पल्योपम स्थिति वाली आठ दिशाकुमारियाँ रहती हैं, यथा- अलंबुसा, मितकेसी, पोंडरी गीत-वारुणी, आशा, सर्वगा, श्री, ह्री।

**सूत्र - ७७७, ७७८**

आठ दिशा कुमारियाँ अधोलोक में रहती हैं, यथा- भोगंकरा, भोगवती, सुभोगा, भोगमालिनी, सुवत्सा, वत्समित्रा, वारिसेना और बलाहका ।

**सूत्र - ७७९, ७८०**

आठ दिशा कुमारियाँ ऊर्ध्वलोक में रहती हैं, यथा- मेघंकरा, मेघवती, सुमेघा, मेघमालिनी, तोयधारा, विचित्र, पुष्पमाला और अनिंदिता ।

**सूत्र - ७८१**

तिर्यंच और मनुष्यों की उत्पत्ति वाले आठ काल (देवलोक) हैं, यथा-सौधर्म यावत् सहस्त्रारेन्द्र । इन आठ कल्पों में आठ इन्द्र हैं, यथा-शक्रेन्द्र यावत् सहस्त्रारेन्द्र ।

इन आठ इन्द्रोंके आठ यान विमान हैं-पालक, पुष्पक, सौमनस, श्रीवत्स, नंदावर्त, कामक्रम, प्रीतिमद, विमल

**सूत्र - ७८२**

अष्ट अष्टमिका भिक्षुपड़िमा का सूत्रानुसार आराधन यावत्-सूत्रानुसार पालन ६४ अहोरात्रि में होता है और उसमें २८८ बार भिक्षा ली जाती है ।

**सूत्र - ७८३**

संसारी जीव आठ प्रकार के हैं, यथा-प्रथम समयोत्पन्न नैरयिक, अप्रथम समयोत्पन्न नैरयिक, यावत्-अप्रथम समयोत्पन्न देव ।

सर्वजीव आठ प्रकार के हैं, यथा-नैरयिक, तिर्यंच योनिक, तिर्यंचनियाँ, मनुष्य, मनुष्यनियाँ, देव, देवियाँ, सिद्ध

अथवा सर्वजीव आठ प्रकार के हैं, यथा-आभिनिबोधिक ज्ञानी, यावत्-केवलज्ञानी, मति अज्ञानी, श्रुत अज्ञानी, विभंग ज्ञानी ।

**सूत्र - ७८४**

संयम आठ प्रकार का है, यथा-प्रथम समय-सूक्ष्म सम्पराय-सराग-संयम, अप्रथम समय-सूक्ष्म संपराय सराग संयम, प्रथम समय-बादर सराग संयम, अप्रथम समय-बादर-सराग-संयम, प्रथम समय-उपशान्त कषाय-वीतराग संयम, अप्रथम समय-उपशान्त कषाय-वीतराग संयम, प्रथम समय-क्षीण कषाय वीतराग संयम और अप्रथम समय-क्षीण कषाय वीतराग संयम ।

**सूत्र - ७८५**

पृथ्वीयाँ आठ कही हैं । रत्नप्रभा यावत् अध:सप्तमी और ईषत्प्राग्भारा । ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी के बहुमध्य देश भाग में आठ योजन प्रमाण क्षेत्र हैं, वह आठ योजन स्थूल हैं ।

ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी के आठ नाम हैं, यथा-ईषत्, ईषत्प्राग्भारा, तनु, तनु तनु, सिद्धि, सिद्धालय, मुक्ति, मुक्तालय ।

**सूत्र - ७८६**

आठ आवश्यक कार्यों के लिए सम्यक् प्रकार के उद्यम, प्रयत्न और पराक्रम करना चाहिए किन्तु इनके लिए प्रमाद नहीं करना चाहिए, यथा-अश्रुत धर्म को सम्यक् प्रकार से सूनने के लिए तत्पर रहना चाहिए । श्रुत धर्म को ग्रहण करने और धारण करने के लिए तत्पर रहना चाहिए । संयम स्वीकार करने के पश्चात् पापकर्म न करने के लिए तत्पर रहना चाहिए । तपश्चर्या से पुराने पाप कर्मों की निर्जरा करने के लिए तथा आत्मशुद्धि के लिए तत्पर रहना चाहिए । निराश्रित-परिजन को आश्रय देने के लिए तत्पर रहना चाहिए । शैक्ष (नवदीक्षित) को आचार और गोचरी विषयक मर्यादा सिखाने के लिए तत्पर रहना चाहिए । ग्लान की ग्लानि रहित सेवा करने के लिए तत्पर रहना चाहिए । साधर्मिकों में कलह उत्पन्न होने पर राग-द्वेष रहित होकर पक्ष ग्रहण किये बिना मध्यस्थ भाव से साधर्मिकों के बोलचाल, कलह और तू-तू मैं-मैं को शान्त करने के लिए प्रयत्न करना चाहिए ।

**सूत्र - ७८७**

महाशुक्र और सहस्रारकल्प में विमान आठसौ योजन के ऊंचे हैं ।

**सूत्र - ७८८**

भगवान अरिष्टनेमिनाथ के आठसौ ऐसे वादि मुनियों की सम्पदा थी जो देव, मनुष्य और असुरों की पर्षदा में किसी से पराजित होने वाले नहीं थे ।

**सूत्र - ७८९**

केवली समुद्घात आठ समय का होता है, यथा-प्रथम समयमें स्वदेह प्रमाण नीचे ऊंचे, लम्बा और पोला चौदह रज्जु (लोक) प्रमाण दण्ड किया जाता है, द्वीतिय समयमें पूर्व और पश्चिममें लोकान्त पर्यन्त कपाट किये जाते हैं, तृतीय समयमें दक्षिण और उत्तरमें लकान्त पर्यन्त मंथन किया जाता है, चतुर्थ समयमें रिक्त स्थानों की पूर्ति करके लोक को पूरित किया जाता है, पाँचवे समय में आंतरों का संहरण किया जाता है, छट्ठे समय में मंथान का संहरण किया जाता है, सातवे समय में कपाट का संहरण किया जाता है, आठवे समय में दण्ड का संहरण किया जाता है ।

**सूत्र - ७९०**

भगवान महावीर के उत्कृष्ट ८०० ऐसे शिष्य थे जिनको कल्याणकारी अनुत्तरोपपातिक देवगति यावत् भविष्य में (भद्र) मोक्ष गति निश्चित है ।

**सूत्र – ७९१-७९३**

वाणव्यन्तर देव आठ प्रकार के हैं, यथा-पिशाच, भूत, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किंपुरुष, महोरग, गंधर्व । इन आठ वाणव्यन्तर देवों के आठ चैत्य वृक्ष हैं, यथा- पिशाचों का कदम्ब वृक्ष, यक्षों का चैत्य वृक्ष, भूतों का तुलसी वृक्ष, राक्षसों का कडक वृक्ष, किन्नरों का अशोकवृक्ष, किंपुरुषों का चंपकवृक्ष, भुजंगों का नागवृक्ष, गंधर्वों का तिंदुक वृक्ष ।

**सूत्र - ७९४**

रत्नप्रभा पृथ्वी के समभूमि भाग से ८०० योजन ऊंचे ऊपर की ओर सूर्य का विमान गति करता है ।

**सूत्र - ७९५**

आठ नक्षत्र चन्द्र के साथ स्पर्श करके गति करते हैं, यथा-कृतिका, रोहिणी, पुनर्वसु, मघा, चित्रा, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा ।

**सूत्र - ७९६**

जम्बूद्वीप के द्वार आठ योजन ऊंचे हैं । सभी द्वीप समुद्रों के द्वार आठ योजन ऊंचे हैं ।

**सूत्र - ७९७**

पुरुष वेदनीय कर्म की जघन्य आठ वर्ष की बन्ध स्थिति है । यशोकीर्त नामकर्म की जघन्य बन्ध स्थिति आठ मुहूर्त्त की है । उच्चगोत्र कर्म की भी इतनी ही है ।

**सूत्र - ७९८**

तेइन्द्रिय की आठ लाख कुल कौड़ी है ।

**सूत्र - ७९९**

जीवों ने आठ स्थानों में निवर्तित-संचित पुद्गल पापकर्म के रूप में चयन किए हैं, चयन करते हैं और चयन करेंगे । यथा-प्रथम समय नैरयिक निवर्तित यावत्-अप्रथम समय देव निवर्तित । इसी प्रकार उपचयन, बन्ध, उदीरणा, वेदना और निर्जरा के तीन तीन दण्डक कहने चाहिए ।

आठ प्रदेशिक स्कन्ध अनन्त हैं । अष्ट प्रदेशावगाढ़ पुद्गल अनन्त हैं । यावत् आठ गुण रूक्ष पुद्गल भी अनन्त हैं ।

## स्थान-८ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

## स्थान-९

**सूत्र - ८००**

नौ प्रकार के सांभोगिक श्रमण निर्ग्रन्थों को विसंभोगी करे तो भगवान की आज्ञा का अतिक्रमण नहीं होता है, यथा–आचार्य के प्रत्यनीक को, उपाध्याय के प्रत्यनीक को, स्थविरों के प्रत्यनीक को, कुल के प्रत्यनीक को, गण के प्रत्यनीक को, संघ के प्रत्यनीक को, ज्ञान के प्रत्यनीक को, दर्शन के प्रत्यनीक को, चारित्र के प्रत्यनीक को ।

**सूत्र - ८०१**

ब्रह्मचर्य (आचारसूत्र के प्रथम श्रुतस्कन्ध) के नौ अध्ययन हैं, यथा–शस्त्र परिज्ञा, लोक विजय यावत्–उपधान श्रुत और महापरिज्ञा ।

**सूत्र - ८०२**

ब्रह्मचर्य की गुप्ति (रक्षा) नौ प्रकार की है, यथा–एकान्त (पृथक्) शयन और आसन का सेवन करना चाहिए, किन्तु स्त्री, पशु और नपुंसक के संसर्ग वाले शयनासन का सेवन नहीं करना चाहिए, स्त्री कथा नहीं कहनी चाहिए, स्त्री के स्थान में निवास नहीं करना चाहिए, स्त्री की मनोहर इन्द्रियों के दर्शन और ध्यान नहीं करना चाहिए, विकार वर्धक रस का आस्वादन नहीं करना चाहिए, आहारादि की अतिमात्रा नहीं लेनी चाहिए, पूर्वानुभूत रति-क्रीड़ा का स्मरण नहीं करना चाहिए, स्त्री के रागजन्य शब्द और रूप की तथा स्त्री की प्रशंसा नहीं सूननी चाहिए, शारीरिक सुखादि में आसक्त नहीं होना चाहिए ।

ब्रह्मचर्य की अगुप्ति नव प्रकार की है, यथा–एकान्त शयन और आसन का सेवन नहीं करे अपितु स्त्री, पशु तथा नपुंसक सेवित शयनासन का उपयोग करे, स्त्री कथा कहे, स्त्री स्थानों का सेवन करे, स्त्रियों की इन्द्रियों का दर्शन यावत् ध्यान करे, विकार वर्धक आहार करे, आहार आदि अधिक मात्रा में सेवन करे, पूर्वानुभूत रतिक्रीड़ा का स्मरण करे, स्त्रियों के शब्द तथा रूप की प्रशंसा करे, शारीरिक सुखादि में आसक्त रहे ।

**सूत्र - ८०३**

अभिनन्दन अरहन्त के पश्चात् सुमतिनाथ अरहन्त नव लाख क्रोड़ सागर के पश्चात् उत्पन्न हुए ।

**सूत्र - ८०४**

शाश्वत पदार्थ नव हैं, यथा–जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध, मोक्ष ।

**सूत्र - ८०५**

संसारी जीव नौ प्रकार के हैं, यथा–पृथ्वीकाय यावत् वनस्पतिकाय, एवं बेइन्द्रिय यावत् पंचेन्द्रिय ।

पृथ्वीकायिक जीवों की नौ गति और नौ आगति । यथा–पृथ्वीकायिक पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न हो तो पृथ्वीकायिकों से यावत् पंचेन्द्रियों से आकर उत्पन्न होते हैं । पृथ्वीकायिक जीव पृथ्वीकायिकपन को छोड़कर पृथ्वीकायिक रूप में यावत् पंचेन्द्रिय रूप में उत्पन्न होते हैं । इसी प्रकार अप्कायिक जीव–यावत् पंचेन्द्रिय जीव उत्पन्न होते हैं ।

सर्व जीव नौ प्रकार के हैं, यथा–एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय, नैरयिक, तिर्यंचपंचेन्द्रिय, मनुष्य, देव, सिद्ध । अथवा सर्व जीव नौ प्रकार के हैं, यथा–प्रथम समयोत्पन्न नैरयिक, अप्रथमसमयोत्पन्न नैरयिक यावत् अप्रथम समयोत्पन्न देव और सिद्ध ।

सर्व जीवों की अवगाहना नौ प्रकार की है, यथा–पृथ्वीकायिक जीवों की अवगाहना, अप्कायिक जीवों की अवगाहना, यावत् वनस्पतिकायिक जीवों की अवगाहना, बेइन्द्रिय जीवों की अवगाहना, तेइन्द्रिय जीवों की अव-गाहना, चउरिन्द्रिय जीवों की अवगाहना और पंचेन्द्रिय जीवों की अवगाहना ।

संसारी जीव नौ प्रकार के थे, हैं और रहेंगे । यथा–पृथ्वीकायिक रूप में यावत् पंचेन्द्रिय रूप में ।

**सूत्र - ८०६**

नौ कारणों से रोगोत्पत्ति होती है, यथा–अति आहार करने से, अहितकारी आहार करने से, अति निद्रा लेने से,

अति जागने से, मल का वेग रोकने से, मूत्र का वेग रोकने से, अति चलने से, प्रतिकूल भोजन करने से, कामवेग को रोकने से ।

**सूत्र - ८०७**

दर्शनावरणीय कर्म नौ प्रकार का है, यथा–निद्रा, निद्रा-निद्रा, प्रचला, प्रचला-प्रचला, स्त्यानगृद्धी, चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण, केवलदर्शनावरण ।

**सूत्र - ८०८**

अभिजित् नक्षत्र कुछ अधिक नौ मुहूर्त्त चन्द्र के साथ योग करते हैं ।

अभिजित् आदि नौ नक्षत्र चन्द्र के साथ उत्तर से योग करते हैं, यथा–अभिजित्, श्रवण, धनिष्ठा, यावत् भरणी

**सूत्र - ८०९**

इस रत्नप्रभा पृथ्वी के सम भूभाग से नवसौ योजन की ऊंचाई पर ऊपर का तारामण्डल गति करता है ।

**सूत्र - ८१०**

जम्बूद्वीप में नौ योजन के मच्छ प्रवेश करते थे, करते हैं और करेंगे ।

**सूत्र – ८११, ८१२**

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में, इस अवसर्पिणी में ये नौ बलदेव और नौ वासुदेव के पिता थे । यथा– प्रजापती, ब्रह्म, रुद्र, सोम, शिव, महासिंह, अग्निसिंह, दशरथ और वासुदेव ।

**सूत्र - ८१३**

यहाँ से आगे समवायांग सूत्र के अनुसार यावत् एक नवमा बलदेव ब्रह्मलोक कल्प से च्यवकर एक भव करके मोक्ष में जावेंगे–पर्यन्त कहना चाहिए । जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में आगामी उत्सर्पिणी में नौ बलदेव और नौ वासुदेव के पिता होंगे, माताएं होंगी–शेष समवायाङ्ग के अनुसार यावत्–महा भीमसेन सुग्रीव पर्यन्त कहना चाहिए।

**सूत्र - ८१४**

कीर्तिमान् वासुदेवों के शत्रु प्रतिवासुदेव जो सभी चक्र से युद्ध करने वाले हैं और स्वचक्र से ही मरने वाले हैं

**सूत्र – ८१५, ८१६**

प्रत्येक चक्रवर्ती की नौ महानिधियाँ हैं, और प्रत्येक महानिधि नौ नौ योजन की चौड़ी हैं । यथा– नैसर्प, पाँडुक, पिंगल, सर्वरत्न, महापद्म, काल, महाकाल, माणवक और शंख ।

**सूत्र - ८१७**

नैसर्प महानिधि–इनके प्रभाव से निवेश, ग्राम, आकर, नगर, पट्टण, द्रोणमुख, मडंब, स्कंधावार और घरों का निर्माण होता है ।

**सूत्र - ८१८**

पांडुक महानिधि-इसके प्रभाव से गिनने योग्य वस्तुएं तथा–मोहर आदि सिक्के, मापने योग्य वस्तुएं वस्त्र आदि, तोलने योग्य वस्तुएं-धान्य आदि की उत्पत्ति होती है ।

**सूत्र - ८१९**

पिंगल महानिधि-इसके प्रभाव से पुरुषों, स्त्रियों, हाथियों या घोड़ों के आभूषणों की उत्पत्ति होती है ।

**सूत्र - ८२०**

सर्वरत्न महानिधि-इसके प्रभाव से चौदह रत्नों की उत्पत्ति होती है ।

**सूत्र - ८२१**

महापद्म महानिधि-इसके प्रभाव से सर्व प्रकार के रंगे हुए या श्वेत वस्त्रों की उत्पत्ति होती है ।

**सूत्र - ८२२**

काल महानिधि–काल, शिल्प, कृषि का ज्ञान उत्पन्न होता है ।

**सूत्र - ८२३**

महाकाल महानिधि-इसके प्रभाव से लोहा, चाँदी, सोना, मणी, मोती, स्फटिकशिला और प्रवाल आदि के खानों की उत्पत्ति होती है ।

**सूत्र - ८२४**

माणवक महानिधि-इसके प्रभाव से योद्धा, शस्त्र, बख्तर, युद्धनीति और दंडनीति की उत्पत्ति होती है ।

**सूत्र - ८२५**

शंख महानिधि-इसके प्रभाव से नाट्यविधि, नाटकविधि और चार प्रकार के काव्यों की तथा मृदंगादि वाद्यों की उत्पत्ति होती है ।

**सूत्र - ८२६**

ये नौ महानिधियाँ आठ-आठ चक्र पर प्रतिष्ठित हैं-आठ-आठ योजन ऊंची हैं, नौ नौ योजन के चौड़े हैं और बारह योजन लम्बे हैं, इनका आकार पेटी के समान है । ये सब गंगा नदी के आगे स्थित हैं ।

**सूत्र - ८२७**

ये स्वर्ण के बने हुए और वैडूर्यमणि के द्वार वाले हैं, अनेक रत्नों से परिपूर्ण हैं । इन सब पर चन्द्र-सूर्य के समान गोल चक्र के चिन्ह हैं ।

**सूत्र - ८२८**

इन निधियों के नाम वाले तथा पल्यस्थिति वाले देवता इन निधियों के अधिपति हैं ।

**सूत्र - ८२९**

किन्तु इन निधियों से उत्पन्न वस्तुएं देने का अधिकार नहीं है, ये सभी महानिधियाँ चक्रवर्ती के अधीन होती हैं

**सूत्र - ८३०**

विकृतियाँ (विकार के हेतुभूत) नौ प्रकार की हैं, यथा–दूध, दहीं, मक्खन, घृत, तेल, गुड़, मधु, मद्य, माँस ।

**सूत्र - ८३१**

औदारिक शरीर के नौ छिद्रों से मल नीकलता है, यथा–दो कान, दो नेत्र, दो नाक, मुख, मूत्रस्थान, गुदा ।

**सूत्र - ८३२**

पुण्य नौ प्रकार के होते हैं, अन्नपुण्य, पानपुण्य, लयनपुण्य, शयनपुण्य, वस्त्रपुण्य, मनपुण्य, वचनपुण्य, कायापुण्य, नमस्कारपुण्य ।

**सूत्र - ८३३**

पाप के स्थान नौ प्रकार के हैं, यथा–प्राणातिपात, मृषावाद यावत् परिग्रह और क्रोध, मान, माया और लोभ।

**सूत्र - ८३४**

पाप श्रुत नौ प्रकार के हैं, यथा–

**सूत्र - ८३५**

उत्पात, निमित्त, मंत्र, आख्यायक, चिकित्सा, कला, आकरण, अज्ञान, मिथ्याप्रवचन ।

**सूत्र - ८३६**

नैपुणिक वस्तु नौ हैं, यथा–संख्यान-गणित में निपुण, निमित्त–त्रैकालिक शुभाशुभ बताने वाले ग्रन्थों में निपुण, कायिक–स्वर शास्त्रों में निपुण, पुराण–अठारह पुराणों में निपुण, परहस्तक–सर्व कार्य में निपुण, प्रकृष्ट पंडित–अनेक शास्त्रों में निपुण, वादी–वाद में निपुण, भूति कर्म–मंत्र शास्त्रों में निपुण, चिकित्सक–चिकित्सा करने में निपुण ।

**सूत्र - ८३७**

भगवान महावीर के नौ गण थे, यथा–गोदास गण, उत्तर बलिस्सह गण, उद्देह गण, चारण गण, उर्ध्ववातिक गण, विश्ववादी गण, कामार्द्धिक गण, मानव गण और कोटिक गण ।

**सूत्र - ८३८**

श्रमण भगवान महावीर ने श्रमण निर्ग्रन्थों की नव कोटि शुद्ध भिक्षा कही है, यथा–स्वयं जीवों की हिंसा नहीं करता है, दूसरों से हिंसा नहीं करवाता है, हिंसा करने वालों का अनुमोदन नहीं करता है, स्वयं अन्नादि को पकाता नहीं है, दूसरों से पकवाता नहीं है, पकाने वालों का अनुमोदन नहीं करता है, स्वयं आहारादि खरीदता नहीं है, दूसरों से खरीदवाता नहीं है, खरीदने वालों का अनुमोदन नहीं करता है ।

**सूत्र - ८३९**

ईशानेन्द्र के वरुण लोकपाल की नौ अग्रमहिषियाँ हैं ।

**सूत्र – ८४०-८४२**

ईशानेन्द्र की अग्रमहिषियों की स्थिति नव पल्योपम की है । ईशान कोण में देवियों की उत्कृष्ट स्थिति नव पल्योपम की है । नौ देव निकाय हैं, यथा– सारस्वत, आदित्य, वन्हि, वरुण, गर्दतोय, तुषित, अव्याबाध, आग्नेय, रिष्ट ।

**सूत्र - ८४३**

अव्याबाध देवों के नवसौ नौ देवों का परिवार है, इसी प्रकार अगिच्चा और रिट्ठा देवों का परिवार है ।

**सूत्र - ८४४**

नौ ग्रैवेयक विमान प्रस्तट (प्रतर) हैं, यथा–अधस्तन अधस्तन ग्रैवेयक विमान प्रस्तट, अधस्तन मध्यम ग्रैवेयक विमान प्रस्तट, अधस्तन उपरितन ग्रैवेयक विमान प्रस्तट, मध्यम अधस्तन ग्रैवेयक विमान प्रस्तट, मध्यम मध्यम ग्रैवेयक विमान प्रस्तट, मध्यम उपरितन ग्रैवेयक विमान प्रस्तट, उपरितन अधस्तन ग्रैवेयक विमान प्रस्तट, उपरितन मध्यम ग्रैवेयक विमान प्रस्तट, उपरितन उपरितन ग्रैवेयक विमान प्रस्तट ।

**सूत्र - ८४५**

नव ग्रैवेयक विमान प्रस्तटों के नौ नाम हैं, यथा–भद्र, सुभद्र, सुजात, सौमनस, प्रियदर्शन, सुदर्शन, अमोघ, सुप्रबुद्ध और यशोधर ।

**सूत्र - ८४६**

आयु परिणाम नौ प्रकार का है, यथा–गति परिणाम, गतिबंधणपरिणाम, स्थितिपरिणाम, स्थितिबंधण-परिणाम, उर्ध्वगोरवपरिणाम, अधोगोरवपरिणाम, तिर्यग्गोरव परिणाम, दीर्घ गोरवपरिणाम और ह्रस्व गोरव परिणाम

**सूत्र - ८४७**

नव नवमिका भिक्षा प्रतिमा का सूत्रानुसार आराधन यावत् पालन इक्यासी रात दिन में होता है, इस प्रतिमा में ४०५ बार भिक्षा (दत्ति) ली जाती है ।

**सूत्र - ८४८**

प्रायश्चित्त नौ प्रकार का है, यथा–आलोचनार्ह–गुरु के समक्ष आलोचना करने से जो पाप छूटे, यावत् मूलार्ह – (पुनः दीक्षा देने योग्य) और अनवस्थाप्यार्ह–

अत्यन्त संक्लिष्ट परिणाम वाले को इस प्रकार के तप का प्रायश्चित्त दिया जाता है । जिससे कि वह उठ बैठ नहीं सके । तप पूर्ण होने पर उपस्थापना (पुनः महाव्रतारोपणा) की जाती है और यह तप जहाँ तक किया जाता है वहाँ तक तप करने वाले से कोई बात नहीं करता ।

**सूत्र – ८४९, ८५०**

जम्बूद्वीप के मेरु से दक्षिण दिशा के भरत में दीर्घवैताढ्य पर्वत पर नौ कूट हैं, यथा– सिद्ध, भरत, खण्डप्रपातकूट, मणिभद्र, वैताढ्य, पूर्णभद्र, तिमिश्रगुहा, भरत और वैश्रमण ।

**सूत्र – ८५१, ८५२**

जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत से दक्षिण दिशा में निषध वर्षधर पर्वत पर नौ कूट हैं, यथा– सिद्ध, निषध, हरिवर्ष, विदेह, हरि, धृति, शीतोदा, अपरविदेह, रुचक ।

**सूत्र - ८५३**

जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत पर नन्दनवन में नौ कूट हैं, यथा–

**सूत्र - ८५४**

नंदन, मेरु, निषध, हैमवन्त, रजत, रुचक, सागरचित, वज्र, बलकूट ।

**सूत्र - ८५५**

जम्बूद्वीप के माल्यवंत वक्षस्कार पर्वत पर नौ कूट हैं, यथा–

**सूत्र - ८५६**

सिद्ध, माल्यवंत, उत्तरकुरु, कच्छ, सागर, रजत, सीता, पूर्ण, हरिस्सहकूट ।

**सूत्र - ८५७**

जम्बूद्वीप के कच्छ विजय में दीर्घ वेताढ्यपर्वत पर नौ कूट हैं, यथा–

**सूत्र - ८५८**

सिद्ध, कच्छ, खण्डप्रपात, माणिभद्र, वैताढ्य, पूर्णभद्र, तिमिस्रगुहा, कच्छ और वैश्रमण ।

**सूत्र - ८५९**

जम्बूद्वीप के सुकच्छ विजय में दीर्घ वैताढ्य पर्वत पर नौ कूट हैं । यथा–

**सूत्र - ८६०**

सिद्ध, सुकच्छ, खण्डप्रपात, माणिभद्र, वैताढ्य, पूर्णभद्र, तिमिस्रगुहा, सुकच्छ और वैश्रमण ।

**सूत्र - ८६१**

इसी प्रकार पुष्कलावती विजय में दीर्घ वैताढ्य पर्वत पर नौ कूट हैं ।

इसी प्रकार वच्छ विजय में दीर्घ वैताढ्य पर्वत पर नौ कूट हैं यावत्–मंगलावती विजय में दीर्घ वैताढ्य पर्वत पर नौ कूट हैं ।

जम्बूद्वीप के विद्युत्प्रभ वक्षस्कार पर्वत पर नौ कूट हैं, यथा–

**सूत्र - ८६२**

सिद्ध, विद्युत्प्रभ, देवकुरु, पद्मप्रभ, कनकप्रभ, श्रावस्ती, शीतोदा, सजल और हरीकूट ।

**सूत्र - ८६३**

जम्बूद्वीप के पक्ष्मविजय में दीर्घ वैताढ्यपर्वत पर नौ कूट हैं, यथा–सिद्ध कूट, पक्ष्मकूट, खण्डप्रपात, माणिभद्र, वैताढ्य, पूर्णभद्र, तिमिश्रगुहा, पक्ष्मकूट, वैश्रमण कूट । इसी प्रकार यावत् सलिलावती विजय में दीर्घ वैताढ्य पर्वत पर नौ कूट हैं । इसी प्रकार वप्रविजय में दीर्घ वैताढ्य पर्वत पर नौ कूट हैं । इसी प्रकार यावत्–गंधिलावती विजय में दीर्घ वैताढ्य पर्वत पर नौ कूट हैं, यथा–

**सूत्र - ८६४**

सिद्धकूट, गंधिलावती, खण्डप्रपात, माणिभद्र, वैताढ्य, पूर्णभद्र, तिमिश्रगुहा, गंधिलावती और वैश्रमण ।

**सूत्र - ८६५**

इस प्रकार सभी दीर्घ वैताढ्य पर्वतों पर दूसरा और नवमा कूट समान नाम वाले हैं शेष कूटों के समान पूर्ववत् हैं । जम्बूद्वीप में मेरु पर्वत की उत्तरदिशा में नीलवान वर्षधर पर्वत पर नौ कूट हैं, यथा–

**सूत्र - ८६६**

सिद्धकूट, नीलवानकूट, विदेह, शीता, कीर्ति, नारीकान्ता, अपरविदेह, रम्यक्कूट और उपदर्शनकूट ।

**सूत्र – ८६७, ८६८**

जम्बूद्वीप में मेरु पर्वत पर उत्तर दिशा में ऐरवत क्षेत्र में दीर्घ वैताढ्य पर्वत पर नौ कूट हैं, यथा–सिद्ध, रत्न, खण्डप्रपात, माणिभद्र, वैताढ्य, पूर्णभद्र, तिमिश्रगुहा, ऐरवत और वैश्रमण ।

**सूत्र - ८६९**

भगवान पार्श्वनाथ पुरुषों में आदेयनामकर्म वज्रऋषभनाराच संघयण और समचतुरस्र संस्थान वाले थे तथा नौ हाथ के ऊंचे थे ।

**सूत्र - ८७०**

भगवान महावीर के तीर्थ में नौ जीवों ने तीर्थंकरगोत्र नामकर्म का उपार्जन किया, श्रेणिक, सुपार्श्व, उदायन, पोटिलमुनि, दृढ़ायु, शंख, शतक, सुलसा, रेवती ।

**सूत्र - ८७१**

आर्य कृष्णवासुदेव, राम बलदेव, उदक पेढालपुत्र, पोटिलमुनि, शतक गाथापति, दारूक निर्ग्रन्थ, सत्यकी निर्ग्रन्थीपुत्र, सुलसा श्राविका से प्रतिबोधिक अम्बड़ परिव्राजक, भगवंत पार्श्वनाथ की प्रशिष्या सुपार्श्वा आर्या । ये आगामी उत्सर्पिणी में चारयाम धर्म की प्ररूपणा करके सिद्ध होंगे यावत्-सब दुःखों का अन्त करेंगे ।

**सूत्र - ८७२**

हे आर्य ! यह श्रेणिक राजा मरकर इस रत्नप्रभा पृथ्वी के सीमंतक नरकावास में चौरासी हजार वर्ष की नारकीय स्थिति वाले नैरयिक के रूप में उत्पन्न होगा और अति तीव्र यावत्-असह्य वेदना भोगेगा । यह उस नरक से नीकलकर आगामी उत्सर्पिणी में इसी जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में वैताढ्यपर्वत के समीप पुण्ड्र जनपद के शतद्वार नगर में संमति कुलकर की भद्रा भार्या की कुक्षी में पुत्र रूप में उत्पन्न होगा । नौ मास और साढ़े सात अहोरात्र बीतने पर सुकुमार हाथ-पैर, प्रतिपूर्ण पंचेन्द्रिय शरीर और उत्तम लक्षण तिलसम युक्त यावत्-रूपवान पुत्र पैदा होगा ।

जिस रात्रि में यह पुत्र रूप में पैदा होगा उस रात्रि में शतद्वार नगर के अन्दर और बाहर भाराग्र तथा कुम्भाग्र प्रमाण पद्म एवं रत्नों की वर्षा बरसेगी । पश्चात् उसके माता-पिता इग्यारवाँ दिन बीतने पर यावत्-बारहवें दिन उसका गुणसम्पन्न नाम देंगे । क्योंकि इनका जन्म होने पर शतद्वार नगर के अन्दर और बाहर भार एवं कुम्भ प्रमाण पद्म एवं रत्नों की वर्षा होने से इस पुत्र का महापद्म नाम देंगे ।

पश्चात् महापद्म के माता-पिता महापद्म को कुछ अधिक आठ वर्ष का हुआ जानकर राज्याभिषेक का महोत्सव करेंगे । पश्चात् वह राजा महाराजा के समान यावत्-राज्य करेगा । उसके राज्यकाल में पूर्णभद्र और महाभद्र नाम के दो देव महर्द्धिक यावत्-महान ऐश्वर्य वाले उनकी सेना का संचालन करेंगे । उस समय शतद्वार नगर के बहुत से राजा यावत्-सार्थवाह आदि परस्पर बातें करेंगे-हे देवानुप्रियो ! हमारे महापद्म राजा की सेना का संचालन महर्द्धिक यावत्-महान ऐश्वर्य वाले दो देव (पूर्णभद्र और मणिभद्र) करते हैं इसलिए इनका दूसरा नाम 'देवसेन' हो । उस समय से महापद्म का दूसरा नाम देवसेन भी होगा ।

कुछ समय पश्चात् उस देवसेना राजा को शंखतल जैसा निर्मल, श्वेत, चार दाँत वाला हस्तिरत्न प्राप्त होगा। वह देवसेन राजा उस हस्तिरत्न पर आरूढ़ होकर शतद्वार नगर के मध्यभाग में से बार-बार आव-जाव करेगा । उस समय शतद्वार नगर के बहुत से राजेश्वर यावत्-सार्थवाह आदि परस्पर बातें करेंगे । यथा-हे देवानुप्रियो ! हमारे देवसेन राजा को शंखतल जैसा निर्मल श्वेत चार दाँत वाला हस्तिरत्न प्राप्त हुआ है, इसलिए हमारे देवसेन राजा का तीसरा नाम 'विमलवाहन' हो ।

पश्चात् वह विमलवाहन राजा तीस वर्ष गृहस्थावास में रहेगा और माता-पिता के स्वर्गवासी होने पर गुरुजनों की आज्ञा लेकर शरद् ऋतु में स्वयं बोध को प्राप्त होगा तथा अनुत्तर मोक्ष मार्ग में प्रस्थान करेगा । उस समय लोकान्तिक देव इष्ट यावत्-कल्याणकारी वाणी से उनका अभिनन्दन एवं स्तुति करेंगे । नगर के बाहर सूभूमि भाग उद्यान में एक देवदूष्य वस्त्र ग्रहण करके वह प्रव्रज्या लेगा ।

शरीर का ममत्व न रखने वाले उन भगवान को कुछ अधिक बारह वर्ष तक देव, मनुष्य और तिर्यंच सम्बन्धी जो उपसर्ग उत्पन्न होंगे वे समभाव से सहन करेंगे यावत्-अकम्पित रहेंगे । पश्चात् वे विमलवाहन भगवान ईर्यासमिति, भाषासमिति का पालन करेंगे यावत्-ब्रह्मचर्य का पालन करेंगे । वे निर्मम निष्परिग्रही कांस्यपात्र के समान अलिप्त

होंगे यावत्–कहे गए भगवान महावीर के वर्णन के समान कहें । वे विमलवाहन भगवान–

**सूत्र - ८७३**

कांस्यपात्र के समान अलिप्त, शंख के समान निर्मल, जीव के समान अप्रतिहत गति, गगन के समान आलम्बन रहित, वायु के समान अप्रतिबद्ध विहारी, शरद ऋतु के जल के समान स्वच्छ हृदय वाले, पद्मपत्र के समान अलिप्त, कूर्म के समान गुप्तेन्द्रिय, पक्षी के समान एकाकी, गेंडा के सींग के समान एकाकी, भारंड पक्षी के समान अप्रमत्त, हाथी के समान धैर्यवान । यथा–

**सूत्र - ८७४**

वृषभ के समान बलवान, सिंह के समान दुर्धर्ष, मेरु के समान निश्चल, समुद्र के समान गम्भीर, चन्द्र के समान शीतल, सूर्य के समान उज्ज्वल, शुद्ध स्वर्ण के समान सुन्दर, पृथ्वी के समान सहिष्णु, आहुति के समान प्रदीप्त अग्नि के समान ज्ञानादि गुणों से तेजस्वी होंगे ।

**सूत्र - ८७५**

उन विमलवाहन भगावन का किसी में प्रतिबंध (ममत्व) नहीं होगा । प्रतिबंध चार प्रकार के हैं, यथा–अण्डज, पोतज, अवग्रहिक, प्रग्रहिक । ये अण्डज–हंस आदि मेरे हैं, ये पोतज–हाथी आदि मेरे हैं, ये अवग्रहिक–मकान, पाट, फलक आदि मेरे हैं । ये प्रग्रहिक–पात्र आदि मेरे हैं । ऐसा ममत्वभाव नहीं होगा ।

वे विमलवाहन भगवान जिस-जिस दिशा में विचरना चाहेंगे उस-उस दिशा में स्वेच्छापूर्वक शुद्ध भाव से, गर्वरहित तथा सर्वथा ममत्व रहित होकर संयम से आत्मा को पवित्र करते हुए विचरेंगे । उन विमलवाहन भगवान को ज्ञान, दर्शन, चारित्र, वसति और विहार की उत्कृष्ट आराधना करने से सरलता, मृदुता, लघुता, क्षमा, निर्लोभता, मन, वचन, काया की गुप्ति, सत्य, संयम, तप, शौच और निर्वाण मार्ग की विवेकपूर्वक आराधना करने से शुक्ल-ध्यान ध्याते हुए अनन्त, सर्वोत्कृष्ट बाधा रहित यावत्–केवल ज्ञान-दर्शन उत्पन्न होगा तब वे भगवान अर्हन्त एवं जिन होंगे ।

केवलज्ञान–दर्शन से वे देव, मनुष्यों एवं असुरों से परिपूर्ण लोक के समस्त पर्यायों को देखेंगे । सम्पूर्ण लोक के सभी जीवों की आगति, गति, स्थिति, च्यवन, उपपात, तर्क, मानसिक भाव, मुक्त, कृत, सेवित प्रगट कर्मों और गुप्त कर्मों को जानेंगे अर्थात् उनसे कोई कार्य छिपा नहीं रहेगा । वे पूज्य भगवान सम्पूर्ण लोक में उस समय के मन, वचन और कायिक योग में वर्तमान सर्व जीवों के सर्व भावों को देखते हुए विचरेंगे । उस समय वे भगवान केवलज्ञान, केवल दर्शन से समस्त लोक को जानकर श्रमण निर्ग्रन्थों के पच्चीस भावना सहित पाँच महाव्रतों का तथा छ जीवनिकाय धर्म का उपदेश देंगे ।

हे आर्यो ! जिस प्रकार मैंने श्रमण निर्ग्रन्थों का एक आरम्भ स्थान कहा है उसी प्रकार महापद्म अर्हन्त भी श्रमण निर्ग्रन्थों का एक आरम्भ स्थान कहेंगे ।

हे आर्यो ! जिस प्रकार मैंने श्रमण निर्ग्रन्थों के दो बन्धन कहे हैं उसी प्रकार महापद्म अर्हन्त भी श्रमण निर्ग्रन्थों के दो बन्धन कहेंगे, यथा–राग बन्धन और द्वेष बन्धन ।

हे आर्यो ! जिस प्रकार मैंने श्रमण निर्ग्रन्थों के तीन दण्ड कहे हैं, उसी प्रकार महापद्म अर्हन्त भी श्रमण निर्ग्रन्थों के तीन दण्ड कहेंगे, यथा–मनदण्ड, वचनदण्ड और कायदण्ड ।

इस प्रकार चार कषाय, पाँच कामगुण, छ जीवनिकाय, सात भयस्थान, आठ मदस्थान, नौ ब्रह्मचर्य गुप्ति, दश श्रमणधर्म यावत् तैंतीस आशातना पर्यन्त कहें ।

हे आर्यो ! जिस प्रकार मैंने श्रमण निर्ग्रन्थों का नग्नभाव, मुण्डभाव, अस्नान, अदन्तधावन, छत्ररहित रहना जूते न पहनना, भू-शय्या, फलक शय्या, काष्ठ शय्या, केश लोच, ब्रह्मचर्य पालन, गृहस्थ के घर से आहार आदि लेना, मान-अपमान में समान रहना आदि की प्ररूपणा करेंगे ।

हे आर्यो ! मैंने श्रमण निर्ग्रन्थों को आधाकर्म, औद्देशिक, मिश्रजात, अध्यवपूर्वक, पूतिक, क्रीत, अप-मित्यक, आच्छेद्य, अनिसृष्ट, अभ्याहृत, कान्तारभक्त, दुर्भिक्षभक्त, ग्लानभक्त, वछलिका भक्त, प्राधूर्णक, मूल-भोजन,

कन्दभोजन, फलभोजन, बीजभोजन, हरितभोजन लेने का निषेध किया है उसी प्रकार महापद्म अर्हन्त भी श्रमण निर्ग्रन्थों को आधा कर्म यावत्–हरित भोजन लेने का निषेध करेंगे ।

हे आर्यो ! जिस प्रकार मैंने श्रमण निर्ग्रन्थों का प्रतिक्रमण सहित पंच महाव्रत अचेलक धर्म कहा है इसी प्रकार महापद्म अर्हन्त भी श्रमण निर्ग्रन्थों का प्रतिक्रमण सहित यावत् अचेलक धर्म कहेंगे ।

हे आर्यो ! जिस प्रकार मैंने पाँच अणुव्रत और सात शिक्षाव्रत रूप बारह प्रकार का श्रावक धर्म कहा है, उसी प्रकार महापद्म अर्हन्त भी पाँच अणुव्रत यावत् श्रावक धर्म कहेंगे ।

हे आर्यो ! जिस प्रकार मैंने श्रमण निर्ग्रन्थों को शय्यातर पिंड और राजपिंड लेने का निषेध किया है उसी प्रकार महापद्म अर्हन्त भी श्रमण निर्ग्रन्थों को शय्यातर पिंड और राजपिंड लेने का निषेध करेंगे ।

हे आर्यो ! जिस प्रकार मेरे नौ गण और इग्यारह गणधर हैं, उसी प्रकार महापद्म अर्हन्त के भी नौ गण और इग्यारह गणधर होंगे ।

हे आर्यो ! जिस प्रकार मैं तीस वर्ष गृहस्थ पर्याय में रहकर मुण्डित यावत् प्रव्रजित हुआ, बारह वर्ष और तेरह पक्ष न्यून तीस वर्ष का केवली पर्याय, बयालीस वर्ष का श्रमण पर्याय और बहत्तर वर्ष का पूर्णायु भोगकर सिद्ध होऊंग यावत् सब दुःखों का अन्त करूँगा इसी प्रकार महापद्म अर्हन्त भी तीस वर्ष गृहस्थावास में रहकर यावत् सब दुःखों का अन्त करेंगे ।

**सूत्र - ८७६**

जो शील समाचार (कार्यकलाप) अर्हन् तीर्थंकर महावीर का था वह शील समाचार महापद्म अर्हन्त का होगा

**सूत्र - ८७७**

नौ नक्षत्र चन्द्र के पीछे से गति करते हैं, यथा–

**सूत्र - ८७८**

अभिजित्, श्रवण, धनिष्ठा, रेवती, अश्विनी, मृगशिरा, पुष्य, हस्त, चित्रा ।

**सूत्र - ८७९**

आणत, प्राणत, आरण और अच्युत कल्प में विमान नौ सौ योजन ऊंचे हैं ।

**सूत्र - ८८०**

विमलवाहन कुलकर नौ धनुष के ऊंचे थे ।

**सूत्र - ८८१**

कौशलिक भगवान ऋषभदेव न इस अवसर्पिणी में नौ क्रोड़ाक्रोड़ सागरोपम काल बीतने पर तीर्थ प्रवर्ताया।

**सूत्र - ८८२**

धनदन्त, लष्टदन्त, गूढ़दन्त और शुद्धदन्त इन अन्तर्द्वीपवासी मनुष्यों के द्वीप नौ-सौ नौ-सौ योजन के लम्बे और चौड़े कहे गए हैं ।

**सूत्र - ८८३**

शुक्र महाग्रह की नौ विथियाँ हैं, यथा–हयवीथी, गजवीथी, नागवीथी, वृषभवीथी, गोवीथी, उरगवीथी, अजवीथी, मित्रवीथी, वैश्वानरवीथी ।

**सूत्र - ८८४**

नौ कषाय वेदनीय कर्म नौ प्रकार का है, यथा–स्त्री वेद, पुरुष वेद, नपुंसक वेद, हास्य, रति, अरति, भय, शोक और दुगुंछा ।

**सूत्र - ८८५**

चतुरिन्द्रिय जीवों की नौ लाख कुल कोड़ी हैं । भुजपरिसर्प स्थलचर तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीवों की नौ लाख कुल कोड़ी हैं ।

**सूत्र - ८८६**

नौ स्थानों में संचित पुद्‌गलों को जीवों ने पापकर्म के रूप में चयन किया था, करते हैं और करेंगे । यथा–पृथ्वीकायिक जीवों द्वारा संचित यावत्–पंचेन्द्रिय जीवों द्वारा संचित । इसी प्रकार चय, उपचय यावत् निर्जरा सम्बन्धी सूत्र कहने चाहिए ।

**सूत्र - ८८७**

नौ प्रदेशिक स्कन्ध अनन्त कहे गए हैं, नव प्रदेशावगाढ़ पुद्‌गल अनन्त कहे गए हैं–यावत् नवगुण रूक्ष पुद्‌गल अनन्त कहे गए हैं ।

## स्थान–९ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

## स्थान-१०

**सूत्र - ८८८**

लोक स्थिति दस प्रकार की है, यथा-जीव मरकर बार-बार लोक में ही उत्पन्न होते हैं। जीव सदा पापकर्म करते हैं। जीव सदा मोहनीय कर्म का बन्ध करते हैं। तीन काल में जीव अजीव नहीं होते हैं और अजीव जीव नहीं होते हैं। तीन काल में त्रसप्राणी और स्थावर प्राणी विच्छिन्न नहीं होते हैं। तीन काल में लोक अलोक नहीं होता है और अलोक लोक नहीं होता है। तीन काल में लोक अलोक में प्रविष्ट नहीं होता है और अलोक लोक में प्रविष्ट नहीं होता है। जहाँ तक लोक है वहाँ तक जीव है और जहाँ तक जीव है वहाँ तक लोक है। जहाँ तक जीवों और पुद्गलों की गति है वहाँ तक लोक है, जहाँ तक लोक है वहाँ तक जीवों और पुद्गलों की गति है। लोकान्त में सर्वत्र रूक्ष पुद्गल हैं अतः जीव और पुद्गल लोकान्त के बाहर गमन नहीं कर सकते हैं।

**सूत्र - ८८९, ८९०**

शब्द दस प्रकार के हैं, यथा- नीर्हारी-घन्टा के समान घोष वाला शब्द। डिंडिम-ढोल के समान घोष रहित शब्द। रूक्ष-काक के समान रूक्ष शब्द। भिन्न-कुष्टादिरोग से पीड़ित रोगी के समान शब्द। जर्जरित-वीणा के समान शब्द। दीर्घ-दीर्घ अक्षर के उच्चारण से होने वाला शब्द। ह्रस्व-ह्रस्व अक्षर के उच्चारण से होने वाला शब्द। पृथक्त्व-अनेक प्रकार के वाद्यों का एक समवेत स्वर। काकणी-कोयल के समान सूक्ष्म कण्ठ से नीकलने वाला शब्द। किंकिणी-छोटी-छोटी घंटियों से नीकलने वाला शब्द।

**सूत्र - ८९१**

इन्द्रियों के दश विषय अतीत काल के हैं, यथा-अतीत में एक व्यक्ति ने एक देश से शब्द सूना। अतीत में एक व्यक्ति ने सर्व देश से शब्द सूना। इसी प्रकार रूप, रस, गंध और स्पर्श के दो-दो भेद हैं।

इन्द्रियों के दश विषय वर्तमान काल के हैं, यथा-वर्तमान में एक व्यक्ति एक देश से शब्द सूनता है। वर्तमान में एक व्यक्ति सर्व देश से शब्द सूनता है। इसी प्रकार रूप, रस, गंध और स्पर्श के दो-दो भेद हैं।

इन्द्रियों के दश विषय भविष्यकाल के हैं, यथा-भविष्य में एक व्यक्ति एक देश से सूनेगा। भविष्य में एक व्यक्ति सर्व देश से सूनेगा। इसी प्रकार रूप, रस, गंध और स्पर्श के दो-दो भेद हैं।

**सूत्र - ८९२**

शरीर अथवा स्कंध से पृथक् न हुए पुद्गल दश प्रकार से चलित होते हैं, यथा-आहार करते हुए पुद्गल चलित होते हैं। रस रूप में परिणत होते हुए पुद्गल चलित होते हैं। उच्छ्वास लेते समय वायु के पुद्गल चलित होते हैं। निःश्वास लेते समय वायु के पुद्गल चलित होते हैं। वेदना भोगते समय पुद्गल चलित होते हैं। निर्जरित पुद्गल चलित होते हैं। वैक्रियशरीर रूपमें परिणत पुद्गल चलित होते हैं। मैथुनसेवन के समय शुक्र पुद्गल चलित होते हैं यक्षाविष्ट पुरुष के शरीर के पुद्गल चलित होते हैं। शरीर के वायु से प्रेरित पुद्गल चलित होते हैं।

**सूत्र - ८९३**

दश प्रकार से क्रोध की उत्पत्ति होती है, यथा-मेरे मनोज्ञ शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गंध का इसने अपहरण किया था ऐसा चिन्तन करने से, इसने मुझे अमनोज्ञ शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गंध दिया था ऐसा चिन्तन करने से, मेरे मनोज्ञ शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गंध का यह अपहरण करता है ऐसा चिन्तन करने से, इससे मुझे अमनोज्ञ शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गंध दिया जाता है ऐसा चिन्तन करने से, मेरे मनोज्ञ शब्द स्पर्श, रस, रूप और गंध का यह अपहरण करेगा ऐसा चिन्तन करने से, यह मुझे अमनोज्ञ शब्द, स्पर्श, रस, रूप, और गंध देगा-ऐसा चिन्तन करने से, मेरे मनोज्ञ शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गंध का इसने अपहरण किया था, करता है या करेगा-ऐसा चिन्तन करने से, इसने मुझे अमनोज्ञ शब्द-यावत् गंध दिया था, देता है या देगा-ऐसा चिन्तन करने से, इसने मेरे मनोज्ञ शब्द यावत्-गंध का अपहरण किया, करता है या करेगा तथा इसने मुझे अमनोज्ञ शब्द यावत्-गंध दिया, देता है या देगा ऐसा चिन्तन करने से, मैं आचार्य या उपाध्याय की आज्ञानुसार आचरण करता हूँ किन्तु वे मेरे पर प्रसन्न नहीं रहते हैं।

**सूत्र - ८९४**

संयम दश प्रकार का है, यथा–पृथ्वीकायिक जीवों का संयम यावत्–वनस्पतिकायिक जीवों का संयम, बेइन्द्रिय जीवों का संयम, तेइन्द्रिय जीवों का संयम, चउरिन्द्रिय जीवों का संयम, पंचेन्द्रिय जीवों का संयम, अजीव काय संयम ।

असंयम दश प्रकार का है, यथा–पृथ्वीकायिक जीवों का असंयम यावत्–वनस्पतिकायिक जीवों का असंयम, बेइन्द्रिय जीवों का असंयम यावत्–पंचेन्द्रिय जीवों का असंयम और अजीवकायिक असंयम ।

संवर दस प्रकार का है, यथा–श्रोत्रेन्द्रिय संवर यावत्–स्पर्शेन्द्रिय संवर, मनसंवर, वचनसंवर, कायसंवर, उपकरणसंवर और शुचिकुशाग्रसंवर ।

असंवर दस प्रकार का है, यथा–श्रोत्रेन्द्रिय असंवर यावत्–स्पर्शेन्द्रिय असंवर, मन असंवर, वचन असंवर, काय असंवर, उपकरण असंवर और शुचिकुशाग्र असंवर ।

**सूत्र - ८९५**

दस कारणों से मनुष्य को अभिमान उत्पन्न होता है, यथा–जातिमद से, कुलमद से यावत्–ऐश्वर्यमद से, नागकुमार देव या सुपर्णकुमार देव मेरे समीप शीघ्र आते हैं इस प्रकार के मद से, सामान्य पुरुष को जिस प्रकार का अवधिज्ञान उत्पन्न होता है उससे श्रेष्ठ अवधिज्ञान और दर्शन मुझे उत्पन्न हुआ है इस प्रकार के मद से ।

**सूत्र - ८९६**

समाधि दस प्रकार की है, यथा–प्राणातिपात से विरत होना, मृषावाद से विरत होना, अदत्तादान से विरत होना, मैथुन से विरत होना, परिग्रह से विरत होना, ईर्यासमिति से, भाषा समिति से, एषणा समिति से, आदान भाण्ड मात्र निक्षेपणा समिति से, उच्चार प्रश्रवण श्लेष्म सिंधाण परिस्थापनिका समिति से समाधि होती है ।

असमाधि दस प्रकार की है, यथा–प्राणातिपात–यावत्–परिग्रह, ईर्या असमिति–यावत्–उच्चारप्रश्रवणश्ले-ष्मसिंधाणपरिस्थापनिका असमिति ।

**सूत्र – ८९७, ८९८**

प्रव्रज्या दस प्रकार की है, यथा–

छन्द से–गोविन्द वाचक के समान स्वेच्छा से दीक्षा ले । रोष से–शिवभूति के समान रोष से दीक्षा ले । दरिद्रता से–कठिआरे के समान दरिद्रता से दीक्षा ले । स्वप्न से–पुष्पचूला के समान स्वप्नदर्शन से दीक्षा ले । प्रतिज्ञा लेने से–धन्नाजी के समान प्रतिज्ञा लेने से दीक्षा ले । स्मरण से–भगवान मल्लिनाथ के छः मित्रों के समान पूर्वभव के स्मरण से दीक्षा ले । रोग होने से–सनत्कुमार चक्रवर्ती के समान रोग होने से दीक्षा ले । अनादर से–नंदीषेण के समान अनादर से दीक्षा ले । देवता के उपदेश से–मेतार्य के समान देवता के उपदेश से दीक्षा ले । पुत्र के स्नेह से–वज्रस्वामी की माताजी के समान पुत्र स्नेह से दीक्षा ले ।

**सूत्र - ८९९**

श्रमण धर्म दस प्रकार का है, यथा–क्षमा, निर्लोभता, सरलता, मृदुता, लघुता, सत्य, संयम, तप, त्याग, ब्रह्मचर्य

वैयावृत्य दस प्रकार की है, यथा–आचार्य की वैयावृत्य, उपाध्याय की वैयावृत्य, स्थविर साधुओं की वैया-वृत्य, तपस्वी की वैयावृत्य, ग्लान की वैयावृत्य, शैक्ष की वैयावृत्य, कुल की वैयावृत्य, गण की वैयावृत्य, चतुर्विध संघ की वैयावृत्य, साधर्मिक की वैयावृत्य ।

**सूत्र - ९००**

जीव परिणाम दस प्रकार के हैं, यथा–गति परिणाम, इन्द्रिय परिणाम, कषाय परिणाम, लेश्या परिणाम, योग परिणाम, उपयोग परिणाम, ज्ञान परिणाम, दर्शन परिणाम, चारित्र परिणाम, वेद परिणाम ।

अजीव परिणाम दस प्रकार के हैं, यथा–बन्धन परिणाम, गति परिणाम, संस्थान परिणाम, भेद परिणाम, वर्ण परिणाम, रस परिणाम, गंध परिणाम, स्पर्श परिणाम, अगुरु लघु परिणाम, शब्द परिणाम ।

**सूत्र - ९०१**

आकाश सम्बन्धी अस्वाध्याय दस प्रकार का है, यथा-उल्कापात-आकाश से प्रकाश पुंज का गिरना । दिशादाह-महानगर के दाह के समान आकाश में प्रकाश का दिखाई देना । गर्जना-आकाश में गर्जना होना । विद्युत-अकाल में विद्युत चमकना । निर्घात-आकाश में व्यन्तर देव कृत महाध्वनि अथवा भूकम्प की ध्वनि । जूयग -संध्या और चन्द्रप्रभा का मिलना । यक्षादीप्त-आकाश में यक्ष के प्रभाव से जाज्वल्यमान अग्नि का दिखाई देना । धूमिका-धूएं जैसे वर्ण वाली सूक्ष्मवृष्टि । मिहिका-शरद् काल में होने वाली सूक्ष्म वर्षा अर्थात् ओस गिरना, रजघात -चारों दिशा में सूक्ष्म रज की वृष्टि ।

औदारिक शरीर सम्बन्धी अस्वाध्याय दस प्रकार का है, यथा-अस्थि, माँस, रक्त, अशुचि के समीप, स्मशान के समीप, चन्द्र ग्रहण, सूर्य ग्रहण, पतन-राजा, मंत्री, सेनापति या ग्रामाधिपति आदि का मरण, राजविग्रह-युद्ध, उपाश्रय में मनुष्य आदि का मृत शरीर पड़ा हो तो सौ हाथ पर्यन्त अस्वाध्याय क्षेत्र है ।

**सूत्र - ९०२**

पंचेन्द्रिय जीवों की हिंसा न करने वाले को दस प्रकार का संयम होता है । यथा-श्रोत्रेन्द्रिय का सुख नष्ट नहीं होता । श्रोत्रेन्द्रिय का दुःख प्राप्त नहीं होता यावत्-स्पर्शेन्द्रिय का दुःख प्राप्त नहीं होता ।

इसी प्रकार दस प्रकार का असंयम भी कहना चाहिए ।

**सूत्र - ९०३**

सूक्ष्म दस प्रकार के हैं, यथा-प्राण सूक्ष्म-कुंथुआ आदि । पनक सूक्ष्म-फूलण आदि । बीज सूक्ष्म-डांगर आदि का अग्र भाग । हरित सूक्ष्म-सूक्ष्म हरी घास । पुष्प सूक्ष्म-वड आदि के पुष्प । अंडसूक्ष्म-कीड़ी आदि के अण्डे । लयनसूक्ष्म-कीड़ी नगरादि । स्नेह सूक्ष्म-धुंअर आदि । गणित सूक्ष्म-सूक्ष्म बुद्धि के गहन गणित करना । भंग सूक्ष्म-सूक्ष्म बुद्धि से गहन भांगे बनाना ।

**सूत्र - ९०४**

जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत से दक्षिण दिशा में गंगा और सिन्धु महानदी में दस महानदियाँ मिलती हैं । यथा-गंगा नदी में मिलने वाली पाँच नदियाँ-यमुना, सरयू, आवी, कोशी, मही ।

सिन्धु नदी में मिलने वाली पाँच नदियाँ-शतद्रु, विवत्सा, विभासा, एरावती, चन्द्रभागा ।

जम्बूद्वीप के मेरु से उत्तर दिशा में रक्ता और रक्तवती महानदी में दस महानदियाँ मिलती हैं, यथा-कृष्णा, महाकृष्णा, नीला, महानीला, तीरा, महातीरा, इन्द्रा, इन्द्रषेणा, वारिषेणा, महाभोगा ।

**सूत्र - ९०५, ९०६**

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में दस राजधानियाँ हैं, यथा- चम्पा, मथुरा, वाराणसी, श्रावस्ती, साकेत, हस्तिनापुर, कांपिल्यपुर, मिथिला, कोशाम्बी, राजगृह ।

**सूत्र - ९०७**

इन दस राजधानियों में दश राजा मुण्डित यावत्-प्रव्रजित हुए, यथा-भरत, सगर, मधव, सनत्कुमार, शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ, महापद्म, हरिषेण, जयनाथ ।

**सूत्र - ९०८**

जम्बूद्वीप का मेरु पर्वत भूमि में दस सौ (एक हजार) योजन गहरा है । भूमि पर दस हजार योजन चौड़ा है। ऊपर से दस सौ (एक हजार) योजन चौड़ा है । दस-दस हजार (एक लाख) योजन के सम्पूर्ण मेरु पर्वत हैं ।

**सूत्र - ९०९**

जम्बूद्वीपवर्ती मेरु पर्वत के मध्यभाग में इस रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊपर और नीचे के लघु प्रतर में आठ प्रदेश वाला रुचक है वहाँ से इन दश दिशाओं का उद्गम होता है । यथा-पूर्व, पूर्वदक्षिण, दक्षिण, दक्षिणपश्चिम, पश्चिम, पश्चिमोत्तर, उत्तर, उत्तरपूर्व, उर्ध्व, अधो । इन दस दिशाओं के दस नाम हैं, यथा-

**सूत्र - ९१०**

ऐन्द्री, आग्नेयी, यमा, नैऋती, वारुणी, वायव्या, सोमा, ईशाना, विमला, तमा ।

**सूत्र - ९११**

लवण समुद्र के मध्य में दस हजार योजन का गोतीर्थ विरहित क्षेत्र है ।

लवण समुद्र के जल की शिखा दस हजार योजन की है । सभी (चार) महापाताल कलश दस-दस सहस्त्र (एक लाख योजन) के गहरे हैं । मूल में दस हजार योजन के चौड़े हैं । मध्य भाग में-एक प्रदेश वाली श्रेणी में दस-दस हजार (एक लाख) योजन चौड़े हैं । कलशों के मुँह दस हजार योजन चौड़े हैं । उन महापाताल कलशों की ठीकरी वज्रमय है और दस सौ (एक हजार) योजन की सर्वत्र समान चौड़ी है ।

सभी (चार) लघुपाताल कलश दस सौ (एक हजार) योजन गहरे हैं । मूल में दस दशक (सौ) योजन चौड़े हैं । मध्यभाग में-एक प्रदेश वाली श्रेणी में दश सौ (एक हजार) योजन चौड़े हैं । कलशों के मुँह दश दशक (सौ) योजन चौड़े हैं । उन लघुपाताल कलशों की ठीकरी वज्रमय है और दश योजन की सर्वत्र समान चौड़ी है ।

**सूत्र - ९१२**

धातकीखण्ड द्वीप के मेरु भूमि में दश सौ (एक हजार) योजन गहरे हैं । भूमि पर कुछ न्यून दश हजार योजन चौड़े हैं । ऊपर से दश सौ (१००० योजन) चौड़े हैं । पुष्करवर अर्द्धद्वीप के मेरु पर्वतों का प्रमाण भी इसी प्रकार का है

**सूत्र - ९१३**

सभी वृत्त वैताढ्य पर्वत दश सौ (एक हजार) योजन ऊंचे हैं । भूमि में दश सौ (एक हजार) गाऊ गहरे हैं । सर्वत्र समान पल्यंक संस्थान से संस्थित हैं और दश सौ (एक हजार) योजन चौड़े हैं ।

**सूत्र - ९१४**

जम्बूद्वीप में दश क्षेत्र हैं, यथा-भरत, ऐरवत, हैमवत, हैरण्यवत, हरिवर्ष, रम्यक्वर्ष, पूर्वविदेह, अपरविदेह, देवकुरु, उत्तरकुरु ।

**सूत्र - ९१५**

मानुषोत्तर पर्वत मूल में दश सौ बाईस (१०२२) योजन चौड़ा है ।

**सूत्र - ९१६**

सभी अंजनक पर्वत भूमि में दश सौ (एक हजार) योजन गहरे हैं । भूमि पर मूल में दश हजार योजन चौड़े हैं । ऊपर से दश सौ (एक हजार) योजन चौड़े हैं ।

सभी दधिमुख पर्वत दश सौ (एक हजार) योजन भूमि में गहरे हैं । सर्वत्र समान पल्यंक संस्थान से संस्थित हैं और दश हजार योजन चौड़े हैं ।

सभी रतिकर पर्वत दश सौ (एक हजार) योजन ऊंचे हैं । दश सौ (एक हजार) गाऊ भूमि में गहरे हैं । सर्वत्र समान झालर के संस्थान से स्थित हैं और दश हजार योजन चौड़े हैं ।

**सूत्र - ९१७**

रुचकवर पर्वत दश सौ योजन भूमि में गहरे हैं । मूल में (भूमि पर) दस हजार योजन चौड़े हैं । ऊपर से दस सौ योजन चौड़े हैं । इसी प्रकार कुण्डलवर पर्वत का प्रमाण भी कहना चाहिए ।

**सूत्र - ९१८**

द्रव्यानुयोग दस प्रकार का है, यथा-द्रव्यानुयोग, जीवादि द्रव्यों का चिन्तन यथा-गुण-पर्यायवद् द्रव्यम् । मातृकानुयोग-उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य इन तीन पदों का चिन्तन । यथा-उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्तं सत् । एकार्थिका-नुयोग-एक अर्थ वाले शब्दों का चिन्तन । यथा-जीव, प्राण, भूत और सत्त्व इन एकार्थवाची शब्दों का चिन्तन । करणानुयोग-साधकतम कारणों का चिन्तन । यथा-काल, स्वभाव, निषति और साधकतम कारण से कर्ता कार्य करता है । अर्पितानर्पित-यथा-अर्पित-विशेषण सहित-यह संसारी जीव हैं । अनर्पित विशेषण रहित-यह जीव द्रव्य हैं

भाविताभावित–यथा–अन्य द्रव्य के संसर्ग से प्रभावित–भावित कहा जाता है और अन्य द्रव्य के संसर्ग से अप्रभावित अभावित कहा जाता है–इस प्रकार द्रव्यों का चिन्तन किया जाता है । बाह्याबाह्य–बाह्य द्रव्य और अबाह्य द्रव्यों का चिन्तन । शाश्वताशाश्वत–शाश्वत और अशाश्वत द्रव्यों का चिन्तन । तथाज्ञान–सम्यग्दृष्टि जीवों का जो यथार्थ ज्ञान है वह तथाज्ञान है । अतथाज्ञान–मिथ्यादृष्टि जीवों का जो एकान्त ज्ञान है वह अतथाज्ञान है ।

**सूत्र - ९१९**

असुरेन्द्र चमर का तिगिच्छा कूट उत्पात पर्वत मूल में दस-सौ बाईस (१०२२) योजन चौड़ा है । असुरेन्द्र चमर के सोम लोकपाल का सोमप्रभ उत्पाद पर्वत दस सौ (एक हजार) योजन का ऊंचा है, दस सौ (एक हजार) गाऊ का भूमि में गहरा है, मूल में (भूमि पर) दस सौ (एक हजार) योजन का चौड़ा है । असुरेन्द्र चमर के यम-लोकपाल का यमप्रभ उत्पात पर्वत का प्रमाण भी पूर्ववत् है ।

इसी प्रकार वरुण के उत्पात पर्वत का प्रमाण है । इसी प्रकार वैश्रमण के उत्पात पर्वत का प्रमाण है । वैरोचनेन्द्र बलि का रुचकेन्द्र उत्पात पर्वत मूल में दस सौ बाईस (१०२२) योजन चौड़ा है ।

जिस प्रकार चमरेन्द्र के लोकपालों के उत्पात पर्वतों का प्रमाण कहा है उसी प्रकार बलि के लोकपालों के उत्पात पर्वतों का प्रमाण कहना चाहिए ।

नागकुमारेन्द्र धरण का धरणप्रभ उत्पात पर्वत दस सौ (एक हजार) योजन ऊंचा है, दस सौ (एक हजार) गाऊ का भूमि में गहरा है, मूल में एक हजार योजन चौड़ा है ।

इसी प्रकार धरण के कालवाल आदि लोकपालों के उत्पात पर्वतों का प्रमाण है । इसी प्रकार भूतानन्द और उनके लोकपालों के उत्पात पर्वतों का प्रमाण है । इसी प्रकार लोकपाल सहित स्तनित कुमार पर्यन्त उत्पात पर्वतों का प्रमाण कहना चाहिए । असुरेन्द्रों और लोकपालों के नामों के समान उत्पात पर्वतों के नाम कहने चाहिए ।

देवेन्द्र देवराज शक्रेन्द्र का शक्रप्रभ उत्पात पर्वत दस हजार योजन ऊंचा है । दस हजार गाऊ भूमि में गहरा है मूल में दस हजार योजन चौड़ा है । इसी प्रकार शक्रेन्द्र के लोकपालों के उत्पात पर्वतों का प्रमाण है । इसी प्रकार अच्युत पर्यन्त सभी इन्द्रों और लोकपालों के उत्पात पर्वतों का प्रमाण है ।

**सूत्र - ९२०**

बादर वनस्पतिकाय की उत्कृष्ट अवगाहना दश सौ (एक हजार) योजन की है ।

जलचर तिर्यंच पंचेन्द्रिय की उत्कृष्ट अवगाहना दश सौ (एक हजार) योजन की है ।

स्थलचर उरपरिसर्प तिर्यंच पंचेन्द्रिय की उत्कृष्ट अवगाहना भी इतनी ही है ।

**सूत्र - ९२१**

संभवनाथ अर्हन्त की मुक्ति के पश्चात् दश लाख क्रोड़ सागरोपम व्यतीत होने पर अभिनन्दन अर्हन्त उत्पन्न हुए

**सूत्र - ९२२**

अनन्तक दश प्रकार के हैं, यथा–नाम अनन्तक–सचित्त या अचित्त वस्तु का अनन्तक नाम । स्थापना अनन्तक–अक्ष आदि में किसी पदार्थ में अनन्त की स्थापना । द्रव्य अनन्तक–जीव द्रव्य या पुद्गल द्रव्य का अनन्त पना । गणना–अनन्तक एक, दो, तीन इसी प्रकार संख्यात, असंख्यात और अनन्त पर्यन्त गिनती करना । प्रदेश अनन्तक–आकाश प्रदेशों का अनन्तपना । एकतोऽनन्तक–अतीत काल अथवा अनागत काल । द्विधा-अनन्तक–सर्वकाल । देश विस्तारानन्तक–एक आकाश प्रत्तर । सर्व विस्तारानन्तक–सर्व आकाशास्तिकाय । शाश्वतानन्तक–अक्षय जीवादि द्रव्य ।

**सूत्र - ९२३**

उत्पाद पूर्व के दश वस्तु (अध्ययन) हैं । अस्तिनास्ति प्रवादपूर्व के दश चूल वस्तु (लघु अध्ययन) हैं ।

**सूत्र - ९२४**

प्रतिसेवना (प्राणातिपात आदि पापों का सेवन) दश प्रकार की हैं । यथा–

**सूत्र - ९२५**

दर्प प्रतिसेवना-दर्पपूर्वक दौड़ने या वध्यादि कर्म करने से । प्रमाद प्रतिसेवना-हास्य विकथा आदि प्रमाद से अनाभोग प्रतिसेवना-आतुर प्रतिसेवना-स्वयं की या अन्य की चिकित्सा हेतु । आपत्ति प्रतिसेवना-विपद्ग्रस्त होने से शंकित प्रतिसेवना-शुद्ध आहारादि में अशुद्ध की शंका होने पर भी ग्रहण करने से । सहसात्कार प्रतिसेवना-अकस्मात् दोष लग जाने से । भयप्रतिसेवना-राजा चोर आदि के भय से । प्रद्वेषप्रतिसेवना-क्रोधादि कषाय की प्रबलता से । विमर्श प्रतिसेवना-शिष्यादि की परीक्षा के हेतु ।

**सूत्र - ९२६**

आलोचना के दश दोष हैं, यथा-

**सूत्र - ९२७**

अनुकम्पा उत्पन्न करके आलोचना करे-आलोचना लेने के पहले गुरु महाराज की सेवा इस संकल्प से करे कि ये मेरी सेवा से प्रसन्न होकर मेरे पर अनुकम्पा करके कुछ कम प्रायश्चित्त देंगे । अनुमान करके आलोचना करे-ये आचार्यादि मृत्यु दण्ड देने वाले हैं या कठोर दण्ड देने वाले हैं, यह अनुमान से जानकर मृदु दण्ड मिलने की आशा से आलोचना करे । मेरा दोष इन्होंने देख लिया है ऐसा जानकर आलोचना करे-आचार्यादि ने मेरा यह दोष-सेवन देख तो लिया ही है अब इसे छिपा नहीं सकता अतः मैं स्वयं इनके समीप जाकर अपने दोष की आलोचना कर लूँ इससे ये मेरे पर प्रसन्न होंगे-ऐसा सोचकर आलोचना करे किन्तु दोष सेवी को ऐसा अनुभव हो कि आचार्यादि ने मेरा दोष सेवन देखा नहीं है, ऐसा विचार करके आलोचना न करे अतः यह दृष्ट दोष है । स्थूल दोष की आलोचना करे-अपने बड़े दोष की आलोचना इस आशय से करे कि यह कितना सत्यवादी हैं ऐसी प्रतीति कराने के लिए बड़े दोष की आलोचना करे

सूक्ष्म दोष की आलोचना करे-यह छोटे-छोटे दोषों की आलोचना करता है तो बड़े दोषों की आलोचना करने में तो सन्देह ही क्या है ऐसी प्रतीति कराने के लिए सूक्ष्म दोषों की आलोचना करे । प्रच्छन्न रूप से आलोचना करे-आचार्यादि सून न सके ऐसे धीमे स्वर से आलोचना करे अतः आलोचना नहीं करी ऐसा कोई न कह सके । उच्च स्वर में आलोचना करे-केवल गीतार्थ ही सून सके ऐसे स्वर से आलोचना करनी चाहिए किन्तु उच्च स्वर से बोलकर अगीतार्थ को भी सूनावे । अनेक के समीप आलोचना करे-दोष की आलोचना एक के पास ही करनी चाहिए, किन्तु जिन दोषों की आलोचना पहले कर चूका है उन्हीं दोषों की आलोचना दूसरों के पास करे । अगीतार्थ के पास आलोचना करे-आलोचना गीतार्थ के पास ही करनी चाहिए किन्तु ऐसा न करके अगीतार्थ के पास आलोचना करे । दोषसेवी के पास आलोचना करे-मैंने जिस दोष का सेवन किया है उसी दोष का सेवन गुरुजी ने भी किया है अतः मैं उन्हीं के पास आलोचना करूँ-क्योंकि ऐसा करने से वे कुछ कम प्रायश्चित्त देंगे ।

**सूत्र - ९२८**

दश स्थान (गुण) सम्पन्न अणगार अपने दोषों की आलोचना करता है, यथा-जातिसम्पन्न, कुलसम्पन्न शेष अष्टमस्थानक समान यावत् क्षमाशील, दमनशील, अमायी, अपश्चात्तापी लेने के पश्चात् पश्चात्ताप न करने वाला ।

दश स्थान (गुण) सम्पन्न अणगार आलोचना सूनने योग्य होता है । यथा-आचारवान् अवधारणावान्, व्यवहारवान्, अल्पव्रीडक-आलोचक की लज्जा दूर कराने वाला, जिससे आलोचक सुखपूर्वक आलोचना कर सके। शुद्धि करने में समर्थ, आलोचक की शक्ति के अनुसार प्रायश्चित्त देने वाले, आलोचक के दोष दूसरों को न कहने वाला, दोष सेवन से अनिष्ट होता है ऐसा समझा सकने वाला, प्रियधर्मी, दृढ़धर्मी ।

प्रायश्चित्त दश प्रकार का है, यथा-आलोचना योग्य, यावत् अनवस्थाप्यार्ह-जिस दोष की शुद्धि साधु को अमुक समय तक व्रतरहित रखकर पुनः व्रतारोपण रूप प्रायश्चित्त से हो । और पारंचिकार्ह-गृहस्थ के कपड़े पहनाकर जो प्रायश्चित्त दिया जाए ।

**सूत्र - ९२९**

मिथ्यात्व दश प्रकार का है, यथा-अधर्म में धर्म की बुद्धि, धर्म में अधर्म की बुद्धि, उन्मार्ग में मार्ग की बुद्धि,

मार्ग में उन्मार्ग की बुद्धि, अजीव में जीव की बुद्धि, जीव में अजीव की बुद्धि, असाधु में साधु की बुद्धि, साधु में असाधु की बुद्धि, अमूर्त में मूर्त की बुद्धि, मूर्त में अमूर्त की बुद्धि ।

**सूत्र - ९३०**

चन्द्रप्रभ अर्हन्त दश लाख पूर्व का पूर्णायु भोगकर सिद्ध यावत् मुक्त हुए । धर्मनाथ अर्हन्त दश लाख वर्ष का पूर्णायु भोगकर सिद्ध यावत् मुक्त हुए । नमिनाथ अर्हन्त दश हजार वर्ष का पूर्णायु भोगकर सिद्ध यावत् मुक्त हुए ।

पुरुषसिंह वासुदेव दश लाख वर्ष का पूर्णायु भोगकर छट्ठी तमा पृथ्वी में नैरयिक रूप में उत्पन्न हुए ।

नेमनाथ अर्हन्त दश धनुष के ऊंचे थे और दश सौ (एक हजार) वर्ष का पूर्णायु भोगकर सिद्ध यावत् मुक्त हुए

कृष्ण वासुदेव दश धनुष के ऊंचे थे और दश सौ (एक हजार) वर्ष का पूर्णायु भोगकर तीसरी बालुकाप्रभा पृथ्वी में नैरयिक रूप में उत्पन्न हुए ।

**सूत्र - ९३१, ९३२**

भवनवासी देव दश प्रकार के हैं, यथा-असुरकुमार यावत् स्तनितकुमार । इन दश प्रकार के भवनवासी देवों के दश चैत्यवृक्ष हैं, यथा-अश्वत्थ-पीपल, सप्तपर्ण, शाल्मली, उदुम्बर, शिरीष, दधिपर्ण, वंजुल, पलाश, वप्र, कणेरवृक्ष

**सूत्र - ९३३, ९३४**

सुख दस प्रकार का है, यथा- आरोग्य, दीर्घायु, धनाढ्य होना, ईच्छित शब्द और रूप का प्राप्त होना, ईच्छित गंध, रस और स्पर्श का प्राप्त होना, सन्तोष, जब जिस वस्तु की आवश्यकता हो, उस समय उस वस्तु का प्राप्त होना, शुभ भोग प्राप्त होना, निष्क्रमण-दीक्षा, अनाबाध-मोक्ष ।

**सूत्र - ९३५**

उपघात दस प्रकार का है, यथा-उद्‌गमउपघात, उत्पादनउपघात शेष पाँचवे स्थान के समान यावत्-परिहरणउपघात, ज्ञानोपघात, दर्शनोपघात, चारित्रोपघात, अप्रीतिकोपघात, संरक्षणोपघात ।

विशुद्धि दस प्रकार की है, उद्‌गमविशुद्धि, उत्पादनविशुद्धि यावत् संरक्षण विशुद्धि ।

**सूत्र - ९३६**

संक्लेश दस प्रकार का है, यथा-उपधि संक्लेश, उपाश्रय संक्लेश, कषाय संक्लेश, भक्तपाण संक्लेश, मन संक्लेश, वचन संक्लेश, काय संक्लेश, ज्ञान संक्लेश, दर्शन संक्लेश और चारित्र संक्लेश ।

असंक्लेश दस प्रकार का है, यथा-उपधि असंक्लेश यावत् चारित्र असंक्लेश ।

**सूत्र - ९३७**

बल दस प्रकार के हैं, यथा-श्रोत्रेन्द्रिय बल यावत् स्पर्शेन्द्रिय बल, ज्ञान बल, दर्शन बल, चारित्र बल, वीर्य बल ।

**सूत्र - ९३८, ९३९**

सत्य दस प्रकार के हैं, यथा- जनपद सत्य-देश की अपेक्षा से सत्य, सम्मत सत्य-सब का सम्मत सत्य, स्थापना सत्य-लकड़ों के घोड़े की स्थापना, नाम सत्य-एक दरिद्री का धनराज नाम, रूप सत्य-एक कपटी का साधुवेष, प्रतीत्यसत्य-कनिष्ठा की अपेक्षा अनामिका का दीर्घ होना, और मध्यमा की अपेक्षा अनामिका का लघु होना व्यवहार सत्य-पर्वत में तृण जलते हैं फिर भी पर्वत जल रहा है ऐसा कहना । भाव सत्य-बक में प्रधान श्वेत वर्ण है अतः बक को श्वेत कहना । योग सत्य-दंड हाथ में होने से दण्डी कहना । औपम्य सत्य-यह कन्या चन्द्रमुखी है ।

**सूत्र - ९४०, ९४१**

मृषावाद दस प्रकार का है, यथा- क्रोधजन्य, मानजन्य, मायाजन्य, लोभजन्य, प्रेमजन्य, द्वेषजन्य, हास्यजन्य, भयजन्य, आख्यायिकाजन्य, उपघातजन्य ।

**सूत्र - ९४२**

सत्यमृषा (मिश्र वचन) दस प्रकार का है, यथा-उत्पन्न मिश्रक-सही संख्या मालूम न होने पर भी 'इस शहर में दस बच्चे पैदा हुए हैं' ऐसा कहना । विगत मिश्रक-जन्म के समान मरण के सम्बन्ध में कहना । उत्पन्न विगत मिश्रक-

सही संख्या प्राप्त न होने पर भी इसी गाँव में दस बालक जन्मे हैं और दस वृद्ध मरे हैं । इस प्रकार कहना । जीव मिश्रक-जीवित और मृत जीवों के समूह को देखकर 'जीव समूह है' ऐसा कहना । अजीव मिश्रक-जीवित और मृत जीवों के समूह को देखकर 'यह अजीव समूह है' ऐसा कहना । जीवाजीव मिश्रक-जीवित और मृत जीवों के समूह को देखकर 'इतने जीवित हैं और इतने मृत हैं' ऐसा कहना । अनन्त मिश्रक-पत्ते सहित कन्द मूल को 'अनन्तकाय' कहना । प्रत्येक मिश्रक-मोगरी सहित मूली को प्रत्येक वनस्पति कहना । अद्धामिश्रक-सूर्योदय न होने पर भी 'सूर्योदय हो गया' ऐसा कहना । अद्धाद्धामिश्रक-एक प्रहर दिन हुआ है 'फिर भी दुपहर हो गया' ऐसा कहना ।

**सूत्र - ९४३**

दृष्टिवाद के दस नाम हैं, यथा-दृष्टिवाद, हेतुवाद, भूतवाद, तत्ववाद, सम्यग्वाद, धर्मवाद, भाषाविषय, पूर्वगत, अनुयोगगत, सर्व प्राण भूत जीव सत्व सुखवाद ।

**सूत्र - ९४४, ९४५**

शस्त्र दश प्रकार के हैं, यथा- अग्नि, विष, लवण, स्नेह, क्षार, आम्ल, दुष्प्रयुक्तमन, दुष्प्रयुक्तवचन, दुष्प्रयुक्तकाय, अविरतिभाव ।

**सूत्र - ९४६, ९४७**

(वाद के) दोष दस प्रकार के हैं, यथा-तज्जात दोष-प्रतिवादी के जाति कुल को दोष देना, मति भंग-विस्मरण, प्रशास्तृदोष-सभापति या सभ्यों का निष्पक्ष न रहना । परिहरण दोष-प्रतिवादी के दिये हुए दोष का निराकरण न कर सकना । स्वलक्षण दोष-स्वकथित लक्षण का सदोष होना । कारण दोष-साध्य के साथ साधन का व्यभिचार । हेतुदोष-सदोष हेतु होना । संक्रामण दोष-प्रस्तुत में अप्रस्तुत का कथन । निग्रहदोष-प्रतिज्ञाहानि आदि निग्रह स्थान का कथन । वस्तुदोष-पक्ष में दोष का कथन ।

**सूत्र - ९४८, ९४९**

विशेष दोष दस प्रकार के हैं । यथा- वस्तु-पक्ष में प्रत्यक्ष निराकृत आदि दोष का कथन, तज्जातदोष-जाति कुल आदि दोष का देना, दोष-मतिभंगादि पूर्वोक्त आठ दोषों की अधिकता, एकार्थिक दोष-समानार्थक शब्द कहना, कारणदोष-कारण को विशेष महत्त्व देना, प्रत्युत्पन्नदोष-वर्तमान में उत्पन्न दोष का विशेष रूप से कथन, नित्यदोष-वस्तु को एकान्त नित्य मानने से उत्पन्न होने वाले दोष, अधिकदोष-वाद काल में आवश्यकता से अधिक कहना, स्वकृतदोष, उपनीत दोष-अन्य का दिया हुआ दोष ।

**सूत्र - ९५०**

शुद्ध वागनुयोग दस प्रकार का है, यथा-चकारानुयोग-वाक्य में आने वाले 'च' का विचार । मकारानुयोग-वाक्य में आने वाले 'म' का विचार । अपिकारानुयोग-'अपि' शब्द का विचार । सेकारानुयोग-आनन्तर्यादि सूचक 'से' शब्द का विचार । सायंकारानुयोग-ठीक अर्थ में प्रयुक्त 'सायं' का विचार । एकत्वानुयोग-एक वचन के सम्बन्ध में विचार । पृथक्त्वानुयोग-द्विवचन और बहुवचन का विचार । संयूथानुयोग-समास सम्बन्धी विचार । संक्रामितानुयोग-विभक्ति विपर्यास के सम्बन्ध में विचार । भिन्नानुयोग सामान्य बात कहने के पश्चात् क्रम और काल की अपेक्षा से उसके भेद करने के सम्बन्ध में विचार करना ।

**सूत्र - ९५१, ९५२**

दान दस प्रकार का होता है, यथा-

अनुकम्पादान-कृपा करके दीनों और अनाथों को देना, संग्रहदान-आपत्तियों में सहायता देना, भयदान-भय से राजपुरुषों को कुछ देना, कारुण्यदान-शोक अर्थात् पुत्रादि वियोग के कारण कुछ देना । लज्जादान-ईच्छा न होते हुए भी पाँच प्रमुख व्यक्तियों के कहने से देना । गोरवदान-अपने यश के लिए गर्वपूर्वक देना । अधर्मदान-अधर्मी पुरुष को देना । धर्मदान-सुपात्र को देना । आशादान-सुफल की आशा से देना । प्रत्युपकारदान-किसी के उपकार के बदले कुछ देना ।

**सूत्र - ९५३**

गति दश प्रकार की है, यथा-नरक गति, नरक की विग्रहगति, तिर्यंचगति, तिर्यंच की विग्रहगति, मनुष्य-गति, मनुष्य विग्रहगति, देवगति, देव विग्रहगति, सिद्धगति, सिद्ध विग्रहगति ।

**सूत्र - ९५४**

मुण्ड दस प्रकार के हैं, यथा-श्रोत्रेन्द्रिय मुण्ड यावत् स्पर्शेन्द्रिय मुण्ड, क्रोध मुण्ड यावत् लोभ मुण्ड, सिरमुण्ड ।

**सूत्र - ९५५, ९५६**

संख्यान-गणित दस प्रकार के हैं, यथा- परिकर्म गणित-अनेक प्रकार की गणित का संकलन करना । व्यवहारगणित-श्रेणी आदि का व्यवहार । रज्जूगणित-क्षेत्रगणित, राशिगणित-त्रिराशि आदि, कलांसवर्ण गणित-कला अंशों का समीकरण । गुणाकारा गणित-संख्याओं का गुणाकार करना, वर्ग गणित-समान संख्या को समान संख्या से गुणा करना । घन गणित-समान संख्या को समान संख्या से दो बार गुणा करना, यथा-दो का धन आठ, वर्ग-वर्ग गणित-वर्ग का वर्ग से गुणा करना, यथा-दो का वर्ग चार और चार का वर्ग सोलह । यह वर्ग-वर्ग है । कल्प गणित-छेद गणित करके काष्ठ का करवत से छेदन करना ।

**सूत्र - ९५७, ९५८**

प्रत्याख्यान दस प्रकार के हैं, यथा- अनागत प्रत्याख्यान-भविष्य में तप करने से आचार्यादि की सेवा में बाधा आने की सम्भावना होने पर पहले तप कर लेना । अतिक्रान्त प्रत्याख्यान-आचार्यादि की सेवा में किसी प्रकार की बाधा न आवे इस संकल्प से जो तप अतीत में नहीं किया जा सका उस तप को वर्तमान में करना । कोटी सहित प्रत्याख्यान-एक तप के अन्त में दूसरा तप आरम्भ कर देना । नियंत्रित प्रत्याख्यान-पहले से यह निश्चित कर लेना कि कैसी भी परिस्थिति हो किन्तु मुझे अमुक दिन अमुक तप करना ही है । सागार प्रत्याख्यान-जो तप आगार सहित किया जाए । अनागार प्रत्याख्यान-जिस तप में 'महत्तरागारेण' आदि आगार न रखे जाए । परिणाम कृत प्रत्याख्यान-जिस तप में दत्ति, कवल, घर और भिक्षा का परिमाण करना । निरवशेष प्रत्याख्यान-सर्व प्रकार के अशनादि का त्याग करना । सांकेतिक प्रत्याख्यान-अंगुष्ठ, मुष्टि आदि के संकेत से प्रत्याख्यान करना । अद्धा प्रत्याख्यान-पोरसी आदि काल विभाग से प्रत्याख्यान करना ।

**सूत्र - ९५९, ९६०**

सामाचारी दस प्रकार की है, यथा- ईच्छाकार समाचारी-स्वेच्छापूर्वक जो क्रिया कि जाए और उसके लिए गुरु से आज्ञा प्राप्त कर ली जाए । मिच्छाकार समाचारी-मेरा दुष्कृत मिथ्या हो इस प्रकार की क्रिया करना । तथाकार समाचारी-आपका कहना यथार्थ है इस प्रकार कहना । आवश्यिका समाचारी-आवश्यक कार्य है ऐसा कहकर बाहर जाना । नैषधकी समाचारी-बाहर से आने के बाद अब मैं गमनागमन बन्द करता हूँ ऐसा कहना । आपृच्छना समाचारी-सभी क्रियाएं गुरु को पूछ कर के करना । प्रतिपृच्छा समाचारी-पहले जिस क्रिया के लिए गुरु की आज्ञा प्राप्त न हुई हो और उसी प्रकार की क्रिया करना आवश्यक हो तो पुनः गुरु आज्ञा प्राप्त करना । छंदना समाचारी-लाई हुई भिक्षा में से किसी को कुछ आवश्यक हो तो 'लो' ऐसा कहना । निमन्त्रणा समाचारी-मैं आपके लिए आहारादि लाऊं ? इस प्रकार गुरु से पूछना । उपसंपदा समाचारी-ज्ञानादि की प्राप्ति के लिए गच्छ छोड़कर अन्य साधु के आश्रयमें रहना

**सूत्र - ९६१**

श्रमण भगवान महावीर छद्मस्थ काल की अन्तिम रात्रि में ये दस महास्वप्न देखकर जागृत हुए । यथा-प्रथम स्वप्न में एक महा भयंकर जाज्वल्यमान ताड़ जितने लम्बे पिशाच को देखकर जागृत हुए । द्वीतिय स्वप्न में एक श्वेत पंखों वाले महा पुंस्कोकिल को देखकर जागृत हुए, तृतीय स्वप्न में एक विचित्र रंग की पांखों वाले महा पुंस्कोकिल को देखकर जागृत हुए, चौथे स्वप्न में-सर्व रत्नमय मोटी मालाओं की एक जोड़ी को देखकर जागृत हुए, पाँचवे स्वप्न में श्वेत गायों के एक समूह को देखकर जागृत हुए, छठे स्वप्न में कमल फूलों से आच्छादित एक महान पद्म सरोवर को देखकर जागृत हुए, सातवे स्वप्न में-एक सहस्त्र तरंगी महासागर को अपनी भुजाओं से तिरा हुआ जानकर जागृत हुए

आठवे स्वप्न में एक महान तेजस्वी सूर्य को देखकर जागृत हुए । नौवे स्वप्न में एक महान मानुषोत्तर पर्वत को वैडूर्यमणि वर्ण वाली अपनी आँतों से परिवेष्टित देखकर जागृत हुए । दसवे स्वप्न में महान मेरु पर्वत की चूलिका पर स्वयं को सिंहासनस्थ देखकर जागृत हुए ।

प्रथम स्वप्न में ताल पिशाच को पराजित देखने का अर्थ यह है कि-भगवान महावीर ने मोहनीय कर्म को समूल नष्ट कर दिया । द्वीतिय स्वप्न में श्वेत पाँखों वाले पुंस्कोकिल को देखने का अर्थ यह है कि भगवान महावीर शुक्ल ध्यान में रमण कर रहे थे । तृतीय स्वप्न में विचित्र रंग की पङ्खों वाले पुंस्कोकिल को देखने का अर्थ यह है कि भगवान महावीर ने स्वसमय और परसमय के प्रतिपादन से चित्रविचित्र द्वादशाङ्गरूप गणिपिटक का सामान्य कथन किया, विशेष कथन किया, प्ररूपण किया, युक्तिपूर्वक क्रियाओं के स्वरूप का दर्शन निदर्शन किया । यथा-आचाराङ्ग यावत् दृष्टिवाद । चतुर्थ स्वप्न में सर्व रत्नमय माला युगल को देखने का अर्थ यह है कि श्रमण भगवान महावीर ने दो प्रकार का धर्म कहा-यथा-आगार धर्म और अणगार धर्म । पाँचवे स्वप्न में श्वेत गो-वर्ग को देखने का अर्थ यह है कि श्रमण भगवान महावीर के चार प्रकार का संघ था । श्रमण, श्रमणियाँ, श्रावक, श्राविकाएं ।

छठे स्वप्न में पद्म सरोवर को देखने का अर्थ यह है कि श्रमण भगवान महावीर ने चार प्रकार के देवों का प्रतिपादन किया । यथा-१. भवनपति, २. वाणव्यन्तर, ३. ज्योतिष्क, ४. वैमानिक । सातवे स्वप्न में सहस्रतरंगी सागर को भुजाओं से तिरने का अर्थ यह है कि श्रमण भगवान महावीर ने अनादि अनन्त दीर्घ मार्ग वाली गति रूप विकट भवाटवी को पार किया । आठवे स्वप्न में तेजस्वी सूर्य को देखने का अर्थ यह है कि श्रमण भगवान महावीर को अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन उत्पन्न हुआ । नौवे स्वप्न में आँतों से परिवेष्टित मानुषोत्तर पर्वत को देखने का अर्थ यह है कि इस लोक के देव, मनुष्य और असुरों में श्रमण भगवान महावीर की कीर्ति एवं प्रशंसा इस प्रकार फैल रही है कि श्रमण भगवान महावीर सर्वज्ञ सर्वदर्शी सर्वसंशयोच्छेदक एवं जगद्वत्सल हैं । दसवे स्वप्न में चूलिका पर स्वयं को सिंहासनस्थ देखने का अर्थ यह है कि श्रमण भगवान महावीर देव, मनुष्यों और असुरों की परीषद में केवली प्रज्ञप्त धर्म का सामान्य से कथन करते हैं यावत् समस्त नयों को युक्तिपूर्वक समझाते हैं ।

**सूत्र - ९६२, ९६३**

सराग सम्यग्दर्शन दस प्रकार का है । निसर्गरुचि-जो दूसरे का उपदेश सूने बिना स्वमति से सर्वज्ञ कथित सिद्धांतों पर श्रद्धा करे । उपदेश रुचि-जो दूसरों के उपदेश से सर्वज्ञ प्रतिपादित सिद्धान्तों पर श्रद्धा करे । आज्ञारुचि-जो केवल आचार्य या सद्गुरु के कहने से सर्वज्ञ कथित सूत्रों पर श्रद्धा करे । सूत्ररुचि-जो सूत्र शास्त्र वाँचकर श्रद्धा करे । बीजरुचि-जो एक पद के ज्ञान से अनेक पदों को समझ ले । अभिगम रुचि-जो शास्त्र को अर्थ सहित समझे । विस्ताररुचि-जो द्रव्य और उनके पर्यायों को प्रमाण तथा नय के द्वारा विस्तारपूर्वक समझे । क्रियारुचि-जो आचरण में रुचि रखे । संक्षेपरुचि- जो स्वमत और परमत में कुशल न हो किन्तु जिसकी रुचि संक्षिप्त त्रिपदी में हो । धर्मरुचि-जो वस्तु स्वभाव की अथवा श्रुत चारित्ररूप जिनोक्त धर्म की श्रद्धा करे ।

**सूत्र - ९६४**

संज्ञा दस प्रकार की होती है, यथा-आहार संज्ञा यावत् परिग्रह संज्ञा, क्रोध संज्ञा यावत् लोभ संज्ञा, लोक संज्ञा, ओधसंज्ञा, नैरयिकों में दस प्रकार की संज्ञाएं होती हैं, इसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त दस संज्ञाएं हैं ।

**सूत्र - ९६५**

नैरयिक दस प्रकार की वेदना का अनुभव करते हैं, यथा-शीत वेदना, उष्णवेदना, क्षुधा वेदना, पिपासा वेदना, कंडुवेदना, पराधीनता, भय, शोक, जरा, व्याधि ।

**सूत्र - ९६६**

दस पदार्थों छद्मस्थ पूर्ण रूप से न जानता है और न देखता है, यथा-धर्मास्तिकाय यावत् वायु, यह पुरुष जिन होगा या नहीं, यह पुरुष सब दु:खों का अन्त करेगा या नहीं ? इन्हीं दस पदार्थों को सर्वज्ञ सर्वदर्शी पूर्ण रूप से जानते हैं और देखते हैं ।

**सूत्र - ९६७, ९६८**

दशा दस हैं, यथा-कर्मविपाक दशा, उपासक दशा, अंतकृद् दशा, अनुत्तरोपपातिक दशा, आचार दशा, प्रश्नव्याकरण दशा, बंध दशा, दोगृद्धि दशा, दीर्घ दशा, संक्षेपित दशा । कर्म विपाक दशा के दश अध्ययन हैं, यथा-मृगापुत्र, गोत्रास, अण्ड, शकट, ब्राह्मण, नंदिसेण, नैरयिक, सौरिक, उदुंबर, सहसोदाह-अमरक, लिच्छवी कुमार ।

**सूत्र - ९६९, ९७०**

उपासक दशा के दस अध्ययन हैं, यथा- आनन्द, कामदेव, चुलनीपिता, सुरादेव, चुल्लशतक, कुण्डकोलिक, शकडालपुत्र, महाशतक, नंदिनीपिता, सालेयिका पिता ।

**सूत्र - ९७१, ९७२**

अन्तकृद्दशा के दस अध्ययन हैं, यथा- नमि, मातंग, सोमिल, रामगुप्त, सुदर्शन, जमाली, भगाली, किंकर्म, पल्यंक और अंबडपुत्र ।

**सूत्र - ९७३, ९७४**

अनुत्तरोपपातिक दशा के दस अध्ययन हैं, यथा- ऋषिदास, धन्ना, सुनक्षत्र, कार्तिक, संस्थान, शालिभद्र, आनन्द, तेतली, दशार्णभद्र और अतिमुक्त ।

**सूत्र - ९७५**

आचारदशा (दशा श्रुतस्कंध) के दस अध्ययन हैं, यथा-बीस असमाधि स्थान, इक्कीस शबल दोष, तैंतीस आशातना, आठ गणिसम्पदा, दस चित्त समाधि स्थान, ग्यारह श्रावक प्रतिमा, बारह भिक्षु प्रतिमा, पर्युषण कल्प, तीस मोहनीय स्थान, आजाति स्थान ।

प्रश्न व्याकरण दशा के दस अध्ययन हैं, यथा-उपमा, संख्या, ऋषिभाषित, आचार्य भाषित, महावीर भाषित, क्षौमिकप्रश्न, कोमलप्रश्न, आदर्शप्रश्न, अंगुष्ठप्रश्न, बाहुप्रश्न ।

बन्ध दशा के दस अध्ययन हैं, यथा-बन्ध, मोक्ष, देवर्धि, दशारमंडलिक, आचार्य विप्रतिपत्ति, उपाध्याय-विप्रतिपत्ति, भावना, विमुक्ति, शाश्वत, कर्म ।

द्विगृद्धि दशा के दस अध्ययन हैं, यथा-वात, विवात, उपपात, सुक्षेत्र कृष्ण, बयालीस स्वप्न, तीस महास्वप्न, बहत्तर स्वप्न, हार, राम, गुप्त ।

दीर्घ दशा के दस अध्ययन हैं । यथा-चन्द्र, सूर्य, शुक्र, श्री देवी, प्रभावती, द्वीप समुद्रोपपत्ति, बहुपत्रिका, मंदर, स्थविर संभूतविजय, स्थविरपद्म उश्वासनिश्वास ।

संक्षेपिक दशा के दस अध्ययन हैं, क्षुल्लिका विमान प्रविभक्ति, महती विमान प्रविभक्ति, अंगचूलिका, वर्ग-चूलिका, विवाहचूलिका, अरुणोपपात, वरुणोपपात, गरुलोपपात, वेलंधरोपपात, वैश्रमणोपपात ।

**सूत्र - ९७६**

दस सागरोपम क्रोड़ाक्रोड़ी प्रमाण उत्सर्पिणीकाल है । दस सागरोपम क्रोड़ाक्रोड़ी प्रमाण अवसर्पिणीकाल हैं

**सूत्र - ९७७**

नैरयिक दस प्रकार के हैं, यथा-अनन्तरोपपन्नक, परंपरोपपन्नक, अनन्तरावगाढ़, परंपरावगाढ़, अनन्तरा-हारक, परंपराहारक, अनन्तर पर्याप्त, परम्पर पर्याप्त, चरिम, अचरिम । इसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त सभी दस प्रकार के हैं ।

चौथी पंकप्रभा पृथ्वी में दस लाख नरकावास हैं । रत्नप्रभा पृथ्वी में नैरयिकों की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की है । चौथी पंकप्रभा पृथ्वी में नैरयिकों की उत्कृष्ट स्थिति दस सागरोपम की है । पाँचवी धूमप्रभा पृथ्वी में नैरयिकों की जघन्य स्थिति दस सागरोपम की है ।

असुरकुमारों की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की है । इसी प्रकार स्तनितकुमार पर्यन्त दस हजार वर्ष की स्थिति है ।

बादर वनस्पतिकाय की उत्कृष्ट स्थिति दस हजार वर्ष की है ।

वाणव्यन्तर देवों की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की है ।

ब्रह्मलोककल्प में देवों की उत्कृष्ट स्थिति दस सागरोपम की है । लातककल्प में देवों की जघन्य स्थिति दश सागरोपम की है ।

**सूत्र - ९७८**

दस कारणों से जीव आगामी भव में भद्रकारक कर्म करता है । यथा-अनिदानता-धर्माचरण के फल की अभिलाषा न करना । दृष्टिसंपन्नता-सम्यग्दृष्टि होना । योगवाहिता-तप का अनुष्ठान करना । क्षमा-क्षमा धारण करना जितेन्द्रियता-इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करना । अमायिता-कपट रहित होना । अपार्श्वस्थता-शिथिलाचारी न होना । सुश्रामण्यता-सुसाधुता । प्रवचनवात्सल्य-द्वादशाङ्ग अथवा संघ का हित करना । प्रवचनोद्भावना-प्रवचन की प्रभावना करना ।

**सूत्र - ९७९**

आशंसा प्रयोग दश प्रकार के हैं, यथा-इहलोक आशंसा प्रयोग-मैं अपने तप के प्रभाव से चक्रवर्ती आदि होऊं । परलोक आशंसा प्रयोग-मैं अपने तप के प्रभाव से इन्द्र अथवा सामान्य देव बनूँ, उभयलोक आशंसा प्रयोग -मैं अपने तप के प्रभाव से इस भव में चक्रवर्ती बनूँ और परभव में इन्द्र बनूँ । जीवित आशंसा प्रयोग-मैं चिरकाल तक जीवूँ, मरण आशंसा प्रयोग-मेरी मृत्यु शीघ्र हो, काम आशंसा प्रयोग-मनोज्ञ शब्द आदि मुझे प्राप्त हों, भोग आशंसा प्रयोग-मनोज्ञ गंध आदि मुझे प्राप्त हो, लाभ आशंसा प्रयोग-कीर्ति आदि प्राप्त हो, पूजा आशंसा प्रयोग-पुष्पादि से मेरी पूजा हो, सत् आशंसा प्रयोग-श्रेष्ठ वस्त्रादि से मेरा सत्कार हो ।

**सूत्र - ९८०**

धर्म दश प्रकार के हैं, यथा-ग्राम धर्म, नगर धर्म, राष्ट्र धर्म, पाषंड धर्म, कुल धर्म, गण धर्म, संघ धर्म, श्रुत धर्म, चारित्र धर्म, अस्तिकाय धर्म ।

**सूत्र - ९८१**

स्थविर दश प्रकार के हैं, ग्रामस्थविर, नगरस्थविर, राष्ट्रस्थविर, प्रशास्तृ स्थविर, कुलस्थविर, गणस्थविर, संघस्थविर, जातिस्थविर, श्रुतस्थविर, पर्याय स्थविर ।

**सूत्र - ९८२**

पुत्र दश प्रकार के हैं, यथा-आत्मज-पिता से उत्पन्न, क्षेत्रज-माता से उत्पन्न किन्तु पिता के वीर्य से उत्पन्न न होकर अन्य पुरुष के वीर्य से उत्पन्न, दत्तक-गोद लिया हुआ पुत्र, विनयित शिष्य-पढ़ाया हुआ, ओरस-जिस पर पुत्र जैसा स्नेह हो, मौखर-किसी को प्रसन्न रखने के लिए अपने आपको पुत्र कहने वाला, शौंडीर-जो शौर्य से किसी शूर पुरुष के पुत्र रूप में स्वीकार किया जाए, संवर्धित-जो पाल पोष कर बड़ा किया जाए, औपयाचितक-देवता की आराधना से उत्पन्न पुत्र, धर्मान्तेवासी-धर्माराधना के लिए समीप रहने वाला ।

**सूत्र - ९८३**

केवली के दश उत्कृष्ट हैं, यथा-उत्कृष्ट ज्ञान, उत्कृष्ट दर्शन, उत्कृष्ट चारित्र, उत्कृष्ट तप, उत्कृष्ट वीर्य, उत्कृष्ट क्षमा, उत्कृष्ट निर्लोभता, उत्कृष्ट सरलता, उत्कृष्ट कोमलता और उत्कृष्ट लघुता ।

**सूत्र - ९८३**

समय क्षेत्र में दश कुरुक्षेत्र हैं, यथा-पाँच देव कुरु, पाँच उत्तर कुरु ।

इन दश कुरुक्षेत्रों में दश महावृक्ष हैं । यथा-जम्बू सुदर्शन, घातकी वृक्ष, महाघातकी वृक्ष, पद्मवृक्ष, महापद्म वृक्ष, पाँच कूटशाल्मली वृक्ष ।

इन दश कुरुक्षेत्रों में दश महर्द्धिक देव रहते हैं, यथा-१. जम्बूद्वीप का अधिपति देव अनाहत, २. सुदर्शन, ३. प्रियदर्शन, ४. पौंडरिक, ५. महापौंडरिक, ६-१०. पाँच गरुड़ (वेणुदेव) देव हैं ।

**सूत्र - ९८५**

दश लक्षणों से पूर्ण दुषम काल जाना जाता है, यथा–अकाल में वर्षा हो, काल में वर्षा न हो, असाधु की पूजा हो, साधु की पूजा न हो, माता पिता आदि का विनय न करे, अमनोज्ञ शब्द यावत् स्पर्श ।

दश कारणों से पूर्ण सुषमकाल जाना जाता है, यथा–अकाल में वर्षा न हो, शेष पूर्व कथित से विपरीत यावत् मनोज्ञ स्पर्श ।

**सूत्र - ९८६**

सुषम-सुषम काल में दश कल्पवृक्ष युगलियाओं के उपभोग के लिए शीघ्र उत्पन्न होते हैं । यथा–

**सूत्र - ९८७**

मत्तांगक–स्वादु पेय की पूर्ति करने वाले, भृतांग–अनेक प्रकार के भाजनों की पूर्ति करने वाले, तूर्यांग–वाद्यों की पूर्ति करने वाले, दीपांग–सूर्य के अभाव में दीपक के समान प्रकाश देने वाले, ज्योतिरंग–सूर्य और चन्द्र के समान प्रकाश देने वाले, चित्रांग–विचित्र पुष्प देने वाले, चित्र रसांग–विविध प्रकार के भोजन देने वाले, मण्यंग–मणि, रत्न आदि आभूषण देने वाले, गृहाकार–घर के समान स्थान देने वाले, अनग्न–वस्त्रादि की पूर्ति करने वाले ।

**सूत्र - ९८८**

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में अतीत उत्सर्पिणी में दश कुलकर थे, यथा–

**सूत्र - ९८९**

शतंजल, शतायु, अनन्तसेन, अजितसेन, कर्कसेन, भीमसेन, महाभीमसेन, दढ़रथ, दशरथ, शतरथ ।

**सूत्र - ९९०**

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में आगामि उत्सर्पिणी में दश कुलकर होंगे, यथा–सिमंकर, सिमंधर,क्षेमंकर, क्षेमंधर, विमलवाहन, संभूति, पडिशत्रु, दृढधनु, दशधनु और शतधनु ।

**सूत्र - ९९१**

जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत से पूर्व में शीता महानदी के दोनों किनारों पर दश वक्षस्कार पर्वत हैं, यथा–माल्य-वन्त, चित्रकूट, विचित्रकूट, ब्रह्मकूट यावत् सोमनस । जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत से पश्चिम में शीतोदा महानदी के दोनों किनारों पर दश वक्षस्कार पर्वत हैं, यथा–विद्युत्प्रभ यावत् गंधमादन । इसी प्रकार धातकी खण्ड द्वीप के पूर्वार्ध में भी दश वक्षस्कार पर्वत हैं यावत् पुष्करवर द्वीपार्ध के पश्चिमार्ध में भी दश वक्षस्कार पर्वत हैं ।

**सूत्र - ९९२**

दश कल्प इन्द्र वाले हैं, यथा–सौधर्म यावत् सहस्त्रार, प्राणत, अच्युत । इन दश कल्पों में दश इन्द्र हैं, यथा–शक्रेन्द्र, ईशानेन्द्र यावत् अच्युतेन्द्र ।

इन दश इन्द्रों के दश पारियानिक विमान हैं । यथा–पालक, पुष्पक यावत् विमलवर और सर्वतोभद्र ।

**सूत्र - ९९३**

दशमिका भिक्षु प्रतिमा की एक सौ दिन से और ५५० भिक्षा (दत्ति) से सूत्रानुसार यावत् आराधना होती है।

**सूत्र - ९९४**

संसारी जीव दश प्रकार के हैं, यथा–प्रथम समयोत्पन्न एकेन्द्रिय, अप्रथम समयोत्पन्न एकेन्द्रिय यावत् अप्रथम समयोत्पन्न पंचेन्द्रिय । सर्व जीव दश प्रकार के हैं, यथा–पृथ्वीकाय यावत् वनस्पतिकाय, बेइन्द्रिय यावत् पंचेन्द्रिय, अनिन्द्रिय ।

सर्व जीव दश प्रकार के हैं, प्रथम समयोत्पन्न नैरयिक, अप्रथम समयोत्पन्न नैरयिक, अप्रथम समयोत्पन्न देव, प्रथम समयोत्पन्न सिद्ध, अप्रथम समयोत्पन्न सिद्ध ।

**सूत्र - ९९५**

सौ वर्ष की आयु वाले पुरुष की दश दशाएं हैं ।

**सूत्र - ९९६**

यथा-बाला दशा, क्रीडा दशा, मंद दशा, बला दशा, प्रज्ञा दशा, हायनी दशा, प्रपंचा दशा, प्रभारा दशा, मुंमुखी दशा, शायनी दशा ।

**सूत्र - ९९७**

तृण वनस्पतिकाय दस प्रकार का है, मूल, कंद, यावत्-पुष्प, फल, बीज ।

**सूत्र - ९९८**

विद्याधरों की श्रेणियाँ चारों ओर से दस-दस योजन चौड़ी हैं ।

आभियोगिक देवों की श्रेणियाँ चारों ओर से दस-दस योजन चौड़ी हैं ।

**सूत्र - ९९९**

ग्रैवेयक देवों के विमान दस योजन के ऊंचे हैं ।

**सूत्र - १०००**

दस कारणों से तेजोलेश्या से भस्म होता है । यथा-तेजोलेश्या लब्धि युक्त श्रमण-ब्राह्मण की यदि कोई आशातना करता है तो वह आशातना करने पर कुपित होकर तेजोलेश्या छोड़ता है इससे वह पीड़ित होकर भस्म हो जाता है । इसी प्रकार श्रमण ब्राह्मण की आशातना होती देखकर कोई देवता कुपित होता है और तेजोलेश्या छोड़कर आशातना करने वाले को भस्म कर देता है । इसी प्रकार श्रमण-ब्राह्मण की आशातना करने वाले को देवता और श्रमण-ब्राह्मण एक साथ तेजोलेश्या छोड़कर भस्म कर देते हैं । इसी प्रकार श्रमण-ब्राह्मण जब तेजो-लेश्या छोड़ता है तो आशातना करने वाले के शरीर पर छाले पड़ जाते हैं, छालों के फूट जाने पर वह भस्म हो जाता है । इसी प्रकार देवता तेजोलेश्या छोड़ता है तो आशातना करने वाला उसी प्रकार भस्म हो जाता है ।

इसी प्रकार देवता और श्रमण-ब्राह्मण एक साथ तेजोलेश्या छोड़ते हैं तो आशातना करने वाला उसी प्रकार भस्म हो जाता है । इसी प्रकार श्रमण-ब्राह्मण जब तेजोलेश्या छोड़ता है तो आशातना करने वाले के शरीर पर छाले पड़कर फूट जाते हैं, पश्चात् छोटे-छोटे छाले पैदा होकर भी फूट जाते हैं तब वह भस्म हो जाता है । इसी प्रकार देवता जब तेजोलेश्या छोड़ता है तो आशातना करने वाला पूर्ववत् भस्म हो जाता है । इसी प्रकार देवता और श्रमण-ब्राह्मण जब एक साथ तेजोलेश्या छोड़ता है तो आशातना करने वाला पूर्ववत् भस्म हो जाता है । कोई तेजोलेश्या वाला किसी श्रमण की आशातना करने के लिए उस पर तेजोलेश्या छोड़ता है तो वह उसका कुछ भी अनर्थ नहीं कर सकती है वह तेजोलेश्या इधर से उधर ऊंची नीची होती है और उस श्रमण के चारों ओर घूमकर आकाश में उछलती है और वह तेजोलेश्या छोड़ने वाले की ओर मुड़कर उसे ही भस्म कर देती है जिस प्रकार गोशालक की तेजोलेश्या से गोशालक ही मरा किन्तु भगवान महावीर का कुछ भी नहीं बिगड़ा ।

**सूत्र - १००१, १००२**

आश्चर्य दश प्रकार के हैं, यथा-

उपसर्ग-भगवान महावीर की केवली अवस्था में भी गोशालक ने उपसर्ग किया । गर्भहरण-हरिणगमेषी देव ने भगवान महावीर के गर्भ को देवानन्दा की कुक्षी से लेकर त्रिशला माता की कुक्षी में स्थापित किया । स्त्री तीर्थंकर-भगवान मल्लीनाथ स्त्रीलिङ्ग (वेद) में तीर्थंकर हुए । अभावित पर्षदा-केवलज्ञान प्राप्त हो जाने के पश्चात् भगवान महावीर की देशना निष्फल गई, किसीने धर्म स्वीकार नहीं किया । कृष्ण का अपरकंका गमन, कृष्ण वासुदेव द्रौपदी को लाने के लिए अपरकंका नगरी गए । चन्द्र-सूर्य का आगमन-कोशाम्बी नगरी में भगवान महावीर की वन्दना के लिए शाश्वत विमान सहित चन्द्र-सूर्य आए । तथा

**सूत्र - १००३**

हरिवंश कुलोत्पत्ति-हरिवर्ष क्षेत्र के युगलिये का भरत क्षेत्र में आगमन हुआ और उससे हरिवंश कुल की उत्पत्ति हुई । युगलिये का निरुपक्रम आयु घटा और उसकी नरक में उत्पत्ति हुई । चमरोत्पात-चमरेन्द्र का सौधर्म

देवलोक में जाना । एक सौ आठ सिद्ध–उत्कृष्ट अवगाहना वाले एक समय में एक सौ आठ सिद्ध हुए । असंयत पूजा–आरम्भ और परिग्रह के धारण करने वाले ब्राह्मणों की साधुओं के समान पूजा हुई ।

**सूत्र - १००४**

इस रत्नप्रभा पृथ्वी का रत्नकाण्ड दस सौ (एक हजार) योजन का चौड़ा है । इस रत्नप्रभा पृथ्वी का वज्र काण्ड दस सौ (एक हजार) योजन का चौड़ा है ।

इसी प्रकार–३. वैडूर्य काण्ड, ४. लोहिताक्ष काण्ड, ५. मसारगल्ल काण्ड, ६. हंसगर्भ काण्ड, ७. पुलक काण्ड, ८. सौगंधिक काण्ड, ९. ज्योतिरस काण्ड, १०. अंजन काण्ड, ११. अंजन पुलक काण्ड, १२. रजत काण्ड, १३. जलातरुप काण्ड, १४. अंक काण्ड, १५. स्फटिक काण्ड, १६. रिष्ट काण्ड । ये सब रत्न काण्ड के समान दस सौ (एक हजार) योजन के चौड़े हैं ।

**सूत्र - १००५**

सभी द्वीप समुद्र दस सौ (एक हजार) योजन के गहरे हैं । सभी महाद्रह दस योजन गहरे हैं । सभी सलिल कुण्ड दस योजन गहरे हैं । शीता और शीतोदा नदी के मूल मुख दस-दस योजन गहरे हैं ।

**सूत्र - १००६**

कृत्तिका नक्षत्र चन्द्र के सर्व बाह्य मण्डल से दसवे मण्डल में भ्रमण करता है । अनुराधा नक्षत्र चन्द्र के सर्व आभ्यन्तर मण्डल से दसवें मण्डल में भ्रमण करता है ।

**सूत्र – १००७, १००८**

ज्ञान की वृद्धि करने वाले दस नक्षत्र हैं, यथा– मृगशिरा, आर्द्रा, पुष्य, तीन पूर्वा, मूल, अश्लेषा, हस्त और चित्रा

**सूत्र - १००९**

चतुष्पद स्थलचर तिर्यंच पंचेन्द्रियों की दस लाख कुल कोटी है । उरपरिसर्प स्थलचर तिर्यंच पंचेन्द्रियों की दस लाख कुल कोटी है ।

**सूत्र - १०१०**

दस स्थानों में बद्ध पुद्‌गल जीवों ने पाप कर्म रूप में ग्रहण किये, ग्रहण करते हैं और ग्रहण करेंगे । यथा–प्रथम समयोत्पन्न एकेन्द्रिय द्वारा निवर्तित यावत्–अप्रथमसमयोत्पन्न पंचेन्द्रिय द्वारा निवर्तित पुद्‌गल जीवों ने पाप कर्मरूप में ग्रहण किये, ग्रहण करते हैं और ग्रहण करेंगे । इसी प्रकार चय, उपचय, बन्ध, उदीरणा, वेदना और निर्जरा के तीन-तीन विकल्प कहने चाहिए ।

दस प्रादेशिक स्कन्ध अनन्त हैं । दस प्रदेशावगाढ़ पुद्‌गल अनन्त हैं । दस समय की स्थिति वाले पुद्‌गल अनन्त हैं । दस गुण वाले पुद्‌गल अनन्त हैं । इसी प्रकार वर्ण, गंध, रस और स्पर्श से यावत्–दस गुण रूक्ष पुद्‌गल अनन्त हैं ।

**स्थान–१० का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण**

**मुनि दीपरत्नसागर कृत्**

**'स्थान'-तृतीय अङ्गसूत्र- का हिन्दी अनुवाद पूर्ण**

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

પૂજ્યપાદ્ શ્રી આનંદ–ક્ષમા–લલિત–સુશીલ–સુધર્મસાગર ગુરૂભ્યો નમ:

३

# स्थान

## आगमसूत्र हिन्दी अनुवाद

[अनुवादक एवं संपादक]

आगम दीवाकर मुनि दीपरत्नसागरजी

[ M.Com. M.Ed. Ph.D. श्रुत महर्षि ]

વેબ સાઈટ:– (1) www.jainelibrary.org (2) deepratnasagar.in

ઈમેલ એડ્રેસ:- jainmunideepratnasagar@gmail.com મોબાઈલ 09825967397